

प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेदिताननः । ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥
 तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणाभिः समन्वितः । एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥६२॥
 अस्य प्रदानात्सफलाः सर्वे सन्तु मनोरथाः । अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ॥६३॥
 प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नीतीह न संशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥
 कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगंधकैः । स्त्रगंधवृपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥
 आंदोलयेत्ततः सीतारामौ च दोलकस्थितौ । वसन्तमासमामाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥
 सौभाग्याय तदा स्त्रीभिः सौभाग्यशयनव्रतम् । कार्यं महोत्सवेनैव सुखं पुत्रसुखेषुभिः ॥६७॥
 विशेष चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु नारीभिः शुक्लपक्षे मध्यै शुभे ॥६८॥
 स्नात्वा मृष्मयदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥
 पुष्पवृक्षांश्चुभांस्तत्र वापयेत्सर्वतस्ततः । जलयंत्राणि कार्याणि चित्राण्यपि विलेखयेत् ॥७०॥
 तृर्यद्वाराणि कार्याणि पूर्ववन्मंडपादिकम् । यथा श्रीरामपूजायामुक्तं तद्वत्प्रकारयेत् ॥७१॥
 दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सजलं पुष्पगुंफितम् । दोलकं च ततो न्यस्य धटपृष्ठे महच्छुभम् ॥७२॥
 काँचनीं राजतीं मूर्ति सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कृत्वा तौ पूजयेत्ततः ॥७३॥
 दोलकोपरि संस्थाप्य मासमेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिष्यात्र पार्वत्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥
 वदन्ति मुनयस्तत्र निर्णयं शृणु वक्ष्यते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीगमो हृदयं स्मृतः ॥७५॥
 शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैवातरं कदा ॥७६॥
 रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरिजयोस्तथा । ये मानयंति वै भेदं तेषां वासस्तु रौरवे ॥७७॥
 अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशक्तौ तात्रजे मूर्तीं कार्यं वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

घडा बाँधकर जलधारा देनेका प्रवन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घडेमें ठण्डा और निर्मल जल भरके उसका मुँह कपडेके बाँधकर ताम्बूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी सुपात्र ब्राह्मणके घर दे आया करे । यह ब्रह्मा-विष्णु-शिवमय घटदान करनेसे भेरे सब मनोरथ सफल हो जायें । दान करते समय यह कहता जाय । जो प्राणी इस रीतिसे धर्मकुम्भका दान करता है, उसे प्रपादानका फल प्राप्त होता है । इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६१-६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको कुमकुम, अगुरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र तथा सुगन्धित मालाओं, विशेषकर दमनकके फूलसे सीतारामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसके बाद झूलेपर बिठालकर झूला झुलावे । जिनको पुत्रसुख आदि पाना हो, वे स्त्रियां वसन्तमाससे लेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सौभाग्यशयन व्रत करें ॥ ६६ ॥ तृतीयामें कुछ विशेषतायें हैं, सो तुम्हें बतलाता हैं । उस चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके मिट्टीका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे । उसमें अब्राह ग्रकारके धान्य बोये । वहाँपर अच्छे-अच्छे फूलोंके वृक्ष लगाये और उसमें नाना ग्रकारके जलयन्त्रोंकी रचना करे ॥ ६७-७० ॥ उस दुर्गमें पहलेकी तरह मण्डप आदि बनावे । जैसा कि पहले श्रीरामपूजाके प्रकरणमें बतला आये हैं ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर जलसे पूर्ण और पुष्पसे गुम्फित घटका स्वापन करे । घटके पीछे झूला रखकर सुवर्ण या चाँदी-की सीताजीकी मूर्ति बनवाये और रामचन्द्रजीकी भी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर दोनोंकी पूजा करे । इस ग्रकार झूलेपर बिठालकर एक मास तक पूजन करे । हे शिष्य ! पार्वतीजीके साथ शिवजीकी पूजा करे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं । अब इस विषयका निर्णय तुम्हें सुनाता हूँ ! रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय हैं और शिवजी राम-के हृदय हैं ॥ ७२-७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय हैं और सीताजी गौरीका हृदय हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजामें जो लोग किसी ग्रकारका भेदभाव मानते हैं, वे रीरव नरकमें वास करते हैं ॥ ७७ ॥ इसोलिये चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए । यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा न बनवाकर तात्र अयवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

पापाणनिभिंते चापि मृतीं कार्ये यथासुखम् । प्रत्यहं मंगलद्रव्यैः सर्वस्त्रीभिः प्रपूजयेत् ॥७९॥
 मासमेकं तु नारीभिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अवश्यमेव कर्तव्यं सीतातीर्थे विशेषतः ॥८०॥
 यत्र यत्र रामतीर्थं तस्य वामेऽवनीतले । सीतातीर्थं तत्र तत्र ज्ञेयं सीताकृतं शुभम् ॥८१॥
 चैत्रशुक्लतृतीयायामाभ्याकश्यसंज्ञिता । यावत्तृतीया वैशाखशुक्ला तावत्रिरन्तरम् ॥८२॥
 शीतलासंजकं स्नानं स्त्रीभिः सीतार्थमाचरेत् । चैत्रशुद्धतृतीयायामभवायां तथापि च ॥८३॥
 तृतीयायां तु नारीभिस्तलाभ्यंगं प्रकारयेत् । अन्यत्र दिव्रसे स्त्रोभिस्तलाभ्यंगं त कारयेत् ॥८४॥
 प्रत्यहं चोत्सवाः कार्याः सीतायाः पुरुतः शुभाः । सुवासिनीपूजनं च कार्यं भक्त्या दिने दिने ॥८५॥
 सुवासिनीनां देयानि वायनानि शुभानि च । निरन्तरं पूजनार्थं यदि शक्तिर्वर्तते ॥८६॥
 तदा कार्यं चैकदिने सुभगानां प्रपूजनम् । सुवासिनीनां देयं हि प्रत्यहं भोजनं वरम् ॥८७॥
 नानापकान्नमयुक्तं शूतपायससंयुतम् । अलंकारांश्च वस्त्राणि कंचुक्यादि च यच्छुभव् ॥८८॥
 भर्तुर्गयुध्यवृद्धवर्थं नारीभिदेयमुत्तमम् । एवं स्नान्वा मासपात्रं शीतलास्नानमुत्तमम् ॥८९॥
 अक्षयायां तृतीयायां पूजयित्वा विशेषतः । त्रिज्ञत्सुवासिनीभ्यश्च दातव्यं भोजनादिकम् ॥९०॥
 गुरुपत्नीं निजां पूज्य तस्ये सर्वे विसर्जयेत् । एवं स्त्रीणां वत्रं प्रोक्तं मासपात्रं द्विजोत्तम् ॥९१॥
 अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि तवाग्रे शृणु चोत्तमम् । अशोककलिकाभिस्तु चैत्रशुक्लाष्टमीदिने ॥९२॥
 सीतारामीं पूजयित्वा महामंगलपूर्वकम् । अशोककलिकाश्टाणीं ये पिवन्ति पुनर्वसां ॥९३॥
 चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः । त्वामशोककराभीष्टं मधुमाससमुद्धवम् ॥९४॥
 पिवामि शोकसंतसो मामशोकं सदा कुरु । पुनर्वसुवृधोपेतां चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ॥९५॥

आवश्यकता पड़नेपर पत्वरकी प्रतिमा बनवायी जा सकती है। इस तरह मूर्ति बनवाकर मुखपूर्वक विविध मञ्जलमय द्रव्योंसे स्त्रियोंके साथ पूजन करे ॥७९॥ एक महीना स्त्रियोंके साथ शीतला नामक स्नान करे। यदि सीतातीर्थमें जाकर स्नान करे तो विशेष अच्छा है ॥८०॥ जहाँ-जहाँ रामतीर्थ है, वहाँ-वहाँके रामके वामभागमें सीताका बनाया सीतातीर्थ भी विद्यमान रहता है ॥८१॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयांसे लेकर जबतक वैशाखकी अक्षय तृतीया न आगे, तबतक निरन्तर सीतातीर्थमें जाकर शीतलास्नान करे ॥८२॥ स्त्रियोंको भी चाहिये कि साताजोका प्रसन्न करनेके लिए स्नान करें। चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा अक्षय तृतीयाको स्त्रियोंके साथ शरीरमें तेलको मालिश करानी चाहिये। इसके सिवाय और किसी रोज स्त्रियोंके साथ तेल लगानेका विचान नहीं है ॥८३॥ ८४॥ प्रतिदिन स्त्रीके साथ-साथ सीताके समक्ष तरह-तरहके उत्सव करना चाहिए। नित्य भक्तिपूर्वक स्त्रियोंका पूजन करना भी श्रेयस्कर है ॥८५॥ सोहागिन स्त्रियोंको इन दिनोंमें वायन देना भी उचित है। यदि निरन्तर पूजन करनेकी सामर्थ्यं न हो तो केवल एक ही दिन सोहागिन स्त्रियोंका पूजन करे और उन्हें विविध पदवान्न युक्त अच्छा-अच्छा भोजन कराये ॥८६॥ ८७॥ नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण आदि भी वे स्त्रियां अवश्य दिया करें, जो अपने पतिकी आयुर्वृद्धि करना चाहती हों। इस तरह एक महीना शीतलास्नान करनेके बाद अक्षय तृतीयाको विशेष रोतिसे पूजन करके तीस सोहागिन स्त्रियोंको नाना प्रकारके भोजन-वस्त्र आदि दे ॥८८-९०॥ इसके बाद अपने गुरुकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान करे। हे द्विजोत्तम ! इस तरह मैंने तुम्हें स्त्रियोंके लिए एक मासका ज्ञत बतलाया ॥९१॥ अब मैं कुछ विशेष वातें बतलाता हूँ, सो गुनो । चैत्रशुक्ल अष्टमीको अशोककी कलियोंसे सीता और रामका पूजन करके जो लोग आठ अशोककी कली पीसकर पुनर्वसु नामक नक्षत्रमें पीते हैं, उन्हें कभी किसी प्रकारका शोक नहीं करना पड़ता। उस कलीका पान करते समय “त्वामशोककराभीष्ट” इस मन्त्रका पाठ करते रहना चाहिये। मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—हे अशोक ! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शोकरहित भी करते हो। इसी कारण चैत्रमासमें उत्पन्न तुम्हारी कलिकाको मैं पी रहा हूँ। तुम मुझे सदा शोकरहित किये रहना। जो लोग पुनर्वसु नक्षत्र तथा

प्रातस्तु विधिवत्सनात्वा वाजपेयफलं लभेत् । चैवे नवम्यां प्राकृपक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥१६॥
 उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके । मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥१७॥
 आविरासीन्महाविष्णुः कौसल्यायां परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासवतं नरैः ॥१८॥
 तत्र जागरणं कुर्यादघुनाथपुरे जनैः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥१९॥
 मैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलायि सदोपोष्या नवमीशवदसंग्रहात् ॥२०॥
 तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यै वै नवमीव्रतम् । श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटियूर्यग्रहादिका ॥२१॥
 उपोपणं जागरणं पितृनुहित्य तर्णम् । तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीष्टुभिः ॥२२॥
 सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः । अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ॥२३॥
 पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव मः । यस्तु रामनवम्यां वै मुक्ते मोहात् मूढधीः ॥२४॥
 कुम्भीपाकेषु घोरेषु पञ्चयते नात्र संशयः । अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्ववैतोत्तमम् ॥२५॥
 ब्रह्मन्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्यभवेत् । आचार्यै चैव संपूज्य शृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥२६॥
 श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम । भक्त्याचार्यं भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च ॥२७॥
 स्वगृहं चोत्तमे देशे दानस्थोजज्वलमंडपात् । शंखचक्रहनूमद्विः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥२८॥
 गहन्त्मच्छाङ्गीवाणीश्च दक्षिणे समलंकृतम् । गदाखड्गांगदेव्यैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥२९॥
 पद्मस्तिरुपीलैश्च कौवेरे समलंकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्पात्रं वेदिकायुक्तमायतम् ॥३०॥
 अष्टोत्तरसहस्रैश्च रामलिंगात्मकं शुभम् । आस्तीर्यं रामतोनद्रं वेदिकायामनुजमम् ॥३१॥
 ततः संकल्पयेदेवं राममेव स्मरन् द्विज । अस्यां रामनवम्यां च रामाग्रन्थनत्परः ॥३२॥

बुद्धार्थसे युक्त चैत्रहृष्णकी अष्टमीको प्रातःकाल विविषुर्वक्त स्नान करते हैं, उन्हें वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्रहृष्णकी नवमीको जब कि पुनर्वसु नक्षत्र वा, उदित वृहस्पति तथा चन्द्रमा के साथ-साथ पाँच ग्रह उच्चवर्त्यानामें वैठं थे, मूर्य मेष प्राशिपर थे, कक्षेन्द्रग्रन्थ थी, उसी समय महाविष्णु भगवान् राम कौसल्यासे उत्पन्न हुए थे। इसलिए लोगोंको उस रोज उपवास करना चाहिए ॥१२-१३॥ लोगोंको उचित है कि इस लिखिको अपेक्षापुरीमें जाकर रात्रिभर जागरण करे। चैत्रशुक्लकी नपली यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो तो वह महापुण्यवती मानी जाती है। यदि पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त नवमी न हो तो भी व्रत करना ही चाहिए। क्योंकि सर्वंत्र नवमी इस शब्दका ही संग्रह किया गया है ॥१४॥ १००॥ इसलिए सब लोगोंको अच्छी तरह नवमीका व्रत करना चाहिए। यह रामनवमी करोड़ों सूर्यग्रहणसे भी अधिक पुनोत मानी जाती है ॥१०१॥ जिन लोगोंकी व्रह्मप्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें चाहिए कि उस दिन उपवास, जागरण तथा पितरोंको तृप्त करनेके उद्देश्यसे तर्पण करें ॥१०२॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह वर्ष भुक्ति और मुक्तिका साधक है। यदि कोई मनुष्य अपवित्र या पापी हो तो इस व्रतको करनेसे वह उसी प्रकार सब प्राणियोंका पूज्य हो जाता है, जैसे रामचन्द्रजों स्वयं सबके आराध्यदेव हैं। जो मूर्ति रामनवमीको भोजन करता है ॥१०३॥ १०४॥ वह बहुत समय तक कुम्भोपाक आदि घोर नरकोंमें पड़कर सङ्गता है। सब व्रतोंमें श्रेष्ठ इस रामनवमीका व्रत न करके जी प्राणी और और द्रूतोंको करता है, उसे वह व्रत करनेका फल नहीं मिलता। व्रतके दिन रात्रिको आचार्यकी पूजा करके प्रार्थना करे—हे द्विजोत्तम! आज मैं भक्तिसे श्रीरामचन्द्रजोंकी प्रतिमाका दान कहूँगा। हे आचार्य! आप मेरे झार प्रसन्न हों ॥१०५॥ १०६॥ १०७॥ तदनन्तर अपने घरके किसी उत्तम स्थानपर बड़िया मण्डप बनावे। उसके पूर्वद्वारपर झंख-चक्र एवं हनुमानजीकी स्थापना करे ॥१०८॥ दक्षिण ह्वारपर गृहङ्, बनुप तथा वाणको स्थापित करे। उत्तर दिशामें कमल तथा स्वस्तिकक्षी स्थापना करके उसे अलंकृत करे। बीचमें चार हाथकी लम्बी-चौड़ी बेड़ी बनावे। बेरीपर अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक रामतोभद्रकी रचना करे ॥१०९-१११॥ इसके अनन्तर है द्विज! श्रीरामचन्द्रजोंका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजोंकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमर्यां रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥११३॥
 श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुवहूनि मे ॥११४॥
 अनेकजन्मसंभिद्रान्यभ्यस्तानि महांति च । ततः स्वर्णमर्यां रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥
 निमितां द्विभुजां दिव्यां वामांकस्थितजानकीम् । विश्रवीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥
 वामेनाधःकरेणारारादेवीमालिङ्ग संस्थिताम् । सिंहासने राजते च पलद्वयविनिमिते ॥११७॥
 अशक्तो यो महानत्र स तु वित्तानुसारतः । पलेन वा तदधैर्येन तदधैर्येन वा पुनः ॥११८॥
 सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्विनन्दनम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतछत्रकरावुभौ ॥११९॥
 चापद्वयमसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् । मातुरंकगतं राममिद्रनीलसमप्रभम् ॥१२०॥
 पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः । अशोककुसुमैर्युक्तमध्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥
 दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय देत्यानां निधनाय च ॥१२२॥
 परित्राणाय साधुनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणाध्यं मया दत्तं आत्रभिः सहितोऽनध ॥१२३॥
 दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत् । ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः ॥१२४॥
 समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने । ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥१२५॥
 पूर्वोक्तमंडपे कुडे स्थंडिले वा समाहितः । लौकिकाभ्नौ विधानेन शतमष्टोचत्तरं शनैः ॥१२६॥
 साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भवत्या सुसंतोष्य द्वाचार्यं पूजयेद्वद्विजः ॥१२७॥
 ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मंत्रमुदीरयत् । इमां स्वर्णमर्यां रामप्रतिमां समलंकृताम् ॥१२८॥
 चित्रवस्त्रयुगच्छनां रामोऽहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥
 इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मैं आठ प्रहृतक उपवास करके यह स्वर्णमर्यी प्रतिमा रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूँगा । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों और मेरे उन महापापोंको हर लें, जो मैंने अनेक जन्मोंके अन्यासवश किये हों । तदनन्तर एक पल सुवर्णकी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएं बनी हों, वामभुजामें सीताजी और दाहिनी भुजामें ज्ञानमुद्रा विराजमान हो ॥११२-११६॥ वे वाये हाथसे देवीका आलिङ्गन किये दो पल चौंदाकी बनी चौकीपर बैठे हों ॥११७॥ जो प्राणी सर्वेषां असमर्थ हो, वह अपने वित्तानुसार एक पल, आधा पल अथवा आधेके भी आधे पल सुवर्ण या चौंदीकी प्रतिमा बनवाये । रामके पास ही छत्र और चमर लिये भरत तथा शत्रुघ्न खड़े हों और दो धनुष धारण किये लक्ष्मणजीकी प्रतिमा बनावे । माताकी गीदमें विराजमान इन्द्रनीलमणिकी प्रभाके समान प्रभाशाली रामको पंचामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और अशोक पुष्पयुक्त अर्घ्यं प्रदान करे । अर्घ्यं देते समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मंत्र पढ़ता जाय । जिसका अर्थ इस प्रकार है—॥११८-१२१॥ रावणको मारने, धर्मका स्थापन, राक्षसोंका विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था । सब भ्राताओंके साथ आप मेरे इस अर्घ्यंको स्वीकार करिए ॥१२२॥१२३॥ यह सब विधि-विवान दिनको करके रात्रिभर जागरण करे । सबेरे उठकर स्नान-संध्या आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे । फिर मंत्रको जाननेवाला यजमान मूलमन्त्रसे होम करे ॥१२४॥१२५॥ यह हृवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थणिडलमें किया जाय और लौकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियां धीरे-धीरे दी जायें । इसकी सामग्रीमें धृत और लीरका रहना आवश्यक है । हृवन करते समय अपने चित्तको इधर-उधर न दौड़ाकर रामका हमरण करते रहना चाहिए ॥१२६॥१२७॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमर्यां' इस मन्त्रका उद्यारण करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि सब तरहसे अलंकृत यह सुवर्णमर्यी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके हेतु मैं दान करूँगा । इससे श्रीरामजी प्रसन्न हों ॥१२८॥१२९॥ इस

एवं शिष्य चैत्रमासे नवम्यां भृतुराय हि । दानं देयं राघवस्य रामसंतुष्टिहेतये ॥१३१॥
अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि चैत्रं मासि शृणु वृत्त तत् । चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां दोलकस्थं रथूत्तमम् ॥१३२॥
पूजयेन्मानवो भक्त्या आप्रवृथतले स्थितम् । चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ॥१३३॥
आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ॥१३४॥
बौधायनादिभि प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ।

ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तंतुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥१३५॥
वह्निविरिचो गिरिजा गणेशः फणो विशाखो दिनकृत्महेशः ।

दुर्गाइन्तको विश्वहरिः स्मरथ शर्वैः शशी वै तिथिषु प्रपूज्याः ॥१३६॥

अथ चैत्रपौरीमायां भक्त्या रामं प्रपूजयेत् । सीताया दोलकस्थं वै दमनेन महोत्सवैः ॥१३७॥
चैत्री चित्रायुता चेत्स्यान्तदा पुण्य महातिथिः । ज्ञेया सर्वाधिका सा हि स्नानदानजपादिषु ॥१३८॥
खोभिदेयं चित्रवस्त्रं तस्याः सौभाग्यदायकम् । सीतारामी चित्रवस्त्रैः पूजनीयौ महोत्सवैः ॥१३९॥
मंडे वाके गुरी वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका । तत्राश्वेषेवं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्भेत् ॥१४०॥
संवत्सरकृताचार्यः साफल्यायाखिलान् सुरान् । दमनेनाचयेन्द्रैत्यां विशेषेण रघृत्तमम् ॥१४१॥
चैत्रस्नानोद्यापनं च तिथौ तस्यां स्मृतं वृथैः ॥१४२॥

अथ वैशाखकृष्णायां पञ्चम्यां परमोत्सवैः । सीतारामी प्रपूज्याथ दोलकस्थौ तु वशुभिः ॥१४३॥
उद्यापनं तत्र कार्यं महाफलमभाष्युना । वैशाखे कृष्णपक्षे तु चतुर्थ्यां समुपोष्य च ॥१४४॥

विद्यानसे दान देकर पृथ्वीकी दक्षिणा दे । ऐसा करनेसे प्राणी ब्रह्महृत्या आदि पातकोमें भी मुक्त हो जाता है ।
इसमें कोई संशय नहीं है ॥१३०॥ हे प्रिये । इस प्रकार चैत्र मासकी नवमी तिथिको रामजीके प्रीत्यर्थ ब्रह्महृणको
दान दे ॥१३१॥ चैत्रमासमें और कुछ विशेषतायें हैं, उन्हें कहता हैं । चैत्रशुक्लपक्षकी एकादशीको झूलेमें
विठालकर आप्रवृत्तके नोंबे रामकी पूजा करना चाहिए ॥१३२॥ १३३॥ तदनन्तर झूला झुलानेका विधान
है । इसके बाद चैत्रशुक्लपक्षद्वादशीमें इसनात्सव मानना चाहिए ॥१३४॥ यह बौधायन आदि आचार्योंका भत
है । ऐसा हर क्षण करना चाहिए । कात्तिकामासम छठ, चैत्रप्रतिमें दोलाधिराहण, चैत्रे दमनारोपण और
श्रावणमें तन्तुपूजन चलना चाहिए । जो रामनन्द इन प्रकारके त्रृत नहीं करता, उसको अधागति होती
है ॥१३५॥ अग्नि, ब्रह्मा, गिरिजा, गणेश, नागदण्डा, कात्तिकेय, सूर्य, शिवजी, दुर्गा, शमराज, विश्वेदेव,
विष्णुमगवान्, कामदंद, रुद्र और चन्द्र इन देवताओंका अपनी-आपनी तिथियोंपर पूजन करनेका दिवान
है । ऊपर गिनाने हुए सब देवता एक-एक तिथिके स्वामी हैं । जैसे—प्रतिपदाः के अग्नि, द्वितीयाके ब्रह्मा,
तृतीयाकी स्थानिनी गिरिजा, चतुर्थीकी गणेश आदि ॥१३६॥ चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाका भक्तिपूर्वक सीता
सहित रामको झूलेपर विठालकर इसन नामक महोत्सवके साथ पूजन करना चाहिए ॥१३७॥ यदि ऊपर
बतायी हुई चैत्रकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रसे युक्त हो तो उस पूर्णिमालोकी स्नान, दान और जप आदिमें
महापूण्यदायिनों समझना चाहिए ॥१३८॥ स्त्रियोंको चाहिए कि उस रोज तरह-तरहके चस्त्रदान दे ।
इससे उनके सीभाग्यकी वृद्धि होती है । उसी दिन महान् उत्सवके साथ सीता तथा रामकी पूजा करनी
चाहिए ॥१३९॥ शनिवार, रविवार अयत्रा गुदवार इन वारोंमें यदि चैत्रकी पूर्णिमा पड़े तो इसमें स्नान-दान
तथा आढ़ करनेसे अन्यमें यजका फल प्राप्त होता है ॥१४०॥ पूरे सालभरके लिए किसी विद्रान्दको
आचार्य बनाकर अपनी कामना सफल करनेके लिए समस्त देवताओंको विजेयतः रामकी दमन नामक
महोत्सवसे पूजा करनी चाहिए ॥१४१॥ चैत्रस्नानका उद्यापन भी इसी तिथिको करना चाहिए । ऐसा
विद्वानोंका कथन है ॥१४२॥ उस तिथिको उद्यापन करनेसे महाफलकी प्राप्ति होती है । वैशाखकृष्ण चतुर्थीको
उपवास करके रात्रिके समय पृथ्वीपर सोये । सबेरे किसी पवित्र त्यानमें मण्डप आदि बनाकर रामलिंगात्मक

निशायां च प्रकर्तव्यमधिवासनमुत्तमम् । शुचौ देशे मंडपादि कुत्वा पूर्वोक्तवच्छुभम् ॥१४६॥
 रामलिंगात्मके भद्रे धान्यराशौ महत्तमम् । सजलं कलशं स्थाप्य ताम्रपात्रं तु तन्मुखे ॥१४७॥
 स्थाप्य वस्त्रे दोलकस्थं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । हैमो वा राजतो वापि दोलकस्त्रिपलैः स्मृतः ॥१४८॥
 हैमी पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तादन्मिता रुक्ममूर्तिः सीतायाश्रापि कारयेत् ॥१४९॥
 नानोपचारैः संपूज्य रात्री जागरणं चरेत् । नृत्यगीतमंगलाद्यैः पुराणश्रवणादिभिः ॥१५०॥
 प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं सीतासमन्वितम् । सहस्र हवनं कार्यं तिलाज्यपायसादिना ॥१५१॥
 तर्पणं राममंत्रेण क्षीरेणैव प्रकारयेत् । ततो गुरुं सप्तत्नीकं संपूज्य वसनादिभिः ॥१५२॥
 रामाय प्रार्थयेद्वक्त्या प्रबद्धकरसंपुटः । सार्द्धमासद्वयं राम वसन्ते तव पूजनम् ॥१५३॥
 दोलकस्थस्य जानक्या यथाशक्त्या मया कृतम् । ग्रसोदानेन श्रीराम मामुद्रर भवार्णवात् ॥१५४॥
 एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं तामर्ची मूर्तिसंयुताम् । दद्यात्स्वगुरुवे भक्त्या तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥१५५॥
 पञ्चसप्ततियुग्मानि श्वष्टाविंशन्मितानि वा । तदर्थान्यथया शक्त्या भोजयेद्गुरुगा सुखम् ॥१५६॥
 ततः स्वयं सुहन्मित्रैः कार्यं वै भोजनं सुखम् । अत्राकोऽपि यथाशक्त्या व्रतमेतत्तु सर्वदा ॥१५७॥
 करोतु रामतुष्टयर्थं वसन्तपूजनं वरम् । एवं शिष्य त्वया पृष्ठं विशेषेण च पूजनम् ॥१५८॥
 सीतारामस्य तत्प्रोक्तं दोलकस्थस्य ते मया ।

विष्णुशास्त्र उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यस्वं वद सविस्तरात् ॥१५९॥

क्या कामनया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तत्सर्वं कथयस्वाद्य भविष्य कुत्वा परां कृपाम् ॥१५९॥
 श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत् ब्रह्मणस्पतिष्ठ ॥१६०॥
 इदमिद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् । देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥१६१॥

भद्रमें एक बड़ा भारी धान्यराशिका स्थापन करके उसपर सजल कलश रखें और उनके सामने एक ताम्रपात्र धरें। फिर जूलेपर कपड़ा बिछाकर रामजीका विठाले और उनको पूजा करे। वह जूला तान पल सुवर्ण, चौदी या ताम्रका बनावे। एक पल सुवर्णसे रामकी प्रतिमा लगावे। इसी बजनके सुवर्णसे सीताकी प्रतिमा भी बनानी चाहिए ॥ १४३-१४८ ॥ इसके अनन्तर नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करके रातभर जागरण और उस समय नृत्य-गीत आदि मन्त्रालय कार्य करे ॥ १४९ ॥ सबेरे फिर रामकी पूजा करके तिल, घो तथा खीर आदिसे सहज हवन और राममन्त्रका उच्चारण करता हुआ दूधसे तर्पण करे। तत्पश्चात् सप्तत्नीक गुरुको वस्त्र-आभरण आदिये पूजा करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ इसके बाद हाथ जोड़कर रामकी प्रार्थना करता हुआ कहे—हे राम! मैंने दाइ महेनेतक दसन्त कृत्तुमें सीताके साथ आपकी पूजा की है। मेरे इस कार्यसे आप प्रसन्न हों और भवसागरसे मेरा उद्धार करें ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह प्रार्थना करनेके अनन्तर प्रतिमा समेत वह पूजापा अपने गुरुको दे दे और उन्हें बार बार प्रणाम करे ॥ १५४ ॥ इसके बाद डेढ़ सौ, बढ़तोस अद्यवा अपनी शक्तिके अनुसार इससे अर्द्धसंलग्नक ज्ञाहृणोंको भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ साथ स्वयं भी भोजन करे। कोई प्राणी यदि अशक्त हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार ही यह व्रत और वसन्तकृत्तुमें रामचन्द्रजीका पूजन करना चाहिए। हे शिष्य! तुमने मुझसे रामकी पूजाके विषयमें जो प्रश्न किया था। सो मैंने दोलस्थ राम तथा सीताके पूजनके सब बातें कह सूनायीं। विष्णुशास्त्रने कहा—हे गुरों! मैं आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ। वह आप विस्तारपूर्वक हमें बताइए। यदि आप ऐसा करेंगे तो वही कथा होगी। दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामनासे किस देवताका पूजन करना चाहिए ३-१५९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। सावधान मनसे सुनो। तो अपना ब्रह्मतेज बढ़ाना हो, उसे ब्रह्मणस्पतिका पूजन करना चाहिए ॥ १६० ॥ इन्द्रियकी कोई

वसुकामो वस्तु रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । अन्नादिकामस्त्वदिति स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् १६२॥

विश्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्संसाधको विजाप्त् ।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥१६३॥

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसो लोकमातरौ । रूपाभिकामो गंधर्वान् स्त्रीकामोऽप्यर उर्दशीम् १६४॥

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्टिन्यै । यज्ञ यजेयशस्कामः कोशकामः प्रचेतमम् ॥१६५॥

विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थमुपां सतीम् । धर्मार्थं उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन् पितॄन्यजेत् ॥१६६॥

रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्रुणान् राज्यकामो मनून्देवान् निर्वर्तिं त्वभिचरयन्जेत् ॥१६७॥

कामकामो यजेन्सोममकामः पुरुषं पाम् । अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥१६८॥

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् रघुनन्दनम् । रायेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं ग्रपूजयेत् । तस्थायवर्णसामर्थ्याद्युद्गत्वत्र रादिकम् ॥१७०॥

परं श्रेष्ठत्वमापन्नं विस्तारेण वदाभ्यहम् । रुक्मं रन्नं रथो गमा राक्षसो रजां रजः ॥१७१॥

रक्षा रणो रमा रक्तं रजको रागरामठौ । राजा रोगो रवी रात्री राज्यं रजस्वला तथा ॥१७२॥

एवामदीन्यनेकानि श्रेष्ठान्येवात्र भी छिज । रुक्मं पीतं महाहं च रन्नं रम्यं सुदुर्लभम् ॥१७३॥

रथो यानं वर्गष्टु च रामा यस्या हृदं जगत् । राक्षसो देवभयदो रजतं तत्सुदुर्लभम् ॥१७४॥

रजः साक्षात्परमाणुर्नित्यः सोऽत्र प्रकीर्त्यते । रक्षा रक्षाकरी ज्ञेया रणो जयकरः स्मृतः ॥१७५॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, सन्तानकी इच्छा हो तो प्रजापतिकी, श्रीवृद्धिकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो सूर्यभगवान्की, घनवृद्धिकी इच्छा हो तो आठों वसुओंकी, पराक्रमको अभिलाषा हो तो रुद्रभगवान्की, अन्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्णकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंको, ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाकी, प्रतिष्ठा चाहनेवालेको लोकमाताओंकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो गन्धवौंकी, स्त्रीकी कामना हो तो उर्वशी आदि अप्सराओंकी और आधिपत्यको इच्छा हो तो सब देवताओंकी पूजा करे । जिसे यश पानेकी इच्छा हो, उसे यज्ञ करना चाहिये । कोणकी इच्छा हो तो वरणकी, विद्याकी इच्छा हो तो शिवकी, दाम्पत्यमूखकी इच्छा हो तो पार्वती जीकी, धर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक (विष्णु भगवान्) की और वंशविस्तारकी इच्छा हो तो पितरोंकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ आत्मरक्षाकी इच्छा हो तो पुण्यजनोंकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो मरुदण्डोंकी, राज्यकी इच्छा हो तो चौरह मनुओंकी, आभिवारिकी किंवा करनी हो तो राक्षसोंकी, मनोऽभिलिप्तिकामपूर्तिकी इच्छा हो तो चन्द्रमाकी, निष्काम होनेकी अभिलाषा हो तो परम पुरुष परमेश्वरकी, अकाम या सकामभावसे मोक्षकी कामना रखता हो तो उसे चाहिए कि तीव्र भक्तियोगसे रघुनन्दन रामचन्द्रकी पूजा करे । रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो न होगा ॥ १६७-१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे । उनके नामके आदिम वर्ण 'र' की सामर्थ्यसे संसारमें जितनी वस्तुयें रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी हैं । उन वस्तुओंको अब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । जैसे-रुक्म (सुवर्ण), रत्न, रथ, रामा (स्त्री), राक्षस (विभीषण आदि), रजत (चाँदी), रज (धूलि), रक्षा, रण, रमा (लक्ष्मी), रक्त, रजक (धोवी), राग, रामठ (हींग), राजा, रोग, रवि (सूर्य) रात्रि, राज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ माने गये हैं । ऊपर बताया हुआ रुक्म (सुवर्ण) पीतवर्णकी बहुमूल्य धातु है । रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनाईसे प्राप्त होता है । रथ एक श्रेष्ठ सवारी है ! रामा (स्त्री) वह वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है । राक्षस ऐसे भयानक होते हैं, जिनसे देवता भी भयभीत रहा करते हैं । रजत (चाँदी) भी एक दुर्लभ वस्तु है । रज (धूलि) साक्षात् परमाणु और नित्य है । रक्षा रक्षाकारी है । रण (संग्राम) विजयदायक होता है ॥ १७०-१७५ ॥

रमा मा दुर्लभा त्वत्र रक्षेऽस्ति रक्षता वरा । रजको निर्मलकरो रागः प्रीतिः सुखप्रदा ॥१७६॥
 रामठः शुद्धिदोऽकास्य रुचिदथ ग्रकीतिंतः । राजयं सौख्यकरं श्रेष्ठं पुत्रदा सा रजस्वला ॥१७७॥
 एवं यद्यद्रक्षारायं तत्त्वं ल्लेष्टुं शुचि स्मृतप्र । रामाद्यवर्णसामधर्याद्विष्णुदास मयेरितम् ॥१७८॥
 अन्याच्छिद्य शृणुष्व त्वं यन्मया कथयते तव । यथा प्रोक्ता रामनाममुद्रा तत्र भया शुभा ॥१७९॥
 तथा नान्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम विना नाममुद्रिकायां स्फुटाक्षरम् ॥१८०॥
 न कदा इशते स्पष्टमेतच्च महदद्वृतम् । अत्र प्रभावो रामस्य त्वं विद्धि द्विजपुञ्जव ॥१८१॥
 अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा । स्वयं जप्त्वोपदिशति जनूनां शुक्तिहेतवे ॥१८२॥
 सं प्राणीवसंभग्नं नरं यस्तारयेन्मनुः । स एव तारकस्त्वत्र राममन्त्रः प्रकथयते ॥१८३॥
 तारकाख्यस्त्वयं रामनाममन्त्रो न चेतरः । अत एवांतकालेऽपि मर्तुकामनरस्य च ॥१८४॥
 कर्णे सर्वत्र देवेशरामनामोपदिशयते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः ॥१८५॥
 इति कुर्वन्त्युपदेशं मानवा शुक्तिहेतवे । अन्यच्चापि शब्दाहैः सदा लोकैर्मुहुर्मुहुः ॥१८६॥
 रामनामव सुखत्यर्थं शब्दस्य पथि कीर्त्यते । रामनाम्नः परो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ॥१८७॥
 रामनाम्नो जपो नित्यं क्रियते शंभुनापि च । पार्वत्या नारदेनापि वायुपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥
 रमयति जनान् रामो रमते वा सदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥
 रसातलाद्रकारो हि त्वकारोऽवनिसंभवः । महलोकान्मकारश्च त्रिवर्णात्मकमुच्यते ॥१९०॥
 रकारेण निजं भक्तं भवाद्धेः परिरक्षति । अकारेणातिसौख्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥
 मनोरथान्मकारेण ददाति स्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्मुहुः ॥१९२॥

रमा (लक्ष्मी) इस संसारमें दुलंभ है । रक्षमें एक असाधारण लालिमा विद्यमान रहा करती है । रजक (घोबी) मल्को घोकर साफ करता है । राग प्रीतिका नाम है, जिसने सारे संसारको अपनी मुठीमें कर रखा है ॥१७६॥ रामठ (हींग) अन्तको पवित्र करनेवाली और एक रुचिकर वस्तु है । राजय सुखकारी होता है । रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है । इस तरह जितने भी रकारादि वर्णके नाम हैं, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं । हे विष्णुदास ! जैसा मैंने तुम्हें बताया है, इन सबोंके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामके आदिम दणकी समानता है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ हे शिष्य ! अब दूसरी बात तुमसे कहता हूँ, । उसे सुनो । जिस तरह पहले मैं तुम्हें रामनामकी मुद्रायें बतला आया हूँ, वैसी नाममुद्रा और किसी देवताकी नहीं है । रामनामके विना किसी नाममुद्रामें इस प्रकार [राजाराम] जैसा स्फुट अक्षर नहीं बनता । यह एक अद्भुत बात है । हे द्विजपुञ्जव ! इसमें तुम रामका ही प्रभाव जानो ॥ १७९-१८१ ॥ इसोलिए काशीमें विश्वनाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंको मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मन्त्र संसाररूपी समुद्रमें ढूबे हुए मनुष्योंको तार सके, उसी राममन्त्र की 'तारक' संज्ञा है ॥ १८३ ॥ एकमात्र यह रामका नाम ही तारक है । इसोलिए सर्वत्र किसीके मरते समय उसके कानमें रामनामका ही उपदेश दिया जाता है । मुमूर्षु प्राणीकी मुवितके लिए उससे बार-बार यही कहा जाता है कि 'राम' का स्मरण करो । शब्दको ले जानेवाले लोग राम नामका ही कीर्तन करते हैं । रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आज तक हुआ है और न होगा ॥ १८४-१८७ ॥ स्वयं शिवजी भी नित्य रामनामका ही जप किया करते हैं । उसी तरह हनुमानजी, नारद तथा पार्वतीजी भी सदा रामनामका जप करती हैं ॥ १८८ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या नित्य रमण करने अथवा राक्षसोंका संहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८९ ॥ 'राम' इस शब्दमें रकार रसातल लोकसे, अकार भूमण्डलसे एवं मकार महर्लोकसे आया है । इसी कारण यह त्रिवर्णात्मक राममन्त्र है ॥ १९० ॥ वे श्रीरामवन्द्रजी रकारके ह्वारा भवसिन्द्रमें अपने भवतोंकी रक्षा करते हैं । आकारसे निज भवतोंको अतिशय सौख्य प्रदान करते हैं । मकारसे अपने भवतोंकी कामना पूर्ण करते हैं अथवा मकारसे बार-बार अपने भवतोंकी मरण आदि बाधाएं दूर करते रहते हैं ।

निवारयति तद् शीघ्रं रामनाम वरं ततः । अयमेव सदा जप्यो रामेति द्रथश्चरो मनुः ॥१९३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे
उत्तरादेव विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

दशमः सर्गः

(अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यत्पृच्छसि भो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥२॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासोऽब्रवीत्पुनः ।
विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं महत् ॥३॥

प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व ममातिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुहिद्य चरेद्वतम् ॥४॥
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरयां रामतीर्थं स्नातव्यं चेति कीर्तिंतम् ॥५॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥६॥
मासानां प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टकलप्रदः ॥७॥
दानयज्ञवत्समः सर्वपापप्रणाशनः । धर्मसारः क्रियासारस्तपःसारः सदाऽचितः ॥८॥
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुहाणां सुरतरुघेनूनां कामधेनुवत् ॥९॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोंको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सदंव जाष्टे रहें ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजापाण्डेयहुत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह है शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, मैंने उनका उत्तर आदरपूर्वक दिया ॥ १ ॥ अब तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमसे तुम जो भी पूछोगे, वह सब मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरुके इन बच्चोंको मुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आप अयोध्यामें चैत्रमासका बड़ा फल कह आये हैं । अब उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें क्या दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता है और किस उद्देश्यसे वह व्रत किया जाता है । इस व्रतको करनेकी क्या विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरयूके रामतीर्थमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके हैं । इसका भी विधि-विधान बता दीजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा-ठीक है, हे महाबुद्धिमान शिष्य ! तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम मास माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका माताके समान हितकारी है और सबका अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह समस्त दानों, यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, समस्त क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी तपस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें [वेदविद्याके समान, सब मन्त्रोंमें प्रणव (वृङ्कार) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें पारिजातके समान, गौओंमें काम-

शेषवत्सर्वनाशानां पक्षिणां गरुडो यथा । देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णनां ब्राह्मणो यथा ॥१०॥
प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा । आपगानां यथा गंगा तेजसां तु रविर्यथा ॥११॥
आयुधानां यथा वज्रं धातूलां कांचनं यथा । वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥१२॥

पुष्पेषु च यथा पद्मं सरसां मानसं यथा ।

मासानां धर्महेतूनां चैत्रमासस्तथा स्मृतः । नानेन सद्गो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥१३॥
चैत्रस्नाने च निरते मीने प्रागरुणोदयात् । लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् ॥१४॥
जंतूनां प्रीणनं यद्वद्वैत्रैव हि जायते । तद्वच्चैत्रे च स्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः ॥१५॥
यश्चैत्रस्नाननिरतान् जनान् दृश्यत्तुमोदते । तावताऽपि विमुक्ताधो विष्णोर्लोके महीयते ॥१६॥
सकृत्स्नात्वा मीनसंस्थे सूर्यो प्रातः कृताद्विकः । महापार्विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१७॥
स्नानानार्थं चैत्रमासे यः पादमेकं चलेद्यदि । सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥१८॥
अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् । सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभत्येव न संशयः ॥१९॥
यो गच्छेद्वनुरायामं स्नातुं मीनगते रवौ । सर्ववंधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥२०॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च । तानि सर्वाणि भो शिष्यं संति बाह्यजले उल्पके ॥२१॥
तार्वाङ्गुखंति पापानि गर्जन्ति यमश्चासने । यावच्च कुरुते जंतुश्चैत्रे स्नानं जलाशये ॥२२॥
तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे मासि द्विजोत्तम । वहिर्जलं समाश्रित्य सदा संनिहिताः शिशो ॥२३॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत् पद्मघटिकावधि । तिष्ठुंति चाज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ॥२४॥
तथाप्यकुर्वता स्नानं शापं दत्त्वा सुदारुणम् । स्वस्थानं यांति भो शिष्यं तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२५॥

धेनुके समान, सर्पोंमें शेषनागके समान, पक्षियोंमें गरुड़के समान, देवताओंमें विष्णुभगवान्के सदृश और वर्णोंमें ज्ञाहाणके समान श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ १० ॥ संसारकी प्रिय वस्तुओंमें प्राणकी भाँति, मित्रोंमें भार्याकी तरह, नदियोंमें गङ्गाकी तरह, तेजस्वियोंमें सूर्यकी नाई, शास्त्रोंमें वज्रकी तरह, धातुओंमें सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोंमें कौस्तुभ मणिकी तरह, फूलोंमें कमलकी तरह, तालाबोंमें मानसरोवरकी तरह धर्म-हेतुक सब मासोंमें यह चैत्रमास सर्वश्रेष्ठ है । संसारमें विष्णुके प्रति प्रीति बढ़ानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३ ॥ जब कि मीन लग्नपर सूर्य हों, ऐसे चैत्रमासमें अरुणोदयके पहले स्नान करनेसे लक्ष्मीके साथ-साथ विष्णुभगवान् भी प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ जिस तरह संसारके प्राणी अन्नसे जीवित तथा प्रसन्न रहते हैं । उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् तृप्त होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य किसी-को चैत्रस्नानमें संलग्न देखकर उसका अनुमोदन करता है, तो इसने ही से उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह प्राणी विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १६ ॥ जब कि सूर्य मीन राशिपर हों, ऐसे समय केवल एक बार प्रातःकालके समय स्नान और नित्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७ ॥ चैत्रमासमें स्नानके निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलता है, वह दस हजार अश्वमेघ यज्ञका फल पाता है ॥ १८ ॥ जो प्राणी स्थिर चित्तसे चैत्रस्नानका संकल्पमात्र करता है, वह भी संकड़ों यज्ञ करनेका फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १९ ॥ मीनगत सूर्यके समय जो प्राणी एक घनुष विस्तृत मार्ग भी चैत्रस्नानके लिए चलता है, वह सब वन्धनोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २० ॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने भी तीर्थ हैं, वे सब उस समय वहीके थोड़े-से जलमें विद्यमान रहते हैं ॥ २१ ॥ जब तक प्राणी चैत्रमासमें किसी जलाशयमें स्नान नहीं करता, तभीतक यमराजके आज्ञानुसार सब पातक गरजते हैं ॥ २२ ॥ हे शिशो ! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें जलके बाहर आकर ठहर जाते हैं ॥ २३ ॥ सूर्योदयसे लेकर छः घण्टी दिन चड़े तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जलके बाहर बैठे रहते हैं ॥ २४ ॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैत्रसमो मासो न कुतेन समं युगम् । न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम् ॥२६॥
न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् । न हि चैत्रसमं लोके पवित्रं कथयो विदुः ॥२७॥
तस्मादयं चैत्रमासः शेषशायिप्रियः सदा । अत्रतेन नयेद्यस्तु चांडालश्च स जायते ॥२८॥

यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छद्दैर्हीनमशोभते तथा ।

यथैव कन्या सकलैस्तुलक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणोज्जिता ॥२९॥

शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न शोभते सर्वगुणोपपन्नम् ।

यथा ललामैश्च विना सभा तैर्वस्त्रेण हीना ललना च शिष्य ॥

तथाऽन्यमासेषु कुतो हि धर्मश्चैत्रेण हीनश्च वृथैव याति ॥३०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि देहिना । चैत्रमासस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥

न नंदमुखोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवमुत्तुः ।

अतस्य योध्यापुरावालकस्य चैत्रे तु कार्यं विधिवत्पूजनम् ॥३२॥

जानकीकांतमुद्दिश्य मीनसंस्थे दिवाकरे । प्रातः स्नात्वा जपेद्राममन्यथा नरकं ब्रजेत् ॥३३॥

चैत्रमासो हि सकलः सताराघवदेवतः । यद्यत्कर्म हि तत्सर्वं तमुद्दिश्य चरेन्नरः ॥३४॥

जानकीकांत हे राम चैत्रे मीनगते रघौ । प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥

चैत्रेऽय मीनगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः । अर्ध्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण रघुनायक ॥३६॥

गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः । प्रतिगृह्य मया दत्तमर्थं सम्यक् प्रसोदथ ॥३७॥

ब्रह्माद्य देवताः सर्वा क्रपयो ये च वैष्णवाः । ते गृह्णतु मया दत्तं प्रसीदत्वर्थदानतः ॥३८॥

उसे दारुण शाप देकर वे देवता अपने स्वानको चले जाते हैं । अतएव हे शिष्य ! इस समय अवश्य स्नान करना चाहिए ॥ २५ ॥ चैत्रके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है, जलदानके समान कोई दान नहीं है, भायके समान कोई सुख नहीं है, उसो तरह चैत्रके समान और कोई वस्तु पवित्र नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसलिए यह चैत्रमास सदा विष्णुभगवान्का प्रिय रहा है । जा मनुष्य विना व्रत किये ही यह मास विता देता है, वह चांडाल होता है ॥ २८ ॥ जिस तरह कि सर्वगुणसम्पन्न होकर भी विना छाजनके घर नहीं अच्छा लगता, जिस तरह कि कोई कन्या सब सुलक्षणोंमें युक्त होती हुई भी जीवत्पतिका न हो तो वह नहीं अच्छी मालूम होती, जिस तरह कि नमकके विना शाक अच्छा नहीं लगता, जिस तरह विना उत्सवकी सभा नहीं अच्छी लगती, जैसे वस्त्रविहीन नारी नहीं शोभित होती, उसी तरह और-और मासोंमें धर्मकार्य करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता अर्थात् वह व्यथं हो जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव कोई भी मनुष्य ही, उसे चैत्रमासके वर्षका पालन करना ही चाहिए ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णसे पृथक् श्रीराम नहीं है और न श्रीरामसे पृथक् श्रीकृष्ण ही हैं । इसलिए यह उचित है कि चैत्रमासमें अयोध्यापुरीपालक श्रीरामचन्द्रजीका विवित् पूजन करे ॥ ३२ ॥ जब कि सूर्यदेव मीन राशिपर चले गये हों, उस समय प्रातःस्नान करके रामनामका जप करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करता, वह नरकगामी होता है ॥ ३३ ॥ सारे चैत्रमासके देवता राम और सीता ही हैं । अतएव उस समय जो कुछ भी कार्य करे, वह सब उन्हींके उद्देश्यसे करे ॥ ३४ ॥ स्नानके पहले इस तरह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे जानकीकान्त ! हे राम ! सूर्यके मीन राशिपर जानेके अनन्तर में चैत्रमासमें प्रातःस्नान करूँगा । कृपया मेरे इस पुनीत स्नानकार्यको निर्विघ्न समाप्त होने दीजिए ॥ ३५ ॥ आज सूर्य-इवके मीन राशिपर चले जानेके अनन्तर में प्रातःस्नान करके आपको अर्ध्य देंगा । हे रघुनायक ! उसे आप श्वीकार करिएगा । गंगा आदि सब नदी, सारे तीर्थ, मेघ तथा नद आदिका जल लाकर मैं आपको अर्ध्य देवान कर रहा हूँ, इससे आप प्रसन्न हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा आदि देवता, समस्त नदियाँ और सब वैष्णव

ऋषमः पापिनां शास्ता यम त्वं समदर्शनः । गृहाणार्थं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥३९॥
 इति चार्द्यं समप्र्याथं पश्चात्स्नानं समाचरेत् । वाससी परिधायाथं कुत्वा कर्मणि सर्वशः ॥४०॥
 जानकीकांतमध्यर्थं प्रसूनैर्मधुसंभवैः । श्रुत्वा रामकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥४१॥
 कोटिजन्माजिंतात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चात्रुतस्त्कथः ॥४२॥
 न स्नातश्चाप्यदाता च नरकानेव विदति । यथा माधः प्रयागे हि स्नातव्यः पुण्यमिच्छता ॥४३॥
 कार्तिकोऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥४४॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तिः । प्रयागे मासमात्रेण यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे सकृत्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखद्वादशभवं पुण्यं यद्ग्रोमतीजले ॥४६॥
 तत्पुण्यं सरयूतोयेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे मासि त्रिभिः स्नानै रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥
 कार्तिके पञ्चगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशाब्दकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥
 अयोध्या दुर्लभा लोके नराणां पापकारिणाम् । तावद्वर्जन्ति पापानि यावद्दृष्टा न सा पुरी ॥४९॥
 अयोध्याया यदाऽभावस्तदा रामकृतानि च । जगत्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ॥५०॥
 यत्रायोध्यापुरी नास्ति स्नानार्थं सरयूर्न च । रामतीर्थं न यत्रास्ति तदा तीर्थेषु कारयेत् ॥५१॥
 तैलाभ्यंगं दिवास्वापस्तथा वै कांस्यभोजनम् । खट्वानिद्रा गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥५२॥
 चैत्रे तु वज्रेयेदैषी द्विभृतं नक्तमोजनम् । चैत्रे मासे तु मध्याह्ने आंतर्नां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥
 पादावनेजनं कुर्यात्तदूत्रं तु त्रतोत्तमम् । मार्गेऽध्वग्नानां यो मर्त्यः प्रपादानं च चैत्रके ॥५४॥

अहं मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ हे पापियों पर शासन करनेवाले यमदेवता । बाप समदर्शी हैं । मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथोचित फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्यं समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करे । तदनन्तर कपड़े बदलकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद बसन्त श्रृंगारमें उत्पन्न फूलोंसे जानकीकान्तका पूजन करे और चैत्रमासको प्रशंसा करनेवाली कथायें सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेसे करोड़ों जन्मके एकत्रित पातक नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य चैत्रमासमें कौसिके पात्रमें भोजन करता है और अच्छी-अच्छी कथायें नहीं सुनता, न किसी पवित्र तीर्थमें स्नान करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिकी प्राप्ति नहीं होती । जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माधमासमें प्रयागस्नान करते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जैसे कार्तिकमासमें काशीकी पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, जैसे वैशाखमासमें द्वारकाजीमें स्नान करते हैं, उसी तरह रामभक्तोंको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान अवश्य करें । एक महीना प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है । बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाकी गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । किन्तु वह फल तब मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४-४७ ॥ बारह बरस तक कार्तिकमें काशीकी पञ्चगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एक पक्षतक अयोध्याकी सरयूजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ पापियोंके लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है । पापगण तभी तक गर्जन करते हैं, जबतक प्राणी अयोध्यापुरीका दर्शन नहीं कर लेता ॥ ४९ ॥ यदि किसी भावक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रजीने जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो, वहाँपर स्नान करे ॥ ५० ॥ जहाँ कि न अयोध्या है, न सरयूजी हैं और न कोई रामतीर्थ ही है । वहाँ जो कोई भी तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चारपाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिके समय भोजन तथा दिनमें दो बार भोजन इन आठ बातोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए । चैत्रमासमें जो प्राणी दोपहरके समय थके हुए ज्ञाह्यणोंके पैर धोता है, वह मानो सर्वोत्तम ब्रत करता है । जो प्राणी चैत्रमासमें राह चलनेवालोंको जल पिलाता है और रास्तेमें

मार्गे छायां तु यः कुर्यात्स स्वगें च महीयते । सलिलं मलिलाकांक्षी छायार्थी छायमिच्छनि ॥५॥

व्यजनं व्यजनाकांक्षी दानमेतत् चैत्रके ।

जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीने विशिष्यते । चैत्रे मासे तु सप्राप्त ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥५६॥
 अदर्शोदककुंभं तु चातको भुवि जायते । चैत्रे देयं जलं चान्नं देया शूद्राणा मनोरमा ॥५७॥
 आदर्शदानं तांचूलगुडदानं प्रकाश्येत् । गोधूमतुवरीदानं दानं दध्योदनस्य च ॥५८॥
 घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमिज्जुरमस्य च । तथा श्रीफलदानं च दानं चाप्रफलस्य च ॥५९॥
 सूक्ष्मवस्त्रमंचकयोः पानपात्रं कमङ्गलम् । यतानां दण्डदानं वै तैलदानं मठेषु च ॥६०॥
 जीणोद्वारं मठानां च घंटानां करणं तथा । प्रामादकरणं चैत्र वार्षीकृपादिक तथा ॥६१॥
 मार्गस्थानां छत्रदानं मध्याह्नेऽतिथिपूजनम् । करपात्रं यतीनां च गोग्रासं तु गवामपि ॥६२॥
 एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । फलं शाकं तु मूलं च वंदं पुष्टं तु चन्दनम् ॥६३॥
 उशीरः शीतलं द्रव्यं कर्पूरं कस्तुरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ॥६४॥
 गोरसानां पृथग्दानं यतित्रात्मणभोजनम् । सुवासिनीपूजनं च रामनामप्रलेखनम् ॥६५॥
 पुस्तकानां तथा दानं तथा कुंकुमकेषरे । जातीफलं लवगाश जातिपत्रीवरांगके ॥६६॥
 धातकीं नागरं धूपं वीजपूरं कलिंगकम् । जंवारं पनसञ्चयं कपितथं मातुलंगकम् ॥६७॥
 कृष्मांडदानमामकरणं मातृशोधनम् । तथोपानहदानं च गजवाजिभवं तथा ॥६८॥
 एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रे तु वज्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ॥६९॥
 सर्वाणि चैत्र मांसानि क्षीद्रं सौवारकं तथा । राजमापादिकं चापि चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ॥७०॥
 परान्नं च परद्रोहं परदारागमं तथा । तीर्थधनानि सदेवंह चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ॥७१॥
 द्विदलं तिलतेलं च तथाऽन्नं शल्यदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं चैत्रस्नायी तु वर्जयेत् ॥७२॥

छायाका प्रबन्ध करता है, वह स्वगलोकमें जाकर वहाँवालोंके हारा पूजित होता है। इस मासमें लोगोंको चाहिए कि जो मनुष्य पंखा चाहता हो, उसे पंखा दे। जो छाताका इच्छुक हो, उसे छता दे। जो पानी चाहता हो, उसे पानी पिलाये। यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है। जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर किसी कुटुम्बी ब्राह्मणको जलभरा घटदान नहीं देता, वह मरकर चातक होता है। इसीलिए चैत्रमासमें जल, अम्ब और गुडका दान, गेहूं, तोरी, दही, चावल, धीसे भरे हुए कांस्यपात्रका दान, ऊँखके रसका दान, बेलका दान, आमका दान, महीन कपड़े और पलंगका दान, जल पीनेका पात्र, कमण्डलु तथा संन्यासियोंके लिये दण्डदान, मठोंमें तेलका दान; मठोंका जीणोद्वार, घंटाघर बनवाना, मकान बनवाना, कुआँ-बावली आदि बनवाना, मार्गमें चलनेवालोंके लिये छत्रदान, दोपहरके समय अतिथियोंका पूजन, यतियोंको कमण्डलु-दान और गीओंको गोग्रासदान ये चैत्रमासके दान बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और बतलाये गये हैं। जैसे-फल, शाक, मूल, कन्द, पुष्ट, चन्दन ॥ ५८-६३ ॥ खस, इसी तरह और-और ठण्डी चीजें, कपूर, कस्तुरी, दीपदान, धेनुदान, गृहदान, गोरसदान, यतियों और ब्राह्मणोंको भोजनदान, सोहागिन स्त्रियोंका पूजन, रामनामका लेखन, पुस्तकदान, कुमकुम और केसरका दान, जायफल, लौंग, जावित्री ॥ ६४-६६ ॥ धातकी, नागरमोथा, धूप, वीजपूर, तरबूज, जम्भीरी नीवू, कटहल, कैथा, कूष्माण्डदान, बगीचे लगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूतेका दान, हाथी एवं धोड़ेका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं। अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥ चैत्रस्नान करनेवालेको सब प्रकारके मांस, मधु, कांजी एवं राजमाष आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७० ॥ दूसरेका अम्ब, दूसरेसे द्वोह और दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम, चैत्रस्नायी इन कामोंको सर्वदाके लिए छोड़

देववेदद्विजानां च गुरुगोव्रतिनां तथा । खीराजमहतां निंदां चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥७३॥
 प्राण्यगमाभिष चूर्णं कले जंबीरमामिषम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता चाननं पर्युषितं तथा ॥७४॥
 ब्रह्मचयेमवःसुप्तेः पत्रावल्यां च भोजनम् । चतुर्थकाले शुंजीत कुर्यादिवं सदा व्रती ॥७५॥
 संवत्सरप्रातपाद तेलाभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नायी नरोऽन्यत्र तेलाभ्यंगं न कारयेत् । ७६॥
 अलाचुं चापि वृताक कूर्माङ्गं वृहतीफलम् । इलेष्मातकं कलिंगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥७७॥
 रजस्वलां त्यज म्लेच्छपतितव्रातकैः सह । द्विजद्विद्वेदवाह्नैश्च न वदेत्सर्वदा व्रती ॥७८॥
 पलांडुं लशुनं चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकामूलकं शिशुं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥७९॥
 एष्मः स्पृष्टं श्वपाकेशं सूतकान्नं च वजयेत् । द्विपाचितं च दरधानं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥८०॥
 एतानि वज्रयेन्नित्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कुच्छुद्रां च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या रामतुष्टये ॥८१॥
 क्रमात्कूर्माङ्गं वृहतोछत्राकं मैलकं तथा । श्रीफलं च कलिंगं च फल धात्रीभवं तथा ॥८२॥
 नारिकेलमलाचुं च पटोलं बद्रीफलम् । चर्मवृन्ताककं वल्लीशाकं तुलसिंजं तथा ॥८३॥
 शाकान्येता न वज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदैव हि ॥८४॥
 एष्योऽन्यद्वद्वर्जयेत्कञ्चित्तद्रामप्रीतये नरः । दत्त्वा व्रतांते विप्राय भक्षयेत्सर्वदैव हि ॥८५॥
 फलगुनीपौर्णिमारभ्य यावच्चैत्रो तु पौर्णिमा । चैत्रस्नानं तु तावद्विन नरैः कार्यं च भक्तिः ॥८६॥
 अथवा मीनगो मानुर्यान्तावत्प्रकारयेत् । दशमीं फालगुनीं शुद्रां समारभ्य मधोः सिता ॥८७॥
 यावद्वद्वेत्तु दशमी तावत्सनानं प्रकारयेत् । स्नानस्यैवं त्रयो भेदाः शिष्ठ ते समुदीरिताः ॥८८॥
 चैत्रशुक्लवृतीयाया यावद्वशाखसभवा । दृतीया शुक्लपक्षस्य द्विष्ठयेति स्मृताऽत्र या ॥८९॥

दे । क्योंकि ये तीयके सब पुण्योंको नष्ट करनेवाले उत्पात हैं ॥७१॥ दाल, तिलका तेल, कंकड़-पत्तर मिला हुआ अन्न, भावसे दूषित और शब्ददूषित अन्नोंको चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥७२॥ देवता, वेद, आह्वाण, गुरुजन, गोदृती, स्त्री, राजा और अपनेसे बड़ोंको निन्दाका भी परित्याग कर देना चाहिए ॥७३॥ प्राणियोंके अङ्गका मांस, मांस-मत्स्यका चूर्ण, फलोंमें जंभारी नीबू, धान्योंमें मसूर और जूठा अन्न ये सब मांसतुल्य होते हैं । इसलिए इनको न खाय । ब्रह्मचर्य, पृथ्वीपर शयन, पत्तलमें भोजन और चौथे पहरमें भोजन करता हुआ त्रती मनुष्य इन नियमोंका बराबर पालन करे ॥७४॥ ७५॥ केवल संवत्सरको सुमाप्तिवाली प्रतिपदाको शरीरमें तेल लगाये और किसी समय नहीं ॥७६॥ लौवा, भेटा, कुम्हड़ा, छोटा भण्टा, लिंगोड़ा, तरबूज तथा कैथा, इन वस्तुओंको न खाना चाहिए ॥७७॥ म्लेच्छ, पतित, रजस्वला, चाषड़ाल, द्विजहेतों तथा वेदसे बहिर्कृत मनुष्योंसे बात भी न करे ॥७८॥ ७९॥ पगज, लहसुन, छत्राक (भुईफोर), गाजर, मूली तथा सहिजन इन वस्तुओंको भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥७१॥ ऊपर बतलाये पतितों, कुत्ते तथा कीएसे संपृष्ठ एवं सूतकके अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिए । दो वारका पकाया और जला हुआ अन्न भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥८०॥ ऊपर बतायी चीजें न खाय और अपनेसे बन पड़े तो रामचन्द्रजोंका प्रसन्न करनेके लिए कुच्छुचान्द्रायण आदि व्रत भी करे ॥८१॥ कुम्हड़ा, भेटा, भुईफोड़, मूली, बेल, तरबूज, आँखिलेका फल, नारियल, लौआ, परवल, वैर, चर्मवृन्ताक, वल्लीशाक और तुलसी, इन्हें क्रमशः प्रतिपदा आदि तिवियोंको न खाय । उसी तरह रविवारको धात्रीफल (आँखला) न खाय ॥८२-८४॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओंका परित्याग कर दे । किन्तु त्रितसमाप्तिके अनन्तर आह्वाणको उस वस्तु-का दान देकर खाय तो कोई हर्ज नहीं है ॥८५॥ फालगुनको पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्यन्त भति पूर्वक चैत्रस्नानका व्रत करना चाहिये ॥८६॥ अथवा जबतक सूर्य मीन राशिपर रहें, तबतक व्रत करता रहे । फालगुन कृष्णपक्षकी दशमीसे लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए । इस तरह है शिष्ठ ! इस चैत्रस्नानके भेद मैंने तुमको बतलाये ॥८७॥ ८८॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर वैशाख शुक्लपक्षकी

तावच्च शीतला गौरी स्नातव्या सुखलब्धये । सीतार्थं तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥१०॥
 तृतीया या तु चैत्रस्य मितपक्षोद्भवा तथा । वैशाखशुक्लपक्षे या तृतीयाऽशुक्लसंज्ञिका ॥११॥
 नारी या शीतलागौरीत्रस्नानपरायणा । अभ्यंगं सा करोत्वनयोस्तिथ्योर्नान्यदिने कदा ॥१२॥
 त्रिंशच्च तिथयः पुण्याश्वैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि विशेषोऽत्र तिथीनां वर्ण्यते मया ॥१३॥
 चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिस्त्वमा तथा ॥१४॥
 एताः शुभाश्वैत्रकृष्णे महापातकनाशनाः । इदानीं चैत्रमासस्य मितपक्षोद्भवाः शुभाः ॥१५॥
 वर्ण्यन्ते तिथयः श्रेष्ठा नराणां हितकाम्यया । सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य दशमीदिनम् ॥१६॥
 यावत्तावच्छुभाः सर्वाः स्नानदानादिकर्मणि । यत्कृतं च प्रतिपदि स्नानदानव्रतादिकम् ॥१७॥
 द्वितीयायां च तत्प्रोक्तं द्विगुणं नात्र संशयः । यत्कृतं च द्वितीयायां भक्त्या स्नानादिकं नरैः ॥१८॥
 द्विगुणं तत्तृतीयायां चैत्रमासे नृपोत्तम । एवं सर्वांमु तिथिषु यावत्स्यान्वर्मा शुभा ॥१९॥
 एवं विशेषो ज्ञातव्यो यथाऽग्रादिक्षुचर्वणात् । यथा क्षीगदधि प्रोक्तं दधनस्तु नवनीतकम् ॥२०॥
 नवनीतादूधृतं यद्वत्तथाऽत्र तिथिनिर्णयः । चैत्रमासस्तु मासानां तत्र पक्षः सितो वरः ॥२१॥
 सितक्षे क्रमेणैव यावत्सा नवमी तिथिः । तावदेकेकशः श्रेष्ठा सर्वांमु नवमी वरा ॥२२॥
 यस्यां जातं रामजन्म धर्मसस्थापनाय हि । तस्मात्तिथिस्तु सा ज्ञया कर्मनिर्मलनक्षमा ॥२३॥
 तस्यां दत्तं हुतं जसं यत्किञ्चिच्च कृतं शुभम् । सर्वं तदक्षयं विद्यान्वात्र कार्या विचारणा ॥२४॥
 प्रतिपदिनमारभ्य नवरात्रमुपोपयेत् । प्रत्यहं रघुवीरस्य पूजनं चैव कारयेत् ॥२५॥
 संवत्सरप्रतिपदि ध्वजाः सौधोपरि स्थिताः । दिव्यवस्त्रं श्रूपं भूताश्च मनोरमाः ॥२६॥

अक्षयतृतीया तक इस संसारमें शीतला गौरीका निवास रहता है। इसलिए तिथियोंको सुखप्राप्तिके लिए सीतार्थीर्थमें जाकर स्नान तथा सीताजीका पूजन करना चाहिए ॥८६॥ ९०॥ नृशुक्लपक्षके तृतीया तथा वैशाखशुक्लकी तृतीया ये दोनों तृतीयायें अक्षयसंज्ञक मानी गयी हैं ॥८१॥ अतएव जो नारा शीतला गौरीका व्रत कर रही हो, उसे चाहिए कि इन दोनों तिथियोंको शरीरमें तेल लगाये। इनके सिवाय और किसी अन्य दिनमें ऐसा करना बर्जित है ॥८२॥ वैसे तो चैत्रमासकी तीनों तिथियाँ पर्वतः । फिर भी इनमें जो विशेषता है, उसे मैं तुमको सुनाता हूँ ॥८३॥ चैत्र कृष्णपक्षकी पञ्चमी, दशमी एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या, ये चैत्र कृष्णपक्षकी तिथियाँ बड़ी पर्वत और महान् पातकोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं। अब मैं चैत्रके शुक्लपक्षकी शुभ तिथियाँ गिना रहा हूँ ॥८४॥ ८५॥ इससे मनुष्योंका बड़ा कल्याण होगा। यह मेरा हृदयित्वा है। संवत्सर-समाप्तिकी प्रतिपदासे लेकर दशमी पर्वन्त जितनों तिथियाँ हैं, वे सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कही गयी हैं। उनमें भी प्रतिपदाको स्नान-दान आदि करनेका जो कल शास्त्रोंमें कहा गया है, उसमें द्वितीया द्विगुणित फलदायक होती है। द्वितीयाको जो कल कहा है, उससे तृतीयामें द्विगुणित फल होता है। इस तरह नवमी तिथि पर्वन्त सब तिथियाँ शुभ हैं। इनमें इसी प्रकारकी विशेषता है कि जैसे उंखका रस प्रथम गाँठसे लेकर आखिरी गाँठक कर्मणः मीठा होता है। जैसे गौसे दूध होता है, दूधसे दही तैयार होता है, दहीसे मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार होता है। उसी तरह यहीं तिथियोंका भी निर्णय होता है। पहले तो सब मासोंमें चैत्रमास ही श्रेष्ठ है। उनमें भी शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदासे लेकर नवमी तककी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं। उनमें भी नवमी तिथि सर्वप्रधान तिथि है ॥९६-१०२॥ नवमी तिथियों धर्मकी स्थापना करनेके लिए रामका जन्म हुआ था, इसीसे वह तिथि समस्त कर्मोंको नष्ट करनेवाली मानी गयी है ॥१०३॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता, हचन किया जाता, तप किया जाता अथवा जो कोई भी शुभ कर्म किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। इसमें संशय कोई करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥१०४॥ इसलिए लोगोंका चाहिए कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नौ रात्रितक उपवास करके रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥१०५॥ संवत्सरकी प्रतिपदाको मकानके ऊपर दिव्य वस्त्र

रामजन्मसूचनार्थं प्रीत्यर्थं राघवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भक्तिः ॥१०७॥
गृहे देवालये चाऽथ गोषु बृन्दावने शुभे । संमार्जनादिकं नित्यं कार्यं चन्दनवारिभिः ॥१०८॥
ततः पापणचर्णंश्च नानापद्मादिकानि हि । लेखनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥
अष्टोत्तरसहस्राख्यं रामतोभद्रमुत्तमम् । शताख्यं वा लिखेद्ग्रन्थवाऽन्यननोरमम् ॥११०॥
तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः । देवो द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च ॥१११॥
कदलीस्तंभयुक्तानि हीक्षुदण्डयुतानि च । नानावष्टाकिंकिणीभिर्धर्वनितान्युज्ज्वलानि च ॥११२॥
रम्यादश्मैडितानि विचित्राणि शुभानि च । नानाचित्रवितानैश्च मुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥
तस्यां षोडशमाष्ठैश्च प्रतिमा कांचनोद्धवा ॥११४॥

द्विसुजा रामचन्द्रस्य सर्वलक्षणलक्षिता । चतुर्विशतिमाष्ठैश्च प्रतिमा रजतोद्धवा ॥११५॥
कौशलपायाः शुभा कार्या पूजनीया मनोरमा । यथावित्तानुमारेण पूजयेत्प्रत्यहं नरः ॥११६॥
भेरीमृदंगत्यैश्च गीतनृत्याद कारयेत् । नानापकान्नैवेद्यैस्पचारैः सुपूजयेत् ॥११७॥
प्रतिपद्मिनमारभ्य यावत्तु नवमीदिनम् । रामायण तावदेव पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥
यद्वै बालमीकिना गीतं श्रवणान्मंगलग्रदम् । आनन्दसंज्ञकं रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥
नव कांडानि नवमिदिनैरेव पठेन्नरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं प्रयत्नतः ॥१२०॥
अथवा प्रत्यहं सर्गाः पठितव्यास्तु द्वादश । शपस्त्वेकः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः ॥१२१॥
अष्टोत्तरशतः सर्गं रामकीर्तनमालिका । मेरुयुक्ता पठेदेवं रामाग्रे नवमिदिनैः ॥१२२॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्कलम् । रामायणस्य पठनात्तत्कलं नवरात्रके ॥१२३॥

और माला आदिसे अलंकृत छवजायें रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिए ॥१०६॥१०७॥ घरमें, देवालयमें, गोणालामें तथा तुलसीकी बगीची-में उन दिनों चन्दनके जलका छिड़काव करना चाहिए ॥१०८॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णसे नील-नीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहिए । तदनन्तर अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र या शतात्मक अथवा जो अपनेको जैव, उस भद्रको रचना करे ॥१०९॥११०॥ उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-चित्र वर्णोंका मण्डप बनाये । उस मण्डपमें चार द्वार बनावे और स्थान-स्थानपर तोरणकी स्वायना करे ॥१११॥ जहाँ-तहाँ केलेके खम्मे तथा इक्षुदण्ड लें और किकिणी आदि लगा दे, जिनकी मधुर धूनि मुनायी पड़ती रहे ॥११२॥ जहाँ-तहाँ सुन्दर और बड़े-बड़े शीशे लगा दे, विविध प्रकारके चित्र लगावे, तरह-तरहकी चाँदनी छाँमें लगावे और मोतियोंके झट्टवे लटकावे । उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मंचको रचना करे और उसपर अच्छे-अच्छे करडोंकी मनोरम शाय्या विशाय्ये । फिर उसपर सोलह मासेको कांचनमयी प्रतिमा स्थापित करे ॥११३॥११४॥ रामचन्द्रजीकी वह सुवर्णमयी प्रतिमा सब सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए । इसके अनन्तर चौबास पलकी रजतमयी प्रतिभा कौसल्याकी बनावे और उसकी पूजा करे । जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥११५॥११६॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, तुड़ही आदि बाजे बजावे और नाचेभावे । नाना प्रकारके नैवेद्यों और उपचारोंसे पूजन करे ॥११७॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी तिथि पूर्णि इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥११८॥ इसका बालमीकि मुनिने गान किया है । यह नूननेमें मंगलग्रद और मनोरम है । इससे इसका पाठ बावश्यक है ॥११९॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनोंमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन एक-एक कांडका पाठ करे ॥१२०॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे । ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग बाकी बचेगा । उसे बीचमें किसी रोज पूरा कर देना चाहिए ॥१२१॥ इस तरह अष्टोत्तरशत समर्पित इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनोंमें रामचन्द्रजीके समक्ष पाठ करना चाहिए ॥१२२॥ सब

श्लोकं वा श्लोकपादं वा यद्रामायणसंभवम् । नवरात्रे पठिष्यन्ति चैत्रे ते मोक्षभागिनः ॥१२४॥
 एवं हि प्रत्यहं कार्यं कौसल्यारामपूजनम् । सपुत्राणां तु नारीणां तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥
 सपुत्रद्विजवर्णाणां विशेषात्पूजनं स्मृतम् । वस्त्राद्यलङ्कारयुतं चित्रभोजनभोजितम् ॥१२६॥
 एवं कृत्वा विधिं सर्वं नवम्यां च विशेषतः । पूजयित्वा रामचन्द्रं वाहनारूढमुत्तमम् ॥१२७॥
 भेरीमृदंगधोषैश्च तुर्यदुन्दुभिनिःस्वनैः । वारस्त्रीकृतनृत्यैश्च गायकानां च गायनैः ॥१२८॥
 एवं नानासपुत्साहैमंडितं लत्रशोभितम् । चामरैर्वीज्यमानं च पुष्टके संस्थितं वरम् ॥१२९॥
 रामतीर्थातिकं नीत्वा पञ्चामृतघट्टर्वर्त्तैः । स्नापयेद्रघुवीरं हि पुण्यतोयैस्ततः परम् ॥१३०॥
 रुद्रसूक्तंविष्णुसूक्तैः सहस्रैर्नामभिस्तु वा । मांगल्यद्रव्यसंमिश्रैर्जलैस्तमभिषेचयेत् ॥१३१॥
 मांगल्यवरद्रव्यैश्च युक्तं तन्मंगलाभिघम् । प्रोच्यते मंगलस्नानं तच्चैत्रे दुर्लभं नृणाम् ॥१३२॥
 तत्पंचामृततीर्थं तु तीर्थमध्ये विनिक्षिपेत् । तत्र सर्वैर्जनैः शीघ्रं स्नातव्यं तदनन्तरम् ॥१३३॥
 सहस्रावमृथस्नानैर्यत्कलं प्राप्यते नरैः । तत्कलं रामचन्द्रस्य मंगलस्नानकारणात् ॥१३४॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गायासु सरित्सु च । प्राप्यते यत्कलं स्नानान्मङ्गलस्नानकृत्य यदा ॥१३५॥
 एवं रामं तु संस्नाप्य सीतापूक्तं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वोक्तवायादि मंगलैरात्येदगृहम् ॥१३६॥
 गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पारायणं समाप्याथ पुस्तकं पूजयेच्छुमम् ॥१३७॥
 नानोत्सर्वैर्दिनं नीत्वा कार्यं जागरणं निशि । दशम्यां प्रातरुत्थाय भोजयित्वा द्विजान् वहून् ॥१३८॥
 पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरवे तन्निवेदयेत् । ततः स्वयं सुहन्मित्रैः कुर्याद्विजनभुत्तमम् ॥१३९॥
 एवं वतं समाख्यातं चैत्रस्य नवरात्रके । अतस्तन्नवरात्रे हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥
 नवरात्रेऽपि सा रामनवमी परमार्थदा । तत्समाना तिथिर्नान्या चैत्रमासे शुभप्रदा ॥१४१॥

तीर्थोंमें और सब दानोंमें जो पुण्य है, वही फल नवरात्रमें इस रामायणके पाठ करनेमें है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमें जो लोग एक श्लोक अथवा श्लोकके एक चरणका भी पाठ करेंगे, वे मोक्षके भागी होंगे ॥१२४॥ इस तरह प्रतिदिन कौसल्या और रामका पूजन करना चाहिए । उस समय पुत्रवती स्त्रीके पूजनका विवान है ॥ १२५ ॥ इस अवसरपर पुत्रवान् ब्राह्मणोंके भी पूजनका विशेष महत्त्व माना गया है । पूजनके बाद उन्हें विविध प्रकारके वस्त्र, अलङ्कार और तरह-तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विविसे नवरात्रमें विशेषकर नवमों तिथिको वाहनपर आरूढ़ रामका पूजन करके भेरी, मृदंग, तुड़ही, दुन्दुभी आदिके गम्भीर निनाद, गणिकाओंके नृत्य, गायकोंके गायन आदि नाना प्रकारके उत्साहोंसे मंडित, सुन्दर छत्रसे सुशोभित, चमरसे अलंकृत, पुष्पक विमानपर आरूढ़ रामचन्द्रजीको रामतीर्थपर ले जाकर पञ्चामृतके घड़ों तथा पवित्र जलोंसे स्नान करावे ॥ १२७-१३० ॥ स्नान कराते समय रुद्रसूक्त, विष्णुमूर्तक अथवा सहस्रनामावलीका पाठ करता जाय । पहले ही जलमें विविध प्रकारके मङ्गलमय द्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलद्रव्य मिले जलसे स्नान करानेको मङ्गलस्नान कहते हैं । यह चैत्रमासमें किया जाता है और बड़ी कठिनाईसे लोगोंको ऐसा सुयोग प्राप्त होता है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पञ्चामृतको किसी तीर्थमें डाल दे और पूजामें जितने लोग सम्मिलित हुए हों, वे सब उस तीर्थमें जाकर स्नान करें । तभी प्राणीको मङ्गलस्नानका फल प्राप्त होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल मङ्गलस्नान करनेवालेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनको पूजा करे और पूर्वोक्त वाजे-गाजेके साथ किर उन्हें अपने घर ले आवे ॥ १३६ ॥ घरपर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आतन्दरामायणका पारायण समाप्त करके पुस्तककी पूजा करे ॥ १३७ ॥ नाना प्रकारके उत्सव मनाता हुआ दिन विताये और रातभर जागरण करे । दशमीको सबेरे उठे और नित्यकृत्यसे निवटकर बहुतेरे ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ १३८ ॥ इसके बाद गुहकी पूजा करके उन्हें सब वस्तुयें दान दे । तत्पश्चात् सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमें इस तरह नृत करतेका विवान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंने चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनकं विधिम् । यत्कुत्वा सफलं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥
 चैत्रे मासि सिते पक्षे या वै ह्येकादशी तिथिः । सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा चोपोद्या व्रतकारिभिः ॥१४३॥
 श्रेष्ठा सा द्वादशी ज्ञेया तस्यां तु यमपूजनम् । कायै दध्योदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥
 तिस्त्रै तिथयः श्रेष्ठाचैत्रे मासि महत्तमाः । त्रयोदशी तथाभूता पौर्णमासी तथैव च ॥१४५॥
 यासु स्नानश्च दानं च सर्ववांछितदायकम् । यैर्न स्नातं चैत्रमासे न स्नातं नवरात्रके । १४६॥
 तैस्तु चांत्यदिने स्नात्वा चैत्रस्नानफलं लभेत् । तासु श्रेष्ठा पौर्णिमा हि सर्वपातकनाशिनी ॥१४७॥
 तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलामये । उपोद्य च चतुर्दश्यां पूर्ववन्प्रणडपादिकम् ॥१४८॥
 कुत्वा तस्मिन् धान्यराशौ कलशं वारिपूरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥
 पञ्चरत्नयुतं स्थाप्य वस्त्रेणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्सीतायुतं रामं सौवर्णं विधिपूर्वकम् ॥१५०॥
 भ्रातुभिर्वायुपुत्रेण सुग्रीवेण समन्वितम् । विभीषणांगदाभ्यां त जांश्वतसहितं तथा ॥१५१॥
 पूजयेदेवदेवेशं परमं गुरुनुज्ञया । उपचारैः पोदशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१५२॥
 रात्रौ जागरणं कुर्याद्वीतवाद्यादिमंगलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां च सप्तनीकान् द्विजोत्तमान् ॥१५३॥
 त्रिशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्यायसान्नादिना व्रती ॥१५४॥
 अतो देवा हति द्वादशां शुहृष्टिलसर्पिषा । प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक् पृथक् ॥१५५॥

दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् । पुनर्देव समभ्यर्थं देवांश्च तुलसीं तथा ॥१५६॥
 ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती । गुरुतोपदेष्टारं वस्त्रालंकारमण्डनैः ॥१५७॥
 सप्तनीकं समभ्यर्थं ततो विप्रान् क्षमापयेत् । युष्मतप्रसादादेवेशः सुप्रसन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है ॥ १४० ॥ नवरात्रमें भी रामनवमी परमार्थदायिनी है । इसके समान शुभप्रद तिथि चैत्रमास भरमें कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उस उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके करनेसे चैत्रस्नान सफल हो जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी पड़ती है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रव्रत करनेवालोंको यह एकादशीव्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १४३ ॥ इसी तरह चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस रोज दही-भातसे यमका पूजन करके जलसे पूर्ण घडेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरमें तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैसे-द्वादशी, त्रयोदशी और पौर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेसे ये तिथियाँ सब कामनाओंको पूर्ण करती हैं । जिसने चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, वह अन्तिम दिन अर्थात् पूर्णिमाको स्नान करके चैत्रस्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी सब तिथियोंसे पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और सब पातकोंको नष्ट करती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानेके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह है कि चतुर्दशीको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वारिपर्ण कलश रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रखें ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न ढालकर वस्त्रसे ढाँक दे । तदनन्तर सीता, लक्ष्मण आदि भ्राताओं, हनुमान्‌जी, सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुकी आजासे देव-देवेश रामकी घोडश उपचारों एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंसे पूजन करें ॥ १५०-१५२ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गावेबजावे और सबेरे तीस सप्तनीक ब्राह्मणों अवबा जैसी सामर्थ्यं हो, उसके अनुसार ब्राह्मणोंको बुलाकर खीर-पड़ी आदि भोजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'अतो देवा' इस मन्त्रके द्वारा तिल और धीसे हवन करें । इस हवनसे देवदेव शाम तथा अन्यान्य देवताओंको प्रसन्न किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम करें । फिर समस्त देवताओं तथा तुलसी देवीका फिरने पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण देकर जलके उपदेष्टा सप्तनीक गुरुकी पूजा करे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना करता हुआ

ब्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकुर्तं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः ॥१५९॥
 मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं ममार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् ॥१६०॥
 इति क्षमाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च विसर्जयेत् । तामचाँ गुरवे दद्याद्रत्नयुक्तां सदा व्रती ॥१६१॥
 ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुजीत भक्तिमान् । एवमुद्यापनविधिश्चैत्रस्नानफलामये ॥१६२॥
 सविस्तरश्च कर्तव्यश्चैत्रस्नानपरायणः । एवं यः कुरुते सम्यक् चैत्रस्नानव्रतं नरः ॥१६३॥
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् । सर्वत्रतः सर्वतीर्थः सर्वदानैश्च यत्कलम् ॥१६४॥
 तत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायांति तद्वयात् ॥१६५॥
 एव यास्यामो वदन्त्येवं यच्चैत्रव्रतकुञ्चरः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥१६६॥

श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्तया ये वै तद्विजयतिवैष्णवान्वदंति ।

ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कलुपविनाशनं लभन्ते ॥ १६७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे
आदिकाव्ये चैत्रमहिमावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चैत्रस्नानका माहात्म्य)

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृतो वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुरो संतोषदेवते ॥ १ ॥
 श्रीरामदास उवाच

शृण शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्ठं त्वया मम । त्रिव्यप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूम्यां द्विजोत्तम ॥ २ ॥
 अयोध्यापालकस्याथ राजो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याया जठरान्निर्गतो वहिः ॥ ३ ॥

कहे कि आप लोगोंकी कृपासे देवेश रामचन्द्रजो हमपर सदा प्रसन्न रहें ॥ १५८ ॥ मैंने सात जन्म तक जो पाप किये हों, वे इस व्रतसे नष्ट होजायें और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ १५९ ॥ इस पूजनके प्रभावसे मेरे सब मनोरथ सफल हों और देहान्त होनेपर हमें अतिशय दुलभ वैकुण्ठ घाम प्राप्त हो ॥ १६० ॥ इस तरह क्षमायाचना करके उन ब्राह्मणोंको प्रसन्न करता हुआ दिदा करें और रत्न तथा प्रतिमा समेत पूजनकी सब वस्तुयें गुरुको दान दे दे ॥ १६१ ॥ इसके बाद नातेदारों और मित्रोंके साथ भोजन करें। इस तरह चैत्रमासका फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १६२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए। जो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पातकोंसे छूटकर विष्णुभगवान्को सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है। समस्त व्रतों, सब तोथों और समस्त दानोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसका करोड़ोंगुना अधिक फल इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता है। इसके भयसे चैत्रव्रतीके देहमें रहनेवाले समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं। वे पाप कहते हैं कि अब हम कहाँ जायें? अतः चैत्रव्रत करनेवाले मनुष्यको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतकी कथाको अनुसरे या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सूनाते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका फल पाते हैं और उनके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योस्त्वा'-भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव! सब मासोंमें यह चैत्रमास वर्षों श्रेष्ठ माना गया है? सो मेरे सन्तोषके लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे महाबुद्धिमान् शिष्य! तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। मैं

चैत्रे मासि सिते एके नवम्या परमे दिने । पुनर्वस्वर्क्षेनक्षत्रे ग्रोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजसद्भानि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुंदुभयो नेतुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपतत् । राजसद्भानि वाद्यानां संधा नेतुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रययुर्नृपजं धालं हृष्टा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमाळडा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौसल्याजठोद्धरम् । ब्रह्मा रुद्रश्च यूर्यश्च देवेन्द्रादिमुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदध्युः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुत्साहसमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुवुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा सुराः सर्वे हर्षादिवं रघृत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या वयं देव मुक्ताशासुरजाह्नयात् । यन्निमित्तं त्वया देव खवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यगीकुरुम्बाद्य देहस्मै सुवहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 तुतोष नितरां तेषु देवेषु भगवान्धरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्यक् ग्रोक्तं सुराः सर्वे तत्त्वैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

भवद्धिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले महत्तमे । शृणुष्व वचनं मे ऽय यद्दर्पत्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठायां भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥ १७ ॥
 माघमासाद्वरश्चायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नातं विचिंतितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोद्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्ग्रोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यत्फलं सोमयागेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । सुनो—॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथकी रानी कौसल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पौर्ण ग्रह ऊने स्थानमें बैठे थे, तब मध्याह्नके समय अवधेश दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतीतलमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवृष्टि की । राजा के महलोंमें अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेश्यायें नाचने और गाने लगीं । उस समय पृष्ठीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस बच्चेको देखनेके लिए आये और उसे देख-देखकर बड़े प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर इन्द्रआदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपलक्ष्यमें विविध उत्सव किये । इस तरह उत्सवके समय आकाशमें विद्यमान देवता रामको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा—॥ ७-११ ॥ हे देव ! आज हम लोग वन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अप भी इस बातको अच्छीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर चढ़ बहुत प्रसन्न हुए और कहा—हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी बात कही है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ—॥ १४-१६ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल अश्वमेधसे होता है, जो फल गोमेघसे होता है

चैत्रे मासि सिते एके नवम्या परमे दिने । पुनर्वस्वर्क्षेनक्षत्रे ग्रोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजसद्भानि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुंदुभयो नेतुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपतत् । राजसद्भानि वाद्यानां संधा नेतुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रययुर्नृपजं धालं हृष्टा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमाळडा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौसल्याजठोद्धरम् । ब्रह्मा रुद्रश्च यूर्यश्च देवेन्द्रादिमुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदध्युः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुत्साहसमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुवुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा सुराः सर्वे हर्षादिवं रघृत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या वयं देव मुक्ताशासुरजाह्नयात् । यन्निमित्तं त्वया देव खवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यगीकुरुम्बाद्य देहस्मै सुवहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 तुतोष नितरां तेषु देवेषु भगवान्धरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्यक् ग्रोक्तं सुराः सर्वे तत्त्वैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

भवद्धिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले महत्तमे । शृणुष्व वचनं मे ऽय यद्दर्पत्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठायां भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥ १७ ॥
 माघमासाद्वरश्चायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नातं विचिंतितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोद्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्ग्रोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यत्फलं सोमयागेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । सुनो—॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथकी रानी कौसल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पौर्ण ग्रह ऊने स्थानमें बैठे थे, तब मध्याह्नके समय अवधेश दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतीतलमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवृष्टि की । राजा के महलोंमें अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेश्यायें नाचने और गाने लगीं । उस समय पृष्ठीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस बच्चेको देखनेके लिए आये और उसे देख-देखकर बड़े प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर इन्द्रआदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपलक्ष्यमें विविध उत्सव किये । इस तरह उत्सवके समय आकाशमें विद्यमान देवता रामको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा—॥ ७-११ ॥ हे देव ! आज हम लोग वन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अप भी इस बातको अच्छीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर चढ़ बहुत प्रसन्न हुए और कहा—हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी बात कही है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ—॥ १४-१६ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल अश्वमेधसे होता है, जो फल गोमेघसे होता है

तच्छ्रेयः स्यान्मधौ स्नानादयोद्यायां सुरोत्तमाः । अत्र वै सरयूतीरे रावणं लोकरावणम् ॥२१॥
इत्वा तत्पापशांत्यर्थं करिष्यामि क्रतुं शुभम् । यत्र यागसमाप्तिर्हि भविष्यति सुरोत्तमाः ॥२२॥
तत्तीर्थं मम नाम्ना हि ख्यातिं श्रेष्ठां गमिष्यति । अयोध्यायां रामतीर्थं सरयूजलप्रद्यगे ॥२३॥
चैत्रस्नानं प्रकुर्वाणास्ते नरा मोक्षभागिनः । यथा मावः प्रयासे हि स्नानत्वयः सुखमिच्छताः ॥२४॥
कार्तिंकोऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माघवप्रियः ॥२५॥
अयोध्यायां रामतीर्थं तथा चैत्रो भविष्यति । सर्वेषामेव मासानामादौ श्रेष्ठो भविष्यति ॥२६॥
चैत्रमासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः । चहिर्जले समाश्रित्य तिष्ठुध्वं हि ममाजया ॥२७॥
एवं हरिस्तान् भघवादिकान् सुरानुक्त्वा सुरस्तैर्थं नमस्कृतो वभौ ।

बृषेद्रमारुद्ध शिवो निजं स्थलं यर्या सुरास्तेऽपि यथुनिजं स्थलम् ॥२८॥
तस्मात्सर्वेषु मासेषु मुख्यचैत्रः प्रकार्त्यते । मासादौ प्रथमः सर्वः प्रोच्यते हि वराद्वरेः ॥२९॥
एवं शिष्य यथा पृष्ठं तथा ते विनिवेदितम् । कारणं चैत्रमासस्य रामचन्द्रवरादिकम् ॥३०॥

विष्णुदास उवाच

स्नामिन् गुरो त्वया चैत्रस्नानं पुण्यतमं स्मृतम् । तत्केनाचरितं पूर्वं का सिद्धिस्तत्प्रभावतः ॥३१॥
तत्सर्वं विस्तरेणीव ममाग्रं त्वं निवेदय ।

श्रारामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं स्वस्थमनाः शृणु त्वं यन्मयोच्यते ॥३२॥

मम तातो नृसिंहार्घ्यः पुराङ्गासीद् द्विजोत्तमः । तस्येका नियमश्रीसीन्प्रस्त्वहं भूमुरोत्तमम् ॥३३॥
एकमब्जक्षेत्रस्थं द्विजमन्नार्थिनं त्वपि । स्तुपास्त्रीपुत्रतनयदासीदासादिमिर्युतम् ॥३४॥

ओर सोमयागसे जिस फलकी प्राप्ति होता है, उस फलकी प्राप्ति इस चैत्रमासके स्नानमासमें हो जाया करेगी। कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय स्नान दानस जो थेय प्राप्त होता है ॥ १९-२० ॥ वह थेय चैत्रमासमें अयोध्याजामें स्नान करनेसे प्राप्त होगा। इस सरयू नदीके तटपर लागाको श्लानबालं रावणवा मारकर जहाहृत्याके पाप-की शान्तिके लिए मैं शुभ यज्ञ करूँगा। हे देवताओं! जिस स्वानपर वह यज्ञ समाप्त होगा, वह स्थान मेरे नामसे विख्यात होगा। जो लोग अयोध्या, रामतीर्थं तथा सरयूजाके जलमें चैत्रस्नान करेंगे, वे अवश्य मोक्षभागी होंगे। जिस तरह सुखकी इच्छा रखनबालोंका माघम प्रयागस्नान करना आवश्यक होता है ॥ २१-२४ ॥ जिस तरह कातिकम काशाकों पञ्चगमाके जलमें स्नान करनका विधान है ओर जिस तरह वैशाखमें द्वारकास्नान कल्पाणकारों माना जाया है, उसी तरहका माहात्म्य चैत्रमासमें अयोध्याके रामतीर्थका होगा। यह मास सब मासोंके आदिमें और सबस श्रेष्ठ माना जायगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ चैत्रमासक आनंदपर इन्द्रसमेत समस्त देवता यहाँ आकर निवास करें। यह मेरी आज्ञा है ॥ २७ ॥ विष्णुभगवान्ते इन्द्र आदि देवताओंसे ऐसा कहा ओर देवताओंने उनको प्रणाम किया। जिससे भगवान्को एक असाधारण कान्ति चमक उठा। तदनन्तर शिवजी नन्दीपर सवार होकर अपने स्थानको छले गये। अन्य देवता भा अपने-अपने स्थानको चल पड़े ॥ २८ ॥ इसी कारण चैत्रमास सब मासोंमें श्रेष्ठ माना जाता है और भगवान्के वरदानसे सब मासोंके आदिमें गिना जाता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार हे शिष्य! जैसा तुमने पूछा, वह रामचन्द्रजाके वरदान आदिका वृत्तान्त मैंने कह सुनाया ॥ ३० ॥ विष्णुदाससं कहा-हे स्नामिन्! हे गुरा! आपने पवित्र चैत्रस्नानका विद्यान बतलाया। अब यह वताइए कि इस व्रतका किसने किया था और इससे उसे कौन-सी सिद्धि प्राप्त हुई थी ॥ ३१ ॥ यह सब विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइए। श्रारामदासने कहा-तुमने वहूत अच्छा प्रश्न किया है। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ३२ ॥ मेरे पिता नृसिंहका एक नियम था। वे कमलपुरुषनिवासी एक ब्राह्मणको पुत्र-कुलत्र एवं दास-दासी समेत बुलाकर सारे कुदम्बको भोजन कराते और अच्छो तरह आदर-सत्कार करते थे।

कुदुम्यमोजं दस्मै संज्ञाक्षैरिद्वयताम् । लक्ष्मीनाम्नी तु मन्माता तावुभौ रामतत्परौ ॥३५॥
 पुत्रात्पर्त्तिमद्वा तौ वृद्धौ पुत्राथमुद्यतौ । स्वदोषपरिहारार्थमुपायं कर्तुमुद्यतौ ॥३६॥
 निवासाख्ये पुर गत्वा दंपती माहनीं शुभाम् । स्त्रीयेष्टदेवतामम्बां प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥
 दृष्टि देव्याश्च तौ सेवां नित्यं तत्र प्रचक्तुः । गते बहुतिथे काले वरदा या महालया ॥३८॥
 प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा प्राह तदोपशांतये । हे नृसिंह महावुद्धं गच्छायोध्यापुरीं प्रति ॥३९॥
 तत्र वै सरयूतोये रामतीर्थे महत्तमे । चैत्र मासि वसंततौं यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४०॥
 चैत्रस्नानं मासमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पातकं सकलं त्यक्त्वा पुत्रं प्राप्यस्यस्यनुत्तमम् ॥४१॥
 इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजश्चित्परस्तदा । ययौ मार्गे हृदिध्यायन्नयोध्याख्यां पुरीं शुभाम् ॥४२॥
 चितया परया व्याप्तः कथं गंतुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरी दूरमितः कष्टं च जीवितम् ॥४३॥
 इति चितायुतो मार्गे कचित्तिष्ठन्कवचित्सखलन् । भार्यायाश्च करे धूत्वा वृद्धश्चैव ययौ द्विजः ॥४४॥
 एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नात्वा द्विजोत्तमः । राममूर्ति पुरः स्थाप्य पूजयामास भज्जितः ॥४५॥
 तावत्तस्मै प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं प्राह रघुश्रेष्ठो भो नृसिंह द्विजोत्तम ॥४६॥
 माऽयोध्यां त्वमितो गच्छ पृणु मे वचनं शुभम् । इतः पूर्वे खदूर हि योजनद्वयसमितम् ॥४७॥
 प्रतिष्ठानाभिधं क्षेत्रं गोदाया उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामतीर्थं हि मन्मान्मा च मया कृतम् ॥४८॥
 तत्र त्वं गच्छ विप्रेन्द्र स्नात्वा शीघ्रं हि भार्यया । चैत्रमासे वसंततौं यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४९॥
 तदा कुरु विशेषेण पूजयित्वा च मां शुभम् । पापक्षयः पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥
 इत्युक्त्वा रघुवीरस्तु तत्रैवांतरधीयत । यत्र गंगाहृदे रामः प्रसन्नोऽभूद् द्विजाय हि ॥५१॥
 तस्मात्स वै रामद्वयो नाम्ना सर्वत्र कीर्त्यते । तद्रामवचनाद्विप्रः प्रतिष्ठानपुरं ययौ ॥५२॥
 मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चकार ह । सूर्योदये समुत्थाय कृतश्चौचादिसत्क्रियः ॥५३॥

लक्ष्मीनाम्नी मेरी माता और पिता ये दोनों असाधारण रामभक्त थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु वृद्धावस्था पर्यन्त पुनर्का अभाव दखकर उन्होंने अपना दोष शान्त करने के लिए उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसके लिए वे प्रवराके तीरपर रहनेवाली अपनी इष्टदेवी अम्बा मोहनीके पास गये ॥ ३६ ॥ उनका दर्शन करके उन्होंने बहुत दिनों तक देवीकी आराधना की । कुछ दिनों बाद देवी प्रसन्न होकर कहने लगीं—हे महावुद्धिमान् नृसिंह ! तुम यहाँसे अयोध्यापुरा जाओ । वहाँक महातीर्थं सरयू नदीक जलम जब वसन्त ऋतुके समय सूर्यं मानराशिपर जाये, तब एक महीने चैत्रस्नान करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी ॥ ३७-४१ ॥ देवोंकी यह बात सुनकर वे अयोध्यापुरीका ध्यान करते हुए चले । उन्हें यह बड़ा चिता था कि अयोध्यापुरा तो यहाँसे बहुत दूर है और मुझे अपना जावन भी भारी हा रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ऐसा सोचते हुए वे कभी बैठ जाते, कभी गिर पड़ते और कभी अपनी स्त्रीका हाथ पकड़कर वे मेरे वृद्ध पिता चलते थे ॥ ४४ ॥ इस तरह किसी प्रकार वे गोदावरीके तटतक पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने रामको मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लगे ॥ ४५ ॥ तबतक देवोंके आशीर्वादसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर सामने आये और कहने लगे—हे द्विजोत्तम नृसिंह ! अब तुम अयोध्या मत जाओ । यहाँसे केवल तीन योजन दूर गोदावरीक उत्तर तटपर प्रातष्टान नामक क्षेत्र है । वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है । मैंने ही उसको स्थापना की है ॥ ४६-४८ ॥ तुम वहाँ जाओ । और चैत्रमासमे जब सूर्यं मीन राशिपर जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी । इसमे काइ सशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी वहाँ हा अन्तर्बान हा गये । जिस गङ्गानामक सरावरके तटपर राम प्रसन्न हुए थे, वह स्यान रामहृदके बाससे विस्पात हुआ । रामके कथनानुसार ज्ञात्युणदेवता अपनी भार्याके साथ उस प्रतिष्ठानतीर्थको गये

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयूमंगसमन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरौ पूजयामास भक्तिः ॥५४॥
 प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेशकार नवं प्रत्यहम् । नवपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥
 चैत्रशुक्लरुतीयाया यावद्वैशाखसंस्नान । द्रुतीया शीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥
 एवं मासं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानमः । अव्यजकं प्रति मार्गेण ययौ लक्ष्म्या समन्वितः ॥५७॥
 यावन्मार्गे द्विजोऽगच्छत्तावद्वृष्टिभिर्नैः । पिशाचैः ज्ञुत्प्रकारात्स्वानुद्वार्य सभार्यया ॥५८॥
 ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानाभिविगजितम् । चैत्रस्नानप्रभावेण जातस्तस्मात्सुतस्त्वहम् ॥५९॥
 तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं मध्ये ते सरयूजले वै ।
 साकेतपुर्या नररामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुक्तम् च ॥६०।

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्यास्ते मुक्ता विप्रेण वै त्रयः । कस्मात्पापाच्च ते सर्वे पैशाचीं योनिमात्रिताः ॥६१॥
 तत्सर्वे विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि रमभानाम्नी वराऽप्सराः ॥६२॥

चैत्रे स्नात्वा वरायोध्यासरयूनिर्मले जले । आद्रेवस्त्रयुता चारुहास्यालंकारमण्डता ॥६३॥
 गृहीत्वा सरयूतोयं रत्नकांचननिमिते । पात्रे रामेश्वरं सेतौ द्रशुं मौनेन सा जवात् ॥६४॥
 ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते त्रयः । तदाद्रेवस्त्रचांचल्याद्विद्विभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥
 क्रस्वभावमुत्सृज्य चाश्रयं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभृत्येषां तदा नृप ॥६६॥
 विस्मयाविश्वचित्तास्ते तां दृष्टाऽप्सरसं दिवि । वहुधा प्रार्थयामासुस्तान्सा पप्रच्छ संक्षया ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक मास पर्यन्त चैत्रस्नान किया । उनका यह नियम था कि प्रतिदिन सूर्योदयमें पहले सोकर उठ जाते और नित्यकृत्यसे निवटकर सरयूमङ्गमपर विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजीकी पूजा किया करते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरिकी नौ परिक्रमा करते और नौ पुष्पों और विविध प्रकारके नैवेद्योंसे रामका पूजन करते थे । वह व्रत उनका तबतक चलता रहा, जबतक वैशाखके शुक्लपक्षकी द्रुतीया नहीं आयी । द्रुतीयाके आनेपर उन्होंने शीतलागौरी नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक मास तक व्रत करके प्रसन्न चित्तसे वे ब्राह्मणदेवता अपनी पत्नीके साथ कमलपुरको चले ॥ ५७ ॥ जाते-जाते रास्तेमें उनको तीन पिशाच मिले । वे तीनों बड़े भूखे थे । मेरे पिता-माताने उनका उद्धार किया और अपने नगरको गये । उसी चैत्रस्नानके प्रभावसे मैं उनका पुत्र होकर जन्मा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैंने चैत्रमासमें अयोध्याके पवित्रतोर्थमें भुक्ति-मुक्तिप्रद सरयूजलमें स्नानका विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासने कहा-वे तीनों पिशाच किस तरह उस पिशाचयोनिसे छूटे और किस पापसे वे पिशाचयोनिमें पड़े थे । यह वृत्तान्त भी विस्तारपूर्वक मैं आपके मुख्यसे सुनना चाहता हूँ । श्रीरामदास कहने लगे-हे शिष्य ! सुनो, यह कथानक भी मैं कहता हूँ । रमभानामकी एक सुन्दरी अप्सरा थी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयूजलमें स्नान किया । उसके कपड़े भींग नये थे, मन्द मुस्कान उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी असाधारण शोभा दिखा रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अनन्तर उसने रत्न और कंचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके लिये सरयूजल भरा और मौन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी । जाते-जाते वह उस स्थानपर पहुँची, जहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे । रमभाने भींगे वस्त्रसे पानीकी कई दूरें गिरकर इन पिशाचोंपर पड़ीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयीं ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे प्रार्थना करने लगे । रमभाने संकेतमें उनसे पूछा—॥ ६७ ॥

कस्माद्युयं पिशाचा हि जातस्तत्कथ्यतां मम । इति तत्करकृत्संजाप्रेरितास्ते त्रयस्तदा ॥६८॥
 तेषु द्वी वर्तमानी हि कथयामासतुथ ताम् । शृणु भामिनि चावां हि पूर्वजन्मनि भूसुरात् ॥६९॥
 विरजायां समुपच्छ्रो श्रोत्रियाद्वरशर्मणः । उभावध्ययनं कर्तुं कंचिन्नारायणाह्यम् ॥७०॥
 शुश्रूषया तोषयित्वा गुरुं तत्रैव तस्थतुः । नारायणसुतां चारुहासां चन्द्रनिभाननाम् ॥७१॥
 हृष्टा परस्परं मैत्र्यं वहुधा प्रार्थ्य तां ख्यिम् । आवाभ्यां च द्वि सा भृक्ता तज्जातं गुरुणा चिरात् ॥७२॥
 आवाभ्यां च ददौ शापं तस्यै चाप्यशपत्कुथा । युवां चापि कुमारीयं पिशाचत्वं गमिष्यथ ॥७३॥
 ततोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु गुनिं नत्वा पुनःपुनः । शापस्यांतस्तो लब्धस्तच्छृणुष्व मनोरमे ॥७४॥
 चैत्रमासे नृसिंहारुयः कथिद्विप्रश्च कानने । ददाति स्नानं पुण्यं तदोदारो भविष्यति ॥७५॥
 एवं जाता पिशाचा हि वयं त्वद्वस्त्रिद्विभिः । प्रोक्षिताः स्मोऽयं तैर्जाता पूर्वजन्मस्मृतिः शुभा ७६॥
 तत्तेषां वचनं अत्या ज्ञात्वा शापस्य मोक्षणम् । सांख्ययित्वा करेणैव शीघ्रं स नृहरिः ख्यिया ॥७७॥
 आगमिष्यति मा चिंतां कुरुतेति वरांगना । ययौ रामेश्वरं शीघ्रं पूजयित्वा गता दिवम् ॥७८॥
 चैत्रमासे श्वतिक्रांते मार्गं स नृहरिद्विजः । भार्यया सहितो दृष्टः पिशाचैस्तैः पिता मम ॥७९॥
 स्थित्वा दूरं च ते सर्वे तम्भुर्नृहरिं द्विजम् । नैं वृत्तं समस्तं हि शापस्यापि विमोक्षणम् ॥८०॥
 तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रोवाच भृदान्वितः । मा भेतव्यं पिशाचत्वाद्यथा शंभुद्विजेन सः ॥८१॥
 राक्षसो भोचितः पूर्वं मोचयिष्याम्यहं तथा ।

पिशाच उवाच

कः शंभुश्च कदा मुक्तो राक्षसः कः सविस्तरम् ॥८२॥

तुमलोग इस पिशाचयोनिको क्यों प्राप्त हुए हो, सो कहो । इस प्रकार रम्भाके हाथोंका संकेत पाकर उन तीनोंमेंसे दो बोले-हे भामिनी । | सुनो, पूर्वजन्ममें हम दोनों विरजा नामी स्त्रीहारा हर शर्मा नामक ज्ञाहृणसे उत्पन्न हुए थे । अवस्थानुसार हम दोनों विद्या पढ़नेके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये । वहाँ उनको सेवा करते हुए रहने लगे । गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी । उसकी मनोहारिणी मुस्कान थी और चन्द्रमा-के समान मुख था ॥ ६८-७१ ॥ उसे देखकर हम दोनोंने उससे मित्रता कर ली और समय पाकर बहुत अनुनय-विनय करके हम दोनोंने उसके साथ भोग किया । बहुत दिनों बाद यह बात गुरुजीको जात हो गयी ॥ ७२ ॥ उन्होंने कृपित होकर हमें तथा उस कन्याको शाप देते हुए कहा कि इस कुमारीके साथ तुम दोनों पिशाच हो जाओ ॥ ७३ ॥ इसके बाद हम तीनोंने उन मुनीश्वरको वार-बार प्रणाम करके किसी तरह शापके अन्तका वचन पाया । सो भी सुन लो ॥ ७४ ॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नृसिंह नामका ज्ञाहृण इस वनमें आयेगा और वह अपने चैत्रस्नानका पुण्य तुम्हें प्रदान करेगा, तब तुम्हारा उद्धार होगा ॥ ७५ ॥ इस तरह हमलोगोंको यह पिशाचयोनि मिलो । आज हम आपके वस्त्रबिन्दुसे प्रोक्षित हो गये । इस कारण हमें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयी हैं ॥ ७६ ॥ इस प्रकार उनकी बात सुनकर रम्भाने संकेतमें ही कहा कि तुम लोग धैर्यं रखो । अब शोध ही नृसिंह ज्ञाहृण अपनी स्त्रीके साथ इस वनमें आनेवाले हैं ॥ ७७ ॥ तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । इतना कहकर रम्भा रामेश्वर चली गयी । वहाँ उसने शिवजीका पूजन किया और आकाशमार्गसे ही लौटकर स्वर्गको चली गयी ॥ ७८ ॥ चैत्रमास बोतनेपर नृसिंह अपनी भायकि साथ उस वनमें पहुंचे और उन पिशाचोंको देखा ॥ ७९ ॥ वे तीनों पिशाच नृसिंहके पास न आकर थोड़ी दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत एवं शापसे मुक्ति पानेका उपाय कह सुनाया ॥ ८० ॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा-तुम लोग घबड़ाओ नहीं । जिस प्रकार शम्भुनामक ज्ञाहृणने उस राक्षसको पिशाचयोनि-से मुक्त किया था, उसो तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योनिसे मुक्त कर दूँगा । उनकी बात काटकर पिशाचों-मेंसे एकते कहा कि शम्भु विप्र कौन थे और वह राक्षस कौन था ? यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक आप हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कृपा कृत्वा तु कौतुकात् ।

नृसिंह उवाच

शृणुध्वं कथयिष्यामि यद्दृव्वत्तं च पुरातनम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कथिद्विप्रः शुचिव्रतः । शंभुनामा चिरं कालं तस्यौ स च स्वभार्यया ॥८४॥
स कस्मिन्श्विद्वने विप्रश्वैकांवरशिवांतिके । पौराणिकमुख्याचैत्रमासमाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥
कथां श्रोतुं समायातस्तत्र श्रुत्वा मदत्कलम् । अयोध्यायां हि चैत्रस्य स्नानात्कैवल्यदायकम् ॥८६॥
ततो बहुगते काले सस्मरन् तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा समागतं चैत्रं स्वगृहान्विगतस्तदा ॥८७॥
भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै ययौ । तीत्वा तां जाह्वां रम्यां यावदग्रे स गच्छति ॥८८॥
तावदृदृष्टो हि भिल्लेन कर्कशाख्येन कानने । गृहीत्वा सशरं चापं धर्षयित्वा च भूसुरम् ॥८९॥
लुलुठ कर्कशः क्रूरो वस्त्रेणैकेन तं द्विजम् । मुमोच तस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥
द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहणं त्वं भक्ष्यपिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥
तत्त्वस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा तद्वस्त्रवधनम् । सर्वं ददर्श पाथेयं नानाविधमनुच्चमम् ॥९२॥
तस्मिन्ददर्शं स व्याधो दश रंभाफलानि वै । अपकान्यतिशुष्काणि तत्त्रित्तेऽविचारयत् ॥९३॥
एतैः फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । तर्हि दास्याम्यहं दीनं त्रुधाक्रांतं च सख्तिकम् ॥९४॥
इति निश्चित्य स व्याधो ददौ तानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽभक्ष्यद्विप्रः प्रारम्भे भार्यया मधौ ॥९५॥
तद्रंभाफलदानेन कर्कशस्य तदा शुभा । जाता बुद्धिः क्षणादेव सात्त्विकी क्रूरता गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलास्ततः परं भिन्नाय तस्मै तु शुभा मतिर्द्वयभूत् ।

समागतं चात्र कुतः स पृष्ठवान् विप्रं स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

शम्भुरवाच

कांचोपुर्याः समायातो गम्यतेऽयोध्यकां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयूनिर्मले जले ॥९८॥

बतलाइए । हे द्विजश्रेष्ठ ! हमपर इतनी कृपा करिए । नृसिंह कहने लगे—अच्छा सुनो । मैं एक पुरातन कथा तुम लोगोंको सुनाऊंगा ॥ ८१-८३ ॥ शिवकांचीपुरीमें पवित्रव्रतधारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम शम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगरीमें रहा ॥ ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण किसी बनमें एकांवर नामक शिवके समीप पौराणिकके मुखसे चैत्रमास-माहात्म्यकी कथा सुनने गया । वहाँ पहुंचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका बड़ा फल सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनेके पहले ही अयोध्या जानेके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीको भी ले लिया था । वह धीरे-धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गंगाजी पड़ी तो उन्हें पार किया । वहाँ सीधोड़ी दूर आगे गदा ही था कि बनमें कर्कश नामका एक भील घनुष-बाण लिये हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताका घमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छोड़ दिया । यहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६-८० ॥ तब ब्राह्मणने उससे प्रार्थना की कि मेरे कपड़े-लत्ते सब कुछ ले लो । लेकिन रास्तेमें खानेकी वस्तुओंवाली वह पोटली वापस दे दो ॥ ८१ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने वह पोटली खोली और देखा कि उसमें बहुत-सी खाने-पीनेकी चीजें बैंधी हैं ॥ ८२ ॥ उस व्याधेने उसमें इस केलेके फल भी देखे । वे फल कच्चे और सूखे हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई अवाश्यकता है नहीं, फिर इसे क्यों न दे दूँ ॥ ८३ ॥ ९४ ॥ ऐसा निश्चय करके उसने केले वापस दे दिये और उस सप्ततीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्रारम्भमें वे केलेके फल खाये ॥ ८५ ॥ उस रम्भाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिका प्रादुर्भाव हो गया । जिससे उसकी कूरता नष्ट हो गयी और सात्त्विकता आ गयी ॥ ८६ ॥ हे पिशाचो ! जब उस भीलकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लम्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥११॥
 पुनः प्राह स विप्रेण्डः कर्कशं भक्तिः फलम् । स्नानेन मधुमासे हि रघुनाथः प्रसीदति ॥१००॥
 प्रसादात्सकलान्मोगान् लभते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि भो भिल्लु लम्यते नात्र संशयः ॥१०१॥
 इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा मप्रोपरि ॥१०२॥
 तत्त्वस्य वचनं श्रुत्वा पत्नीं प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य वरारोहे कौतुकं महद्वृतम् ॥१०३॥
 यद्रंभाफलदानेन चैत्रे मासि वरानने । अयं क भिल्लुजातीयः क प्रशनश्चेष्टशः शुभः ॥१०४॥
 मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्मादानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां प्रियां विप्रः कर्कशं प्राह सादरम् ॥१०५॥
 साधु साधु महाव्याधि सम्यकप्रश्नः कृतस्त्वया । इदानीं प्रोच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥१०६॥
 स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥१०७॥

तस्य प्राप्तिर्था स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।

शृणु कर्कशं तत्प्राप्तिर्था स्यात्तद्वामि ते ॥१०८॥

दारपुत्रगृहादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् । दिवरात्रं चित्यित्वा सर्वदेहस्य चालकम् ॥१०९॥
 आत्मानं वहुपुण्यौर्ध्वनिर्मलीकृत्य मानसम् । तत्स्वरूपे यदा तिष्ठेत्स मुक्तो नेतरो जनः ॥११०॥
 एवं वदति विप्रेण्डे व्याधो मुक्त्वा शरं धनुः । शंभुपादौ जवान्नत्वा त्राहि त्राहोति वै वदन् ॥१११॥
 प्रोवाच द्विजवर्यं स व्याधो मामुद्वरेति च । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राक्षसो धोरदर्शनः ॥११२॥
 दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रासंस्ते त्रयो वने । आयांतं राक्षसं दृष्ट्वा चक्रस्ते तु पलायनम् ॥११३॥
 तावज्जवेन तान् धर्तु निकटं राक्षसो ययौ । तं दृष्ट्वा निकटं शंभुस्तुविकां सजलां निजाम् ॥११४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि आप किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ १७ ॥ शम्भुने उत्तर दिया कि मैं कांची-पुरीसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ । वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ १८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैतस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ १९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा । उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ १०० ॥ संसारके प्राणी उन्हींकी कृपासे सब प्रकारके सुखोंको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १०१ ॥ इस तरह विप्रकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाइए ॥ १०२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्रयकी बात है । चैत्रमासमें केलेके फलोंके दानसे यह भील कैसेन्कर्से प्रश्न कर रहा है । इतनी बात अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ १०३-१०५ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रश्न बहुत ठोक है । अब मैं तुमको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ । तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १०६ ॥ मोक्ष उसे कहते हैं, जिसे पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े । इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी प्राप्ति मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाए । शम्भु ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है । वह उपाय मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, गृह आदिकी प्रीतिका परित्याग करके रात-दिन सब प्राणियोंके संचालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतेरे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हींके स्वरूपमें लौ लगाये रहता है, वही प्राणी मुक्त होता है और काई नहीं ॥ १०९ ॥ ११० ॥ ऐसा कहने-पर कर्कशने अपना धनुष-वाण फेंक दिया और बेगके साथ शम्भुके पंरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी रक्षा करो । उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ ये तीनों वैठे वातालाप कर रहे थे । राक्षसको आते देखकर वे तीनों भागे । राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कृत्वोच्चां प्राक्षिपत्तस्मिन् रामचन्द्रं स्फरन् शुखे । भवितं रामनाम्ना च यत्तोयं मधुमासि वै ॥११५॥
 तत्सेकाद्राक्षसस्यापि जाता पूर्वभवस्मृतिः । ततः स राक्षसो दूरं स्थित्वा शंखुं व्यजिज्ञपत् ॥११६॥
 मासुद्वरं सुनिश्चेष्ट घोराद्राक्षसदेहतः । शरणं ते गतोऽस्मयश्च जाता पूर्वस्मृतिर्मम ॥११७॥
 इति तत्कौतुक दृष्ट्वा राक्षसं प्राह स द्विजः । कस्मात्ते राक्षसत्वं हि जातं तत्त्वं वदाऽधुना ॥११८॥
 राक्षसः प्राह वेगेन शंखुं वृत्तं निजं तदा । जनस्थाने पुरा चाहं विप्रः कर्मपशाङ्गुखः ॥११९॥
 प्रतिग्रहपरः पापी दुर्मार्गव्यवसनी सदा । एतस्मिन्नंतरे चैत्रे मम भावां सती शुभा ॥१२०॥
 स्नानार्थं रामतीर्थं सा मामपृष्ठा गृहाद्यवौ । सा मार्गे च मया दृष्टा दृत्वा मार्गे च तां शुभाम् ॥१२१॥
 प्रोक्ता क्रोधान्मया रङ्गे मामपृष्ठा क यास्यसि । सा प्राह भयभीता तु रामतीर्थं प्रगम्यते ॥१२२॥
 मधुमासेऽत्रगाहार्थं न मया दुष्कृतं कृतम् । एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं ताडिता सा मया वलात् ॥१२३॥
 प्रेषिता स्वगृहं मार्गात्तरः कालांतरे गते । मृतोऽहं च तदा नीतो यमलोकं यमानुगैः ॥१२४॥
 चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां धिक्कृत्वापि पुनः पुनः । यमराजं स वै प्राह धर्षयन्मां स्वगजितैः ॥१२५॥
 भो धर्मराज पापोऽयं चैत्रस्नाननिवारकः । शुक्ल्यादौ राक्षसीं योनिं निरयान् भोक्तुमर्हति ॥१२६॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्राहानुगांस्तदा । भो भटा राक्षसीं योनिर्दीयतां निर्जने वने ॥१२७॥
 पापिनेऽस्मै च मद्वाक्यात्तस्तैश्च यमानुगैः । दत्त्वा मे राक्षसीं योनिं त्यक्त्वा चात्र गता यमम् ॥१२८॥
 तदारभ्य वने चाहं जुत्तृपापरिपीडितः । पञ्चर्तिंशत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितश्चिरम् ॥१२९॥
 किं मया सुकृतं पूर्वं कृतं यस्पाद्वने तत्र । संगतिश्चाद्य वै जाता साधुसंगो गतिप्रदः ॥१३०॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा शंखुधर्यात्वा ध्यणं हृदि । ज्ञात्वा तत्सुकृतं पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयत् ॥१३१॥
 शृणु राक्षस यत्पूर्वं कृतं वै सुकृतं त्वया । तस्माजाता संगतिर्में वने निर्मानुषे शुभा ॥१३२॥

बिल्कुल समीप पहुंच गया । उसे निकट देखकर शम्भुने रामचन्द्रजीका स्मरण करके अपनी तुष्टीका जल उस राक्षसके गुखमें फेंक दिया । रामनामसं अभिमन्त्रित जलके पड़तेसे उस राक्षसको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । इसलिए वह दूर ही खड़ा होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—हे मुनिराज ! इस घोर राक्षसदेह-से आप मेरी रक्षा करिए । मैं आपकी शरण हूँ । आपके जलाभियेकसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया है ॥१११-११७॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर ब्राह्मणने उस राक्षससे कहा—पहले तुम हमें यह बतलाओ कि इस राक्षसदेहको विस तरह प्राप्त हुए ॥११८॥ राक्षसने अपने पूर्वजन्मका हाल बताना प्रारंभ किया । उसने कहा—इसके पहले मैं आपने कभीसे पराङ्गुख एक ब्राह्मण था ॥११९॥ उस समय मैं जैसे-तैसे दान लेता हुआ दुराचार और व्यवहारोंमें अपना जीवन विता रहा था । उसी समय मेरी स्त्री विना मुझसे पूछे ही चैत्रस्नान करनेके लिए रामतीर्थको चल पड़ी । मैंने उसे रास्तेमें देखा तो पकड़ लिया और उससे कहा—अरी राड़ ! विना हमसे पूछे तू कहाँ जा रही है ? भयभीत होकर उसने उत्तर दिया कि मैं चैत्रस्नान करनेके लिए रामतीर्थं (अयोध्या) जा रही हूँ ॥१२०-१२२॥ ऐसा करनेमें मैंने कोई पाप नहीं समझा, इसीलिए चल पड़ी । ऐसी निष्कपट बात सुनकर भी मैंने उसे बहुत मारा और घर लौटा दिया । कुल दिन बाद मेरी मृत्यु हुई और यमके दूत पकड़कर मुझे यमलोक ले गये ॥१२३॥ १२४॥ चित्रगुप्तने मुझे देखा तो बहुत विकारा और धमकाकर यमराजसे कहा—हे धर्मराज ! इस पापीने अपनी स्त्रीको चैत्रस्नानसे रोका था । अतएव यह पहले राक्षसी योनिको भोगकर नरक भोगनेका अधिकारी है ॥१२५॥ १२६॥ इस प्रकार चित्रगुप्तकी बात सुनकर धर्मराजने अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि इसे किसी निर्जन वनमें राक्षसी योनि दे दो । उनके आज्ञानुसार यमदूत मुझे इस वनमें छोड़कर लौट गये । तभीसे भूखेन्प्यासे रहकर मैंने पैतीस हजार वर्ष विताये हैं ॥१२७-१२९॥ मुझे नहीं मालूम कि मैंने कौन-सा पुण्य किया था, जिसके प्रभावसे इन निर्जन वनमें आप जैसे सज्जनके सद्गतिप्रद दर्शन प्राप्त हुए ॥१३०॥ उसकी बात सुनकर शम्भुने क्षणभर अपने हृश्यमें उसके पूर्व सुकृतका ध्यान किया और कहने लगा—॥१३१॥ हे राक्षस ! तुमने पूर्वजन्ममें लो सुकृत किया था, वह

एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्वान्यश्राद्भोजनम् । तांबूलो दक्षिणायुक्तः कटचां वस्त्रे त्वया घृतः ॥१३३॥
द्वादश्यां प्रातरुत्थाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पतितः स हि तांबूलो विस्मृत्या गौतमीतटे ॥१३४॥
दक्षिणासहितो दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा स हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया पुनः १३५॥
तांबूलदानाद्वरचैत्रमासे जाता वने मेऽद्य हि संगतिस्ते ।

तस्मान्मधौ राक्षस मानवैहिं तांबूलदानं करणीयमेतत् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षसं शंभुश्चैत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । उभाभ्यां आवयित्वाऽथ कर्कशं वाक्यमब्रवीद् ॥१३७॥
भो कर्कशं महाबुद्धे भृणुष्व वचनं भम । आगच्छ त्वं सहैवाद्य मयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥
सरयूस्नानमात्रेण मधौ पापाद्विभोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कशं शंभुस्ततः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥
भो राक्षस त्वमत्रैव मासमात्रं स्थिरो भव । अयोध्यायां प्रवेशश्च राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥
अतोऽहं मधुमासे हि स्नात्वाऽनेन पथा पुनः । यदागच्छामि कांचीं त्वां चोदरिष्याम्यहं तदा १४१ ।
मा सदेहोऽस्तु ते चिचे शपथेन ब्रवीम्यहम् । यत्पापं ब्रूणहत्यायास्तथा गोयतिनिंदनात् ॥१४२॥
नोदृत्य त्वां हि गच्छामि तद्विंशतिमयि तिष्ठतु । मद्यपाने च यत्पापं हेमस्तेयादिकं च यत् ॥१४३॥
नोदृत्य त्वां हि गच्छामि तद्विंशतिमयि तिष्ठतु । यत्पापं ब्रूणहत्यायास्तथा चैत्रे श्वमज्जनात् ॥१४४॥
नोदृत्य त्वां हि गच्छामि तद्विंशतिमयि तिष्ठतु । इत्यादि शपथैस्तद्विंशतिं राक्षसं हृष्यन् द्विजः ॥१४५॥
यावत्पञ्चतां तावज्जातं हि कौतुकम् । व्याधाय चैत्रमासस्य माहात्म्यस्योपदेशतः ॥१४६॥
तरवः फलिनो जाता परितो दशयोजनम् । पत्रैः पुष्पैर्विनम्ब्राश्च सौगंधः पवनो ववौ ॥१४७॥
नद्यस्तोयं वहंत्यश्च ननृतुर्वर्हिणो वने । तदूदृष्टा कर्कशश्चापि चैत्रमाहात्म्यकीर्तनात् ॥१४८॥
दुर्वनं सुवनं जातं चैत्रश्रैष्टुथममन्यत । ततस्ते हि त्रयस्तस्माद्वनान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

मैं बतला रहा हूँ । उसोंके प्रभावसे हमारा-तुम्हारा साक्षात्कार हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादशीको किसीके यहां भोजन किया, तांबूल दक्षिणा ली और एक वस्त्रमें रखकर उसे तुमने अपनी कमरमें लपेट लिया ॥१३२॥ द्वादशीको तुम सबेरे उठे और गङ्गास्नान करने चले गये । वह कमरमें लिपटी हुई दक्षिणा और तांबूल भूलसे गौतमी नदीके तटपर गिर गया । उसे किसी ब्राह्मणने उठा लिया, किन्तु उसके विषयमें तुम्हें कुछ स्पाल नहीं था ॥१३३-१३५॥ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तांबूलके दानसे ही आज इस निर्जन वनमें हमसे साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमें तांबूलके दानका कितना बड़ा माहात्म्य है । अतएव इस मासमें तांबूल-दान अवश्य करना चाहिए ॥१३६॥ इस तरह उस राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शंभुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान् कर्कश ! मेरी बात मानो और आज ही मेरे साथ अयोध्यापुरीको चल दो ॥१३७॥ १३८॥ चैत्रमासमें सरयूस्नानमात्रसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे । ऐसा कर्कशसे कहकर शंभुने उस राक्षससे कहा कि तुम महीने भर इसी स्थानपर रहो । वयोंकि अयोध्यानगरीमें राक्षसलोग नहीं जा सकते ॥१३९॥ १४०॥ इस कारण जब मैं चैत्रस्नान करके उघरसे लौटूँगा और यहाँ आऊँगा, तब तुम्हारा उद्धार करूँगा ॥१४१॥ तुम इसमें कुछ संशय मत करो । मैं कसम खाता हूँ कि ब्राह्मणहत्या करने तथा गौ एवं मुनियोंकी निन्दा करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । मद्य पीने और सुवर्ण चुरानेसे जो पातक होता है, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो मुझे वे पातक लगें । जो पाप भ्रूणहत्या तथा चैत्रमासमें स्नान न करनेसे लगता है, वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । इस तरह विविव प्रकारकी शपथें खाकर शंभुने उस ब्रह्मराक्षसको आश्वासन दिया । इसके बाद जब व्याधने चारों ओर हृष्ट उठाकर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस योजन तक उसे सब वृक्ष फल-फूलसे लदे दिखायी दिये और सुगन्धित वायु चलने लगी ॥१४२-१४७॥ उस वनकी सब नदियोंमें धनधोर निनाद करता हुआ जल बहने लगा और मधूरमण्डली

शनैः शनैरयोध्यायाः पथ्यपश्यन्वनस्थलीम् । तावच्छब्दो महान् जातः सिंहमातंगसंभवः ॥१५०॥
 धावन्नग्रे तु मातंगः पृष्ठे धावंश्च केसरी । एवं तौ शंभुसान्निधयं प्राप्तौ कलहकारिणौ ॥१५१॥
 मार्गरोधकरौ दुष्टौ तौ दृष्टा शंभुरब्रवीत् । पश्य कर्कश विघ्नानं चैत्रस्नाने पदे पदे ॥१५२॥
 संभवंतीति वै चुदूध्वा चैत्रस्नानं न लंघयेत् । काश्यां चिवाहे गीतायां गतायां रामचिंतने ॥१५३॥
 चैत्रस्नाने महादाने विघ्नानि संभवन्ति हि । एवं वदति विप्रेन्द्रे तौ दुष्टौ करिसिंहकौ ॥१५४॥
 चैत्ररामश्रवात् पूर्वजन्मस्मृत्याऽतिविस्मितौ । भूत्वा वै त्राहि त्राहीति कृत्वा दीर्घं महारवम् ॥१५५॥
 शरणं द्विजवर्याय जग्मतुः शंभुशर्मणे । सोऽपि शंभुश्च ताभ्यां हि पृष्ठवान् तत्कृपान्वितः ॥१५६॥
 किमर्थं दुष्टजातिर्हि प्राप्ता तत्कथ्यतां मम । इति विप्रवचः श्रुत्वा केसरा वाक्यमव्रवीत् ॥१५७॥
 सेतौ रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यहं द्विजः । निंदकः सर्वधर्माणां पाखण्डाकृत्यकरत्परः ॥१५८॥
 कदाचिच्चैत्रमासे तु तत्र श्रीरामसंज्ञके । तीर्थे जनसमूहे च श्रुत्वा पौराणकीं कथाम् ॥१५९॥
 पौराणिकेन कथिता चैत्रमाहात्म्यसूचिकाम् । कृत्वान् निंदनं चाहं वारं वारं पुनः पुनः ॥१६०॥
 तन्मत्कृतं निंदनं च कथिद्विप्रस्तपःस्थितः । शुश्राव सकलं दुष्टं तेन शमोऽस्मयहं तदा ॥१६१॥
 करां जातिं त्वरं गच्छ यदा चैत्रेशकीर्तनम् । भविष्यति महारण्ये शापशांतिस्तदेति च ॥१६२॥
 एवं प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तेन शापेन जातोऽस्मि केसरा भयकारकः ॥१६३॥
 चैत्ररामश्रवाज्जाता पूर्वस्मृतिरनुन्तमा । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चतुर्तिसहदेहतः ॥

इति सिंहस्य वृत्तं तु ज्ञात्वाच गजं द्विजः ॥१६४॥

कस्माच्च मातंग गतोऽसि दुष्टजातौ वदस्वाद्य महाधसंघात् ।

स चापि मातंगवरः समस्तं वृत्तं निजं चाकथयच्च जीर्णम् ॥१६५॥

नाचने लगी । चैत्रमासिक कीर्तनके माहात्म्यसे वनका यह सुषमा देखकर कर्कशने भी चैत्रमासको सब मासोंसे श्रेष्ठ माना । तदनन्तर वे तीनों उस वनेले मार्गसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥१४८॥१४९॥ वे वनस्थलीकी शोभा देखते हुए चले जा रहे थे । तबतक उन्होंने सिंह और हाथीका महान् गर्जन सुना ॥१५०॥ आगे-आगे हाथी भागा जा रहा था और उसे पीछेसे सिंह खेदेहता जाता था । लड़ते हुए वे दोनों उसी मार्गपर आ पहुँचे, जहाँसे ये तीनों अयोध्या जा रहे थे ॥१५१॥ उन दुष्टोंको रास्ता रोकते देखकर शंभुने कर्कशसे कहा—देखा कक्ष ! चैत्रस्नान करनेवालेके पद-पदपर विघ्न आते हैं । किन्तु लोगोंको चाहिए कि विघ्न-वाघाओंसे डरकर पीछे न हट । काशी-वासमें, पुत्र-पुत्रीके विवाहमें, गीतापाठमें, रामका ध्यान करनेमें, चैत्रस्नानमें और तुला आदि महादानमें बड़े-बड़े विघ्न आया करते हैं । ब्राह्मणके उन शब्दोंको सुनकर उन दोनों दुष्टों (हाथी और सिंह) को अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । जिससे 'मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो' इस तरह कहते हुए वे चिल्लाने लगे ॥१५२-१५५॥ वे उस शम्भुनामक ब्राह्मणकी शरणमें गये । शम्भु भी उनपर दयालु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोंको यह दुष्टयोनि क्यों मिली ? यह वृत्तान्त हमें सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रश्न सुनकर सिंहने कहा— ॥१५६॥१५७॥ इसके पूर्ववाले जन्ममें मैं रामेश्वरक्षेत्रका निवासी एक ब्राह्मण था । मैं सब धर्मोंका निन्दक था और पाखण्डसे भरी वाते किया करता था ॥१५८॥ एक बार चैत्रके महोनेमें श्रीरामतीर्थमें एक ब्राह्मणके मुखसे मैंने चैत्रमासका माहात्म्य सुन लिया और उसकी भरपूर निन्दा की । मेरी उन निन्दाकी वातोंको पास ही बैठे हुए किसी तपस्वी ब्राह्मणने सुन लिया और उसने उसी समय मुझे शाप देते हुए कहा—तूने चैत्रमासकी निन्दा की है । इसलिए तू किसी क्रूरजातिमें जाकर जन्म ले । जब कि एक वनमें तू किसी ब्राह्मणके मुखसे चैत्रमासका माहात्म्य सुनेगा, उस समय तेरे शापकी शान्ति होगी ॥१५९-१६२॥ हे विप्र ! इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया । उसीके शापसे मैं महाभयदायिनी इस सिंहकी योनिमें आ पड़ा हूँ ॥१६३॥ आज आपके मुखसे चैत्रमासमें रामनाम सुननेसे मुझे मेरे पूर्वजन्मकी वाते स्मरण आ गयीं । हे विप्र ! अब मुझे इस सिंहयोनिसे बचाइए ॥१६४॥ इस प्रकार सिंहकी बात

शृणु विप्र ग्रवक्ष्यामि पूर्वदृत्तं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेर्या उत्तरे तटे ॥१६६॥
 विप्रः परमदुर्वृत्तः सर्वशास्त्रपराण्डमुखः । लक्ष्मीभरमदाक्रांतः पण्यस्त्रीभोगकारकः ॥१६७॥
 एकदा सुहृदा चाहं भोजनार्थं निमन्त्रितः । आद्वाहे मनुमासे हि शुक्ले श्रीनवमीदिने ॥१६८॥
 मया शुक्लं सुहृद्गेहे नवम्यां द्विजसत्तम । तेन शापेन जातोऽस्मि करिजातौ न संशयः ॥१६९॥
 सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विशेषतो रामनवम्यां निंदितं च तद् ॥१७०॥
 इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽत्र वै । संगतिश्च वने जाता सर्वेषां परमातिंहृत् ॥१७१॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा शंभुधर्यानेऽविचारयत् । ज्ञात्वा मातंगपुण्यं तु प्रोवाच करिणं द्विजः ॥१७२॥
 शृणु मातंग वक्ष्यामि यत्पुण्यं च त्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तत्सर्वं येन मे संगतिर्वने ॥१७३॥
 जाता त्वामुद्गरिष्यामि मा चिंतां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीतटशोभिते ॥१७४॥
 रामायणकथा चैत्रे श्रुता श्रीनवमीदिने । रामतीर्थे त्वया स्नातं दृष्टो रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥
 तेन पुण्येन ते जाता संगतिर्मम कानने । इदानीं शृणु सिंह त्वं शृणोतु च करी महान् ॥१७६॥
 साकेते मधुमासे हि स्नात्वाऽनेन पथा पुनः । यदा गच्छामि तां कांचीं युवामुद्वारयाम्यहम् ॥१७७॥
 मा संदेहोऽत्र कर्तव्यः शपथैः प्रब्रतीम्यहम् । संतोषार्थं युवाभ्यां हि प्रोच्यन्ते शपथा मया ॥१७८॥
 परस्त्रीगमनात्पापं तथा मित्रवधादिकम् । युवां नोदृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१७९॥
 जग्नास्वहरणात्पापं यत्स्मृतं मातुनिंदनात् । युवां नोदृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१८०॥
 इत्युक्त्वा द्विजवर्यः स ख्यिया भिल्लेन सयुतः । करिसिंहौ वने स्थाप्य गच्छन्मार्गं शनैः शनैः ॥१८१॥

सुनकर ब्राह्मणने हाथीसे कहा कि तुम किस पापसे इस दुष्टयोनिमें आये हो ? तब हाथीने अपने पूर्वजन्मका हाल सुनाते हुए कहा-हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ, सुनिए । उस जन्ममें मैं कावेरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमें बड़ा दुराचारी, सब शास्त्रोंसे पराह्मुख, घनके मदसे मतवाला और वेश्यालम्बन ब्राह्मण था । एक बार चैत्रमासमें नवमीको भेरे किसी मित्रने शाद्वमें भोजन करनेके लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६५-१६६॥ तदनुसार है द्विजश्रेष्ठ ! नवमीके दिन मैंने मित्रके यहाँ भोजन किया । उसी पापसे इस हाथीकी दोनिमें आ पड़ा हूँ ॥१६६॥ वयोंकि शास्त्रोंका यह विद्यान है कि प्रत्येक मासकी नवमीको किसीके यहाँ भोजन न करे । यदि ऐसा न हो सके तो चैत्रशुक्ल रामनवमीको तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥१६०॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यसे इस समय सब प्रकारके घलेशोंको हरनेवाला आपका सत्संग प्राप्त हुआ ॥१६१॥ उसको यह बात सुनकर शम्भुने क्षणभर अपने मनमें ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहने लगा-हे मातंग ! सुनो, तुमने जो पुण्य किया है सो मैं तुम्हें बतलाता हूँ । उसीके प्रभावसे आज हमसे भट हुई है ॥१६२॥ ॥१६३॥ अब तुम घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा । उस जन्ममें तुमने रमणीक कावेरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमें श्रीरामनवमीको रामकी कथा सुनी थी । उस दिन तुमने रामतीर्थमें स्नान और रामेश्वर शिवका दर्शन भी किया था ॥१६४॥१६५॥ उसी पुण्यसे आज इस बनमें हमसे भट हुई है । अब हे मातंग और सिंह ! मेरी बात सुनो, मैं इस समय चैत्रमासका स्नान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ । स्नान करके जब मैं कांचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तुम दोनोंका उद्धार करूँगा ॥१६६॥१६७॥ मेरी बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना । तुम्हारे विश्वासके लिए मैं शपथ खाता हूँ, सुनो ॥१६८॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो परस्त्रीगमन करने और मित्रको भारनेसे जो पातक लगता है, मैं उस पातकका भागी बनूँ ॥१६९॥ जो पाप ब्राह्मणका धन हड्डपने और माताका निन्दा करनेमें होता है, उन सब पापोंका भागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥१७०॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपनों स्त्री तथा उस भीलको साथ लिया और वहाँसि अयोध्याके लिए चल पड़ा । उसने हाथी तथा सिंहको उस बनमें ही छोड़ दिया ॥१८१॥

ददर्शान्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । वहन्तं रामलिंगार्थं श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥१८२॥
शम्भुः प्रच्छ तं नत्वा नत्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं विप्र गम्यते काशुना वद ॥१८३॥

कार्पटिक उवाच

प्रयागादागतं विद्धि मां त्वं भृसुरसत्तम । मधुमासेऽवगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८४॥
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणसत्तम । कुतः समागतं चात्र गम्यते कवाशुना वद ॥१८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः प्रोत्राच तं तदा । शिवकांच्याः समायातमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८६॥
चैत्रमासेऽवगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥१८७॥
प्रच्छ द्विजवर्याय कौतुकाविष्टमानमः । शिवकांच्यां शंभुनामा कश्चिद्विग्रोऽस्ति भो द्विज ॥१८८॥
तत्स्य वचनं श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमव्रवीत् । वहवः शम्भुनामानां वर्तन्ते द्विज तत्र हि ॥१८९॥
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद गोत्रोपनामनी । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽव्रवीत् ॥१९०॥

भारद्वाजकुलोत्पन्नं चक्रगोप्युपनामकम् ।

महादेवसुतं

सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । ब्राह्मणं शंभुनामानं जानीपे त्वं न वा वद ॥१९१॥

एवं महाकार्पटिकेन सर्वं गोत्रोपनामादिकमादरेण ।

प्रोक्तं यथा तत्र स भृसुरोऽपि ज्ञात्वा निजं सर्वमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥

भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि । तद्वदस्व सविस्तारं मा शंकां कुरु चात्र हि ॥१९३॥

कार्पटिक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयते मया । यदाऽहं गतवान् गंगासागरं द्रष्टुमादरात् ॥१९४॥
सीताकुण्डसमीपे हि देशे कैकटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्ये च पिशाचेनोग्रहणिणा ॥१९५॥
मां हन्तुं निकटं ग्रासं तं दृष्टोऽहं तदा द्विज । श्वीरामकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥१९६॥
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य स पिशाचः पलायनम् । मत्तः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुश्राव कीर्तनम् ॥१९७॥

रास्तेमें शम्भुने एक कावारथी विप्रको देखा, जो रामेश्वर शिवके लिए गगाजी का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उसे देखकर शम्भुने पूछा—हे विप्र ! इस समय तुम कहांसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उसने उत्तर दिया—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागसे आ रहा हूँ और चैत्रस्नान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृत्तान्त बतलाते हुए कहिए कि कहांसे आये हैं और कहाँ जायेंगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकांच्चोसे आता हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हमें भी चैत्रस्नान करना है । इस प्रकार शम्भुकी वात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकांच्चीमें कोई शम्भु नामका ब्राह्मण रहता है ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी वातके उत्तरमें शम्भुने कहा कि शिवकांच्चीमें बहुतसे शम्भु नामके ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किस शम्भुको पूछते हैं ? जिसे पूछते हों, उसका गोत्र और उपनाम बतलाइए । शम्भुकी वात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि जिन्हें मैं पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगोपी उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं । वे सब वेदों और शास्त्रोंको जानते हैं । उन शम्भुको आप जानते हैं या नहीं, सो बतलाइए ॥ १९० ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम आदि सुनकर शम्भुने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम शम्भुको क्यों पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ । इसमें किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा—हे विप्र ! जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ, सो बतलाता हूँ । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैकट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ वह मारनेके लिये विल्कुल मेरे पास आ पहुँचा । मैं उसे देखकर जोर-जोरसे रामनामका कीर्तन करने और भयसे कौपने लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग लड़ा हुआ और मेरे पाससे योहो दूरपर दूककर कीर्तन

तस्माऽजाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा । त्राहि त्राहीति मां प्राह मया पृष्ठः स वै पुनः ॥१९८॥
 कस्मात्पिशाचदेहे त्वं जातस्तद्वद् सत्त्वरम् । इति मे वचन श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥१९९॥
 कांचीपुर्यां द्विजश्चादं दुष्टिनामा पुरा स्थितः । नाभदानं मया पूर्वं कृतं स्वन्यमपि कृचित् ॥२००॥
 तस्मात्पिशाचदेहत्वं प्राप्तं कार्षटिकोत्तम । इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया ॥२०१॥
 कथं पिशाचयोन्यास्तु ते मुक्तिश्च भविष्यति । ततः पुनः स मां प्राह यदि मे तनयः शुचिः ॥२०२॥
 चैत्रे ददों ममोदेशादन्नदानं करिष्यति । भविष्यति ममोद्धारस्तत्क्षणात्र संशयः ॥२०३॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया । वर्तते क सुतस्ते हि किंनामा वद मां प्रति ॥२०४॥
 तस्ततेन यथा प्रोक्तं भारद्वाजाच्च चिह्नजम् । तत्प्रोक्तं च मया सर्वं निकटे तव भो द्विज ॥२०५॥
 पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम् । रामेशार्थं भो पिशाचं नीयते जाह्नवीजलम् ॥२०६॥
 मया करंडमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम् । दिव्यं कालेन कांचीं हि ग्रवेश्यामि यदा तदा ॥२०७॥
 तव पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं तव । इति मद्वचनं श्रुत्वा सन्तोषं परमं गतः ॥२०८॥
 पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः । अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं मम द्वन्द्वे ॥२०९॥
 यथा दृष्टं त्वया पांथ यथोक्तं च मया तव । अन्यच्च कथ्यतां तस्मै मम पुत्राय सादरम् ॥२१०॥
 मधुदर्शेऽनन्दानस्य महिमा श्रूयते दिवि । अतस्त्वं हि ममोदेशेनानन्दानं मधौ कुरु ॥२११॥
 एवमूक्त्वा स पिशाचः शपथं मां चकार ह । न ब्रूपे स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तदू द्विज ॥२१२॥
 भविष्यति वृथा सर्वयात्रा तव महामते । इति मद्वचनं श्रुत्वा सांत्वयित्वा च तं पुनः ॥२१३॥
 निर्गतोऽस्मि मधौ स्नातुमयोध्यां गंतुमादरात् । कृत्वाऽयोध्यापुरीमध्ये चैत्रस्नानं महाफलम् ॥२१४॥
 यदा च्छामि तां कांचीं तदा तस्मै वदाम्यहम् । अतएव मया पृष्ठस्तव शंखुदिंजोत्तमः ॥२१५॥

सुनने लगा ॥ १९७ ॥ उस कीर्तनके शब्दों से उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण आ गया और जोरेकि साथ 'त्राहि-त्राहि' कहकर चिल्लाने लगा । मैंने उससे पूछा कि तुम क्यों इस पिशाचशरीरको प्राप्त हुए हो, सो मुझे शीघ्र बताओ । मेरी बात सुनकर पिशाचने कहा— ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हे विप्र ! पूर्वजन्ममें कांचीपुरीनिवासी मैं दुष्टिनामका ज्ञाहण था । उस जन्ममें मैंने कहीं थोड़ा भी अन्नदान नहीं किया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस पिशाचदेहको प्राप्त हुआ हूँ । उसकी बात सुनकर मैंने कहा—किस उपायसे तुम पिशाचयोनिसे मुक्त होगोगे ? यह सुनकर उसने कहा कि यदि चैत्रकी अमावस्याको मेरा पुत्र मेरे लिए अन्नदान करे तो तत्क्षण मेरा उद्धार हो जाय, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर मैंने पूछा कि तुम्हारा वह लड़का कहाँ रहता है ? सो हमें बतलाओ ॥ २०४ ॥ इसके बाद उसने मुझे सब परिचय बतला दिया, जो अभी मैंने आपसे कहा है ॥ २०५ ॥ फिर मैंने कहा—हे पिशाच ! मैं इस कांचरमें गंगाजल लिये रामेश्वर शिवपर चढ़ाने जा रहा हूँ । कुछ दिनों बाद जब मैं दक्षिण दिशाकी ओर लौटूँगा तो कांचीपुरी अवश्य जाऊँगा । वहाँ पहुँचकर तुम्हारे बेटेको तुम्हारा सब समाचार कह सुनाऊँगा । मेरी बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे बार-बार प्रणाम करके उसने कहा—हे विप्र ! मेरा वृत्तान्त मेरे पुत्रसे अवश्य कहिएगा ॥ २०६-२०७ ॥ आपने मेरी जो अवस्था देखी है, जो कुछ मैंने आपको बतलाया है और इसके अतिरिक्त भी जो उचित समझिए, वह मेरे लड़केसे कह दीजिएगा ॥ २१० ॥ सुनता हूँ कि चैत्रमासमें अनन्दान करनेका बड़ा माहात्म्य है । इसीलिए तुम चैत्रमासमें मेरे उद्देश्यसे अनन्दान करो । ऐसा कहकर उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप ह्याल करके मेरे सन्देशको मेरे पुत्र से नहीं कहेंगे तो है महामते । आपकी यात्रा व्यथा हो जायगी । उसकी बात सुनकर मैंने बारम्बार उसे सान्त्वना दी और चैत्रस्नान करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा । महाफलदायी चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कांची जाऊँगा तो उसके पुत्रको पिशाचका सन्देश सुना दूँगा । इसीलिए मैंने आपसे शम्भुके विषयमें पूछताछ की है ।

ग्रोक्तं गोत्रादिभिर्लङ्घं वर्तते चेद्गदस्त्र माम् । इति शंभुः पितुवृत्तं ज्ञात्वा मूर्छा गतस्तदा ॥२१६॥
आश्चासितश्च भिन्नलेन विप्रः प्रोवाच तं पुनः । भो भोः कार्पटिकश्रेष्ठ न मत्तोऽस्ति नरोऽधमः ॥२१७॥
यस्त्वया पृष्ठघते शंभुः तोऽहं विद्वि न संशयः । मया पुत्रेण न कुतं स्वपितुमोक्षदायकम् ॥२१८॥
अन्नदानादिकं कर्म धिरिधिङ्गेऽयं वृथा भवः । इदानीं तत्र वाक्येन दास्याम्यन्नं मधौ पितुः ॥२१९॥

एवं शम्भुः कार्पटिकाय चोक्त्वाऽयोध्यां रम्यां दूरतो वै ददर्श ।

ते प्रणेमुस्ता दंपतीपांथमिल्लास्ततः शंभुश्चावदत्कर्कशं सः ॥२२०॥

शंभुरुचाच

पठ्य पश्य महाभिल्ल व्रहायोध्यापुरीं शुभाम् । यस्यां स्नातुं समायाता दृश्यंते कोटिशो जनाः ॥२२१॥
जनौधानां ध्वनिश्चायं श्रूयते मेघशब्दवत् । नानाध्वजपताकाशं दृश्यंते चेन्द्रचापवत् ॥२२२॥
यथा वायध्वनिश्चायं श्रूयते हि मनोहरः । अग्निहोत्राग्निधृमौवैवर्यमिं पठ्य नभोऽङ्गणम् ॥

कैलासगिरिसाम्यानि पश्य सौधानि कर्कश ॥२२३॥

नवप्रतोलीपरिखावलपीकृतमेखलाम्	। उनुङ्गहम्या विलपत्वताकाशतसंकुलाम् ॥२२४॥
अभ्रंलिहमहासौधसुवर्णकलशोजज्वलाम्	। पश्यायोध्यापुरीं श्रेष्ठां सरयुतीरनादिताम् ॥२२५॥
हाटकोद्धाटिता रत्नखचितैर्या कपाटकैः । सुमवृत्तेविवृत्तैः रवैरुनिमपतीव लक्ष्यते ॥२२६॥	
दोधृथमानैर्मरुता पताकांचलमृचितैः । आहृपतीव पुरतो लक्ष्यते पथिकान् जनान् ॥२२७॥	
अधःकृताधोभुवना जेतुमेकामरवतीम् । प्रासादशूलध्याजेन सन्नदेवाय लक्ष्यते ॥२२८॥	
पवित्रेऽस्मिन्महाक्षेत्रे निवसन्ति तिरोहिताः । त्रङ्गेशहार्गभिः सर्वदेवास्ते ऋष्योऽमलाः ॥२२९॥	
कुवेरस्पर्द्या यत्र चिन्वन्ति वसुमंचयान् । दातुं भोक्तुं जनाः सर्वे स्वधर्मनिरताः सदा ॥२३०॥	
गेहे गेहे सदानन्द एवाक्षीवृत्र वै पुरि । येषां प्रक्षालयंति स्म चरणान् वासवादिकाः ॥२३१॥	

इस तरह अपने पिताकी हालत सुनकर शम्भु मूर्च्छित हो गया ॥ २११—२१५ ॥ उसकी यह दशा देखकर उस भील और ब्राह्मणने उसे बहुत कुछ आश्वासन दिया । होशमें आनेपर शम्भुने कहा—हे कार्पटिकश्रेष्ठ ! जिस शम्भुके बारेमें आप पूछ रहे हैं, वह मैं ही हूँ । मेरे बराबर अवम और कोई नहीं हो सकता ! मुझ अवम पुत्रने अपने पिताकी मृत्तिके लिए कुछ भी अन्नदान नहीं किया । मेरे जन्मको चिकार है : मैं अब आपके क्यनानुसार इस चंत्रमात्रमें अवश्य अन्नदान दूंगा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल पड़ा और रम्य अयोध्या नगरीको दूरसे देखकर स्त्री-पुत्र, शम्भु, पवित्र एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने कक्षाशसे कहा—हे महाभिल्ल ! इस अयोध्यापुरीको देखो, जिसमें स्नान करनेके लिए करोड़ों मनुष्य आये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जनसमुदायका ध्वनि मंधारजंतके समान सुनायी दे रही है । उड़ती हुई विविध प्रकारकी पताकायें इन्द्रधनुषके समान दीख रही हैं । ब्राजींकी मनोहर ध्वनि सुनायी देती है । अग्निहोत्रके धूमसे सारा आकाशमण्डल भर भया है । हे कर्कश ! यहाँ कैलासगिरिखरके समान उज्ज्वल और ऊँची अद्वालिकायें दीख रही हैं ॥ २२२ ॥ नवीनयो अटारियों और परिखाओंसे सारी नगरों धिरी हुई है । कैंचे-ऊंचे भवन बने हैं और उनमें संकड़ों पताकायें फहरा रही हैं । आकाशको चूमनेवाले बड़े-बड़े भवनोंपर सुवर्णके कलशोंसे अयोध्यापुरी शोभित हो रही है । रत्नमें खचित और सुवर्णसे मणित दरवाजोंसे भरो नगरी उनके खुलने और बन्द होनेपर ऐसा लगता है कि वह पलकें खोल मौद रही है । पताकाहृषी आँचिल पवन द्वारा उड़नेसे ज्ञात होता है कि यह नगरों दूर ही से दधिकोंको बुझा रही है ॥ २२३—२२७ ॥ इस नगरीने अपनी शोभासे पाताललोकको भी नीचा दिखा दिया है । अब केवल अमरावती पुरोंको जौतना बाको है । सो ऐसा लगता है कि प्रासादहृषी शूलको लिये हुए यह पुरी उसे भी जीतनेकी तैयारी कर रही है । इस पुनीत क्षेत्रमें अहग, विष्णु और शिवके साय-साय सब देखता और कृषि गुप्तरूपसे निवास करते हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ यहाँके निवासी कुवेरको जीतनेके लिए और दान तथा भोगके बास्ते थन बटोर रहे हैं ॥ २३० ॥ इसी पुरीमें

ते द्विजाः कस्य नो वंद्या अयोध्यानगरीस्थिताः । औदार्ये कल्पतरवो गांभीर्ये सागरा हव ॥२३२॥
 धमया धमया तुल्या जंगमा निगमा हव । दैत्यग्राहमहाम्भोधिग्रासागस्त्यमहव्यः ॥२३३॥
 निवसंति द्विजा यत्र वंद्याः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलोपेतं चतुराश्रममुज्ज्वलम् ॥२३४॥
 चातुर्वर्ण्यमिहैवास्ते चतुराम्नायमार्गम् । कुमिकीटपतञ्जनां विना ज्ञानसमाधिभिः ॥२३५॥
 अत्र निर्वाणपदवी सुलभाऽस्ति वनेचर । एनापानघटान् भोक्तुं तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥
 विभर्ति सरयुतोयं निःश्रेणिमोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकसोपाननिविष्टमुनिसस्तुताम् ॥२३७॥
 सरयूनदीमुक्तरीया कुतामिव पुराऽनया । इन्द्रनीलमहातुंगप्रतोलीचारुदर्शनः ॥२३८॥
 रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रासादस्तुञ्जतोरणः । प्रतोली यस्य घटिता काश्मीरैरुपलैरलम् ॥२३९॥
 सीतायाश्र महानेष प्रासादो रत्नतोरणः । नानारत्नैमणिडतथै हेमस्तंभविराजितः ॥२४०॥
 स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः सरयूतीरसंश्रितः । रामतीर्थममीपेऽयं सीतारामस्य वै परः ॥२४१॥
 प्रासादो विमलो भाति तपकांचननिर्मितः । पताकाभिर्विचित्राभिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥
 उत्तमजांवृनदरत्नकुम्भः प्रवालवैदूर्यनिवद्धभूमिः ।

हेमप्रतोलीरचितः स एव प्रासादवर्योऽस्ति हि लक्ष्मणस्य ॥२४३॥

चातुर्यं यत्र विश्रान्तं सकलं विश्वकर्मणः । सोऽयं भरतराजस्य प्रासादो हेमतोरणः ॥२४४॥
 तथा देदीप्यमानोऽयं रत्नभित्तिविनिर्मितः । प्रसादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभावहः ॥२४५॥
 स्फाटिकैर्भित्तिभित्रिभित्रः ग्रोच्चः कनकरेखितः । प्रासादो वायुपृत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः ॥२४६॥

य एष मुक्ताफलजालशोभी सुदर्शनांकः खगराजकेतुः ।

कुशस्य रम्यस्त्वयमाविरास्ते प्रासादकुम्भः किमु चालस्त्र्यः ॥२४७॥

सदा आनन्द छाया रहता है । जहाँके निवासी ज्ञाहृणोंके पैर इन्द्रादि देवता भी घोषा करते हैं, तब वे भला किसके वन्दनीय न होंगे । यहाँके विप्र उदारतामें कल्पवृक्ष, गम्भीरतामें समुद्र, जमामें पृथ्वी, जंगमोमें वेद तथा दारिद्र्यरूपी महाम् समुद्रके शोथणमें आगस्त्यके सहशा हैं । संसारके सब राजे इनको मस्तक शुकाकर प्रणाम करते हैं । इनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंमेंसे किसीकी भी कमी नहीं रहती । ये जानन्दके साथ ज्ञाहृचर्य, गार्हस्था, वानप्रस्थ एवं संन्यास, इन चारों आश्रमोंका उपभोग करते हैं ॥ २३१-२३४ ॥ यहाँपर चारों वेदोंके अनुसार चार वर्णके लोग निवास करते हैं । हे वनेचर ! यहाँ जान और समाधिके विना ही कोटपतञ्ज आदिकोंके लिए भी मुक्ति सुलभ है । यहाँ पापरूपी धड़ोंका जल पीनेके लिए योग और मोक्षकी निसेनी बनकर सरयूका जल शोभित हो रहा है । देखो न ! स्फटिक मणिकी दीनी सीढ़ियोंपर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं । अयोध्याकी उत्तर दिशामें इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान सुन्दर सरयू नदी बह रही है ॥ २३५-२३८ ॥ यह रामचन्द्रजीका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ऊँचे कंगूरे बने हुए हैं । इसके आस-पासके मार्ग कश्मीरके पत्थरोंसे बने हैं ॥ २३६ ॥ इस ओर सीताका महाभवन दिखाई पड़ता है । जिसमें रत्नके तोरण और सुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँ तहाँ स्फटिक मणिके पत्थर लगे हैं, जिससे यह चित्र-विचित्र मालूम पड़ रहा है । रामतीर्थके पास ही सीता-रामका एक दूसरा भवन सुवर्णसे बना है । उसमें भी विचित्र प्रकारकी पताकायें लगी हैं और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें तपाये सुवर्ण तथा रत्नोंके कलश हैं, सुन्दर प्रवाल और वैदूर्यमणिकी दीवारें बनी हैं । इसके भी आस-पास सुवर्णके मार्ग बने हैं । यह श्रोलद्धमणजीका भवन है ॥ २४३ ॥ वह सामनेका भवन जिसके बनानेमें विश्वकर्माकी सारी चातुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीभरतजीका भवन है । इसमें भी सुवर्णके तोरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजीका है ॥ २४५ ॥ अतिहङ्क ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका यह सुवर्णमय प्रासाद वायुपृत्र श्रीहनुमानुजीका है ॥ २४६ ॥

प्रासादोऽयं लवस्यात्र वहुरत्नविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगीदृशाम् ॥२४८॥
 चक्षुषि जातरागाणि योगिनामपि मानसम् । विन्यस्तरत्नविन्यासः शातकुंभशुत्रो वहिः ॥२४९॥
 हेष्यंतीव सततं रत्नसानुमहाप्रभाम् । रत्नप्रासादसंयुक्तामयोध्यां पश्य सुप्रभाम् ॥२५०॥
 यदंगणं क्षालयती नदीयं स्वीयैर्जलैः सोऽयमनर्थ्यरत्नः ।
 अञ्चक्षैर्हेममयैः स्वकुंभैर्विराजितोऽयं खलु चित्रकेतोः ॥२५१॥
 दिव्यप्रवालघटिते कपाटे यत्र चञ्चले । प्रासादोऽयमंगदस्य रुक्मभित्तिविनिमितः ॥२५२॥
 गरुडोद्वारघटितप्रतोलीपरिशोभितः । प्रासादः पुष्करस्यायं नयनानंदनो नृणाम् ॥२५३॥
 विशुद्धजांबूनददिव्यभूमिर्लसत्पातकस्त्रिदशाभिवंद्यः ।
 प्रासाद एषः परमो मनोज्ञस्तक्षस्य व्रीरस्य महान् दिभाति ॥२५४॥
 यस्याधिभूमिं नवरत्नसिंहस्त्रिभिः पदैर्ये विजिताख्योऽपि ।
 लोकश्चतुर्थो न हि दश्यतेऽनः पदं समुद्यम्य किमाविरास्ते ॥२५५॥
 अधौषमत्तकरिणां घटा दारयितुं किमु । उदस्तचरणो यस्य रत्नसिंहो विराजते ॥२५६॥
 सोऽयं हेमभित्तिमयः प्रासादः प्रन्नतः शुभः । सुवाहोः पश्य भो भिष्ठुरत्नसानुविराजितः ॥२५७॥
 रत्नप्रवालस्फटिकनीलकाञ्चीरनिमितः । प्रासादोऽयं यूपकेतोर्महान् दीसिमयः शुभः ॥२५८॥
 कहारैरुत्पलैः शोणैरविन्दैः शतच्छदैः । विराजितं पापहरं रामतीर्थं प्रदृश्यते ॥२५९॥
 इन्दूत्पलैः रविदलैनिवद्वा यस्य भूमयः । हरंति ग्रीष्मसंतापं निष्ठंदसीकरोत्करः ॥२६०॥
 अमंदकुरुविंदानां विन्यासैर्यत्र चारुमिः । मुखन्ति शुकचेतांसि मुद्रदाङ्गिमशक्या ॥२६१॥
 एवं पश्य शुभां रस्यां पताकाभिविराजिताम् । भिष्ठायोध्यां मुक्तिपुरीं द्वितीयाममरावतीम् ॥२६२॥

जिसमें मोतियोंकी झालरें लगी हैं, सुवर्णन चक्र एवं गरुड़के चिह्नसे चिह्नित पताकायें फहरा रही हैं, बालसूर्यकी तरह सुन्दर यह भवत कुशका है ॥ २४७ ॥ बहुतेरे रत्नोंसे विराजित यह लवका दिव्य भवत है, जिसमें बने हुए चित्र स्त्रियोंका मन मोह लेते हैं ॥ २४८ ॥ जहाँ कि योगियोंकी भी आँखें पहुँचकर राममयी बन जाती हैं, जिस नगरीके भवनोंमें विविध प्रकारके रत्नोंकी पच्चीकारी की हुई है, जिसके बाहरकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसकी अटारियाँ सुवर्णकूटकी तरह देवीप्यमान हो रही हैं, ऐसी अवध्यानुरीको देखो । जिसके प्रांगणका घोंता हुई यह सरयू नदी विराजमान है । आकाशको छूनेवाले वडे-वडे प्रासादोंके कलशोंसे सुशोभित यह पुरा साक्षात् चित्रकेतु गन्धवंकी पुरीके समान सुन्दर दीप्त रही है ॥ २४९-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिसे बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और सुवर्णकी दीवारें बनी हैं, यह अङ्गदका भवत है । गरुडमणिकी जिसमें प्रतोलियाँ बनी हैं, नयनोंको आनन्द देनेवाला वह भवत पुष्करका है । जिसकः फर्ज विशुद्ध सुवर्णकी बनी है और सुन्दर पताकायें जिसमें फहरा रही हैं, यह परम मनोज प्रासाद व्रीर तक्षका है ॥ २५२-२५४ ॥ इधर देखो, नवरत्नमय सिंह विद्यमान है । इस नवरत्नमय सिंहकी बड़ी महिमा है । इसके प्रभावसे वामन भगवान्ने तीन पैरसे तीनों लोकोंको नाप लिया था । चौथा कोई लोक ही नहीं बचा था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके घरमें ऊपरको पैर उठाये नवरत्नका सिंह विराजमान हो तो अथ (पाप) रुपी मतवाले हाथियोंका उसे कुछ भी भय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभित्तिमय रत्नके शिखरसे विराजित यह प्रासाद सुवाहुका है ॥ २५७ ॥ रत्न, प्रवाल, स्फटिक और नील काश्मीरसे निमित यह प्रासाद यूपकेनुका है ॥ २५८ ॥ कहार, उत्तर, शोण, अरविन्द तथा शतपत्रसे विराजित समस्त पापोंको हरनेवाला यह रामतीर्थ दिखलायी पढ़ रहा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । अतएव टपकते हुए ठण्डे जलकी बूँदोंके गिरनेसे ग्रीष्म-ऋतुका सन्ताप दूर हो जाता है । दमकते हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे यहाँ शुकोंको मूँग और अनारके फलका भ्रम हो जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रस्य और पताकाओंसे विराजित दूसरी

यत्र कार्त्तस्वरघटाः प्रतोलीशिरसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनन्तास्तं प्राप्नाः सूर्या इवावभुः ॥२६३॥

नृसिंह उवाच

एवमुक्त्वा कर्कशेन पत्न्या कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुस्तां पुरीं संविवेश सः ॥२६४॥

रामतीर्थं ततो गत्वा कृत्वा क्षौरादिकं विधिम् । उपोष्य दिनमेकं हि तीर्थश्राद्धं चकार सः ॥२६५॥

अमावास्यां शुभां चैत्रे प्राप्नां ज्ञात्वा द्विजोत्तमः । मुक्त्यर्थं स्वपितुश्चके इन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥

तच्चैत्रमासे रजनीश्वसंक्षये दत्तं पितुर्यच्छुभदं मनोहरम् ।

विप्रेण चान्नं पथिकस्य वाक्यतस्तस्मात्पिशाचः सुरसञ्च निस्थितः ॥२६७॥

अयोध्यायां ततः शभुः कृत्वा चैत्रेऽवगाहनम् । उद्यापनविधिं चापि यथोक्तं च चकार सः ॥२६८॥

कर्कशोऽपि मधौ स्नात्वा मुक्त्वा पापौष्ठभूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुवृत्त्याऽवसच्चिरम् ॥२६९॥

श्रीरामचिंतनं कुर्वन्निननायायुष्यसंक्षयम् । ततः प्राप्त हरेलोकमयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥

शंभुश्चापि मधौ स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गांतुं ग्रतस्थे श्रीरामं नत्वाऽयोध्यां पुनः पुनः ॥२७१॥

भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । ययौ पूर्वेण मार्गेण यत्र तौ करिकाहलौ ॥२७२॥

स्थापितौ शपथैः कृत्वा शनैस्तत्र समागमत् । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभास्यां मधुमासजम् ॥२७३॥

दत्त्वा स्वीयांजलौ तोयं तयोर्मुक्तिं चकार सः । ततस्तौ करिसिंहौ च दिव्यमाल्यानुलेपितौ ॥२७४॥

दिव्यं विमानमारुद्धा विष्णुलोकं गतावुभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्याः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥

स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपथैवने । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठ भार्या प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥

अयि काश्याहृये रम्ये शृणु मे वचनं शुभम् । या त्वया शीतला गौरी स्नाता वै सरयूजले ॥२७७॥

तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभावहम् । राक्षसाय हि मद्राक्षपादूगृह्णीष्व जलमंजलौ ॥२७८॥

अमरावतीपुरीके समान देदीप्यमान इस अयोध्यापुरीको देखो ॥ २६२ ॥ जहाँ कि प्रतोलीके मस्तकपर विराज-मान सुवर्णके भवन ऐसे दीख रहे हैं, जैसे अनन्त सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हों ॥२६३॥ नृसिंहने कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक तथा कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीमें प्रविष्ट हुआ ॥ २६४ ॥ पहले रामतीर्थपर पहुँचकर उसने क्षौर आदि कराया और एक दिनका उपवास करके तीर्थश्राद्ध किया ॥ २६५ ॥ जब चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आयी तो उसने अपने पिताकी मुक्तिके लिए विघ्नित अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ उस चैत्रमासमें अमावास्याको शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार जो अन्नदान किया, उसके पुण्यसे तत्काल उसका पिता पिशाचयोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको चला गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुने अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्रोक्त विधिसे उसका उद्यापन किया । कर्कश भी चैत्रस्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करते-करते उसने शरीर त्याग दिया । अयोध्यामें भरनेसे उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीको बारम्बाह प्रणाम करके कांचीपुरीको जानेकी तैयारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे लौटकर उधर चला, जहाँ कि अयोध्या जाते समय सिंह और हाथीको छोड़ आया था ॥ २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने हाथमें जल लिया और चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस योनिसे मुक्ति कर दी । इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमाल्यसे अलंकृत हो और दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर विष्णुलोकको चले गये । इसके बाद शम्भु अपनी स्त्रीके साथ आगे बढ़ा ॥ २७३-२७५ ॥ जाते-जाते वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जाते समय शपथ करके उस राक्षसको वनमें छोड़ आया था । वहाँ राक्षसको सामने देखकर शम्भुने अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने शीतला गौरीका द्रव्य किया है । हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७६-२७८ ॥

इति शंभुवचः श्रुत्वा पद्मनेत्रा कृशोदरी । काशीनाम्नी द्विजपत्नी ददौ पुण्यं निजं तदा ॥२७९॥
 ततः स राक्षसश्रेष्ठस्त्यक्त्वा देहं मलीमम् । दिव्यं विमानमारुष्य नत्वा भार्यायुत द्विजम् ॥२८०॥
 दिव्यमालयांवरधरो हरिलोकं जगाम सः । शंभुथापि प्रियायुक्तो मधुमासं विवर्णयन् ॥२८१॥
 ययौ कांचीपुरीं श्रेष्ठां जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा पृष्ठं भवद्विश्व कथानकम् ॥२८२॥
 तत्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्वारणादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा नृहरिर्विप्रो गृहीत्वा स्वांजल्यै जलम् ॥२८३॥

ददौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः प्रोवाच भार्या तु रम्ये चन्द्रप्रभे प्रिये ॥२८४॥
 या त्वया शीतलागौरी स्नाता सीताकृते वरे । तीर्थे तस्य दिनैकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥
 पिशाचिन्यै समुद्रतुं मा विचारोऽस्तु ते हृदि । इति भर्तुवचः श्रुत्वा रम्या पंकजलोचना ॥२८६॥
 लक्ष्मीनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निजं तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभावहाः ॥२८७॥
 निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणेमुर्नृहरिं जवात् । नत्वा स्तुत्वा पुनरन्त्वा नृसिंहं त प्रियायुतम् ॥२८८॥
 आपृच्छय जग्मिरे सर्वे स्वगुरोराश्रमं प्रति । गुरुथापि सुतां स्त्रीयां तां ददावतिहर्षितः ॥२८९॥
 तयोज्येष्टाय शिष्याय कनिष्ठायापरां सुताम् । स्त्रीयोदरसमुत्पन्नां ददावतिमां वराम् ॥२९०॥
 ततस्तौ सख्नियौ विप्री जग्मतुस्तौ मुदान्तितौ । स्वस्वपितुश्चाश्रमं हि तयोस्तौ पितरावपि ॥२९१॥
 दृष्ट्वा पुत्रो समायातौ सख्नियौ तोपमापतुः । नृहरिश्च प्रियायुक्तोऽवजकं प्रति समाययौ ॥२९२॥
 चैत्रस्नानेन तत्पुत्रो रामदासाभिष्ठस्त्वहम् । जातस्त्रतस्तौ देहान्ते जग्मतुवैष्णवं पदम् ॥२९३॥
 एवं शिष्यं मधुस्नानमहिमा वहुभिर्नैः । दैवैः सिद्धैश्च गधवैः सदाऽनुभविताऽस्ति हि ॥२९४॥
 तस्मान्मधाववश्यं हि स्नातव्यं मानवोत्तमैः । रामतीर्थेषु सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इस प्रकार शंभुकी आज्ञा सुनकर उस काशी नाम्नी द्विजपत्नीने अपना पुण्य उसको दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राक्षसने अपनी वह अवम देह छोड़ दी और दिव्य विमानपर चढ़कर ब्राह्मण तथा ब्राह्मण-पत्नीको प्रणाम करता हुआ विष्णुलोकको चला गया । शम्भु भी चैत्रमासके माहात्म्यका वर्णन करता हुआ कांचीपुरीका चल पड़ा । हे पिशाचगण ! आप लोगोंने जा कथा पूछो, सा राक्षसाके उद्घारसे सम्बन्ध रखनेवाली सब वाते कह सुनायीं । रामदासने कहा-ऐसा कहकर नृसिंहने अंजलीमें जल लिया और अपने चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य उसे दे दिया । किर अपनी स्त्रासं कहा कि तुमने चंत्रम जो शोतला गौरीका स्नान किया है । उसमेंसे एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीको दे दो ॥ २८०-२८५ ॥ इससे इसका उद्घार हो जायगा । इसपर कुछ विचार मत करो । इस प्रकार स्वामीकी आज्ञा सुनकर उस कमलनयनीने अपना पुण्य दे दिया । तब शीघ्र ही वे सब पिशाचयोनिसे मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपको प्राप्त हो गये । इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, बारम्बार उनकी स्तुति की ओर उनसे पूछकर अपने गुदके आश्रमको चले गये । गुदने भी अतिशय हर्षित होकर अपने कन्या उन्हें दे दो । उनमेंसे ज्येष्ठ आताको ज्येष्ठ कन्या तथा कनिष्ठको एक दूसरी सगी कन्या समर्पित की ॥ २८८-२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपनी-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता-पिता भी स्त्रीके साथ अपने बेटेको आते देखकर प्रसन्न हुए । नृसिंह भी अपनी भाष्यके साथ अवजक नगरको चल पड़े ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और वह मै हूँ । कुछ दिनों बाद मेरे माता-पिताका देहांत हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥ २९३ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही मनुष्य, देवता, सिद्ध तथा गन्धर्वोंने अनुभव किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण अच्छे मनुष्योंको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं त्वया यथा पृष्ठं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काऽन्या स्पृहा तेस्ति श्रोतुं तद्दद वच्म्यहम् २९६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
चैत्रस्नानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्र द्वारा अद्वैतभावका प्रदर्शन)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । शृणुतो मे मुहुर्नास्ति वृसिः श्रोतुं स्पृहैधते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारुढो पुत्रवंशुबलैः सह ॥ २ ॥

वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा मृगं श्रेष्ठं तं हन्तुं रघुनन्दनः ॥ ३ ॥

चाणमाकृष्य तत्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनाद्विनांतरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥

एकाकी हयमारुढो विवेश गहन वनम् । पश्चाद्दूरस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या वलैः सह ॥ ५ ॥

रामोऽपि निजवाणेन मृगं हस्या वनेऽचरत् । निर्जलेऽतितृपाकांतः ज्ञात्वाच्यासोऽप्यभूतदा ॥ ६ ॥

ततो रामो वृक्षतले क्षणं तस्यौ श्रमान्वितः । तावत्तं शबरी काचिद् दृष्ट्वा रामं मुदान्विता ॥ ७ ॥

नृपं ज्ञात्वा राजचिह्नस्तं प्रणम्य पुरःस्थिता । तां दृष्ट्वा राघवोऽप्याह वाक्यं शबरि मे शृणु ॥ ८ ॥

लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तुद्भ्यां पादितोऽस्म्यहम् ।

किञ्चिद्यत्नं कुरुष्वात्र येन मेऽद्य सुखं भवेत् ॥ ९ ॥

तद्रामवचनं अत्वा शबरी वाक्यमन्वयात् । इतोऽविदूरे श्रीराम दुर्गास्ति सरसस्तटे ॥ १० ॥

भौमवारेऽद्य नार्यश्च वहवोऽत्र समागताः । तत्र त्वं च मया राम यदि यास्यसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥

स्नान करके रामतीर्थोंमें जाकर रामचन्द्रजोंका पूजन करें ॥ २६५ ॥ तुमने जो पूछा, मैंने सब कुछ कह सुनाया । अब क्या सुननेकी इच्छा है, सो कहो । मैं सुनाऊँ ॥ २९६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेवकृतं ज्यात्स्ना'भाषाटोकासहिते मनोहरकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! अब रामचन्द्रजीका कोई और चरित्र सुनाइए । क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती । जितना ही सुनता हूं, सुननेकी इच्छा बहती जाती है ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छी बात कहा है, अब सावधान मनसे मेरो बात सुनो । एक बार घोड़ेपर सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों तथा सेनासे साथ मृगयावहार करनेके लिए बनमें गये । वहाँ एक अच्छा-सा मृग देखा और उसे मारनेके लिए बनुषपर बाण चढ़ाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे । लक्ष्मण आदि साथी सेनाके साथ-साथ बहुत पीछे छूट गये ॥ २-५ ॥ अन्तमें बड़ी दूर जाकर रामने उस मृगको मारा । वह स्थान निजंल या और उन्हें भूख-प्यास जोरोंसे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये । उसी समय किसी शबरीने रामको देखा और उनकी वेश-भूषासे पहचान लिया कि ये कोई राजा हैं । वह रामके पास जा तथा प्रणाम करके सामने बैठ गयी । उसे देखकर रामने कहा—हे शबरी ! तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पीछे छूट गये हैं । मैं भूख-प्याससे बहुत दुखी हूं । तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय ॥ ९ ॥ इस प्रकाश रामकी बात सुनकर शबरीने कहा—हे राम ! यहाँसे थोड़ी दूरपर तालाबके

तदिं तत्र विचित्रान्नैस्तुष्टि प्राप्त्यसि वै क्षणात् । तत्स्या वचनं श्रुत्वा शवरीं प्राह राघवः ॥१२॥
 अहमत्रैव तिष्ठामि प्रतीक्षार्थं कुशस्य च । लब्ध्य लक्षणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१३॥
 गच्छ त्वपेव तां दुर्गां स्त्रीमें वृत्तं निवेदथ । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा त्वरान्विता ॥१४॥
 स्त्रोर्गत्वा शवरी प्राह शृणुध्वं वचन मम रामो राजीवपत्राक्षो मृगयां कर्तुमागतः ॥१५॥
 अविदूरे वृक्षतले ज्ञुधाक्रांतः स्थितोऽस्ति हि । तेनाहं प्रेषिताऽस्मद्य सूचनार्थं वराननाः ॥१६॥
 युष्माकं कथितं वृत्तं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । शवर्यास्तद्वचः श्रुत्वा ता नार्यः संभ्रमान्विताः ॥१७॥
 अभिनन्द्य निजैर्वाक्यैः शवरीं तां मुहुर्मुहुः । परस्परं तदा प्रोचुस्ता नार्यः शतशो मुदा ॥१८॥
 धन्योऽद्य दिवसोऽस्माकं यस्मिन् राघवदर्शनम् । भविष्यति वरान्नैश्च तोषयामो रघूत्तमम् ॥१९॥
 आदी दुर्गा पूजायित्वा नैवेद्यं तां निवेद्य च । ततः समर्थं रामाय भोक्ष्यामश्च वयं ततः ॥२०॥
 इति संमन्त्र्य तां नार्यो रुक्मालकारमण्डिताः । पीतकौशेयवासिन्यो वरास्या मृगलोचनाः ॥२१॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवी स्वालयस्य समन्ततः । कपाटानि दृढं बद्ध्वा नूणामासीद्विरीन्द्रजा ॥२३॥
 ततस्ता द्वारमासाद्य द्वारं बद्धं निरीक्ष्य च । वभ्रमुः सर्वद्वाराणि न मार्गं लेभिरेस्त्रियः ॥२४॥
 तदाश्चर्यमनाः सर्वा द्वारदेशे स्थिताः क्षणम् । तावदेवालयाच्छब्दो निर्गतः शुश्रुवुः स्त्रियः ॥२५॥
 अहमेवात्र सीताऽस्मि रामः साक्षान्महेश्वरः । ये भिन्नं मानयंत्यत्र मां सीतां राघवं हरम् ॥२६॥
 ते कोटिकलरपर्यन्तं पच्यन्ते रौखेषु हि । अतो यूयं हि भो नार्यो मन्नार्थं च जगत्प्रभुम् ॥२७॥
 तोषयध्वं वरान्नैश्च तच्छेषण त्वहं ततः । तुष्टा भवामि गच्छध्वं ज्ञुधितं त रघूत्तमम् ॥२८॥
 इति नार्यो वचः श्रुत्वा देव्यास्ता विस्मयान्विताः । दुद्रुवुर्गजगामिन्यः शवरीचरणानुगाः ॥२९॥

किनारे एक दुर्गा-मन्दिर है ॥ १० ॥ आज मञ्जलबार है । इसलिए वहाँ बहुत-सी स्त्रियें आयी होंगी । यदि मेरे साथ वहाँ चलें तो आपको नाना प्रकारके विचित्र अन्न खानेको मिलेंगे । जिससे आप क्षणभरमें तृप्त हो जायेंगे । शवरीकी सलाह सुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं वहाँ कुश आदिकी प्रतीक्षा करता हुआ बैठा हूँ । हे वनवासिनि ! तू ही जाकर उन स्त्रियोंको मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार शवरी तुरन्त चल पड़ी ॥ ११-१४ ॥ उसने वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियोंसे कहा—कपलके समान नेत्रोंवाले भगवान् रामचन्द्र यहाँ शिकार खेलने आये थे । वे पास ही पेड़के नीचे भूखेष्यासे बैठे हैं । उन्होंने आप लोगोंको यह संदेश सुनानेके लिये मुझे भेजा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अब आप लोग जो कुछ कहें, वह जाकर मैं रामचन्द्रजीको सुना हूँ । शवरीकी बात सुनी तो विस्मित भावसे उन्होंने शवरीको घन्यवाद दिया और कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हमारे लिए आजका दिन घन्य है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन प्राप्त होंगे और हम अच्छे-अच्छे अश्रोसे उन्हें सन्तुष्ट करेंगी ॥ १९ ॥ हम पहले दुर्गाजीकी पूजा करके उनको नैवेद्य चढ़ायेंगी । उसके बाद रामको भोजन कराकर स्वयं भोजन करेंगी ॥ २० ॥ यह सुनकर सूवर्णके अलंकारोंसे अलंकृत, पीले कपड़े पहने, सुन्दर मुख एवं मृगीके समान नेत्रोंवाली वे ब्रह्मण, अत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके घरोंको स्त्रियें तुरन्त हाथोंमें नैवेद्यके पात्र लेकर नूपुरकी मनोहर ध्वनि करती हुई चल पड़ी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर दुर्गाजीने चारों ओरसे मन्दिरका फाटक बन्द कर लिया और भीतर चुपचाप बैठ गयीं ॥ २३ ॥ वे स्त्रियां मन्दिरमें पहुँचीं तो द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब द्वारोंपर धूम आयीं । लेकिन किसी तरफसे भी उन्हें भीतर जानेका मार्ग नहीं मिला ॥ २४ ॥ ऐसी अवस्थामें वे विस्मित होकर वहीं बैठ गयीं । योड़ी देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह वाणी सुनायी दी, जिसे उन स्त्रियोंने सुना—॥ २५ ॥ मैं ही सीता हूँ और राम साक्षात् शिव हैं । जो हममें और सीतामें, राममें तथा शिवमें भेद मानते हैं, वे करोड़ों जन्म पर्यन्त रौख नरकमें सड़ते हैं । इस कारण हे स्त्रियो ! पहले तुमलोग अच्छे-अच्छे अश्रोंसे मेरे प्रभु रामको प्रसन्न करो । उनसे जो बचे, सो लाकर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जाओ । रामचन्द्रजी मूखेष्यासे बैठे हैं ॥ २६-२८ ॥

ततः सा शब्दरी ताभ्यो दशेयामास राघवम् । ता नेव्रपंकजैः सर्वा दृष्टा नत्वा रघूतमम् ॥३०॥
 दिव्याभानि पुरः स्थाप्य हेमपात्रैर्जलान्यपि । ततस्तं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरः स्थिताः ॥३१॥
 स्वयाऽद्य तारिता राम वर्णं नार्यः सहस्रशः । शबरीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥
 जग्नानि स्वीकुरुष्व त्वं देव्या त्वां प्रेषितानि हि । ततासां वचनं अत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥
 देव्या किमुक्तं भो नार्यः कथनीयं ममाद्य तद् । ताः प्रोचू राघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तरम् ॥३४॥
 दुर्गावाक्यं शृणुष्वाद्य त्वहमेवात्र जानकी । रामः साक्षान्प्रहादेवो नात्र भेदः कदाचन ॥३५॥
 मानवंत्यत्र भेद ये रौरवेषु पतंति ते । अतो रामं तोषयित्वा तदुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥
 भोक्ष्यामि नार्यो गच्छ अथ जुधार्तं रघुनंदनम् । देव्येत्थं भाषितं राम ततस्त्वां समुपागताः ॥३७॥
 अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भुक्ष्यान्तं रघुनन्दन । ततस्ताः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥
 यदि देवीवचः सत्यं तर्ष्णत्र गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समायातु सत्वरम् ॥३९॥
 युष्मन्नारीसमूहात् काचिन्नारी गिरीद्रजाम् । गत्वा मद्वचनं दुर्गा आवयत्वद्य कौतुकात् ॥४०॥
 तदामवचनं श्रुत्वा त्वेका त्वी त्वीकद्वकात् । गत्वा दुर्गा रामवाक्यं आवयामास सादरम् ॥४१॥

दुर्गा श्रुत्वा रामवाक्यं तथेत्युक्त्वा तु तां स्त्रियम् ।
 किञ्चित्कपाटमुद्वाटच सीतारूपेण निर्ययौ ॥४२॥

ततः पुनर्दृढ बद्ध्वा कपाटं जानकी जवात् । तोयपात्रं करे धृत्वा ययौ रामं स्मितानना ॥४३॥
 नमस्तुत्वा रामचद्रं तत्पाञ्चं संस्थिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्तद्भूत्वन् विस्मिता हृदि ॥४४॥
 ततो रामो वरान्नानि विप्रस्त्रीणां तथा पुनः । क्षत्रियाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुद्यतः ॥४५॥
 ततः श्रासने वाण संधाय जगदीश्वरः । भुवं भित्त्वाऽथ पातालाजालं तत्र समानयत् ॥४६॥

इस तरह देवीकी बात सुनकर वे सब गजगामिनी स्त्रियें विस्मित होकर शवरीके पीछे-पीछे चलीं ॥ २६ ॥
 वहाँ जाकर शवरीने उन सब स्त्रियोंको रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । उन नारियोंने कमल सरीखे नेत्री-
 वाले रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भोजन सामने रखकर सुवर्णके पात्रोंमें जल भरकर
 रक्खा और उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे भगवान्से प्रार्थना की—॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपने शवरीके द्वारा
 अपने आनेका संदेश भेजकर हम लोगोंको तार दिया है ॥ ३२ ॥ साक्षात् दुर्गाजीके द्वारा भेजवाये इन खाद्य
 पदार्थोंको आप स्वीकार करें । उनकी वातोंको सुना तो मुसकाकर राम बोले—हे नारियो ! दुर्गाजीने हमारे
 विषयमें कथा कहा था, सो तो बतलाओ । स्त्रियाँ विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी वातें बतलाती हुई कहने
 लगीं—उन्होंने कहा था कि राम साक्षात् महेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ । जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका
 भेद मानते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं । इसलिए तुमलोग पहले रामको भोजन कराके प्रसन्न कर आओ ।
 उनसे जो कुछ बचेगा, सो मैं सेहर्व स्वोकार करूँगी । हे स्त्रियो ! अब तुमलोग उन भूखे रामजीके पास
 जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर हम सब आपके पास दौड़ आयीं ॥ ३३-३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित
 पुण्योंके प्रतापसे इस अन्तको ग्रहण करिए । इसके अनन्तर हैसकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—॥ ३८ ॥ यदि
 देवीकी बात सच है तो वे सीतारूपसे यहाँ मेरे पास आयें ॥ ३९ ॥ तुममेंसे कोई स्त्री जाकर मेरा यह सन्देश
 दुर्गाजीको सुना आये ॥ ४० ॥ रामके आजानुसार उनमेंसे एक स्त्री दौड़ती हुई दुर्गाजीके पास पहुँचा
 और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुखसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने
 थोड़ासा दरवाजा खोला और सीतारूपसे बाहर निकल आयीं ॥ ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको
 भजवृत बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर मुसकराती हुई रामकी ओर चल पड़ीं ॥ ४३ ॥ वहाँ
 पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी बालमें जा बैठीं । यह कौतुक देखकर सब स्त्रियाँ बहुत
 विस्मित हुईं ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी स्त्रियोंका अन्न खानेके लिए स्नान
 करनेको उद्देश्य हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थं रामने अपने घनुषपर वाण चढ़ाया और पृथ्वीको फोड़कर पाताल-

तत्र सस्नौ रामचन्द्रः कृत्वा माघ्याह्विकं ततः । यावद्गोकुं मनश्चके तावत्तेऽपि समाययुः ॥४७॥
 कुशाद्याः सर्वसैन्यैश्च रामवाजिपदालुगाः । ते सर्वे जानकीं दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ॥४८॥
 ततस्ते शब्दरीवाक्यात्सर्वे श्रुत्वा कुशादिकाः । गतमोहा रामचन्द्रं मेनिरे चन्द्रशेखरम् ॥४९॥
 सीतां गिरिंद्रिजां चापि मेनिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशाद्यैश्च मुदा सैन्येन सीतया ॥५०॥
 शुक्त्वा पीत्वा जलं स्वच्छं वाक्यं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरयध्वं वरान्नार्यो युष्माकं यत्तु रोचते ॥५१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् । येनास्माकं भवेत्कीर्तिस्तं वरं दातुमर्हसि ॥५२॥
 ततः प्राह रामचन्द्रस्ता नारीस्तुष्टमानसः । मम नामास्तु युष्माकं रामेति जगतीतले ॥५३॥
 युष्माकं मयि सङ्घक्षिः पुरुषेभ्योऽपि चाखिका । भविष्यति सदा नार्यो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥
 देवे विप्रे कथायां च धर्मे भक्तिर्भविष्यति । सदा यूर्यं पवित्राश्च भवध्वं सध्वाः स्त्रियः ॥५५॥
 मांगन्ये शकुने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । यूर्यं भवध्वं सर्वत्र त्रिवेणीघृतमस्तकाः ॥५६॥
 मम बाणात्कृतं तीर्थं मन्नामनेदं भविष्यति । इति रामवचः श्रुत्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् ॥५७॥
 जन्मातिरेऽपि त्वं राम दर्शनं देहि नः पुनः । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमवैत् ॥५८॥
 द्वापरे कृष्णरूपेण युष्माकं दर्शनं मम । भविष्यति वने यज्ञे त्वच्याज्ञाप्रसंगतः ॥५९॥
 द्विजपत्न्यस्तदा यूर्यं भविष्यथ स्त्रियो वने । इयं तु शब्दी पत्नी विप्रस्यैव भविष्यति ॥६०॥
 मदर्शनार्थमुद्युक्तामेनामस्याः पतिर्यदा । स्तम्भे वदुध्वा महादण्डं स करिष्यति वै गृहे ॥६१॥
 तदेयं मद्रतमना वने यास्यति मां प्रति । भिन्नदेहेन शब्दी कौतुकं तद्विष्यति ॥६२॥
 तदा यूर्यं स्त्रियः सर्वास्तदृष्ट्वा कौतुकं मद्दत् । भृत्वाऽत्र मद्रतमना मां ध्यात्वा सर्वदा हृदि ॥६३॥
 अंते मन्त्रोक्तमासाद्य भोक्ष्यथ सुखमुत्तमम् । रामेति तारकं नाम मम नित्यं हि सर्वदा ॥६४॥

लोकसे जल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मध्याह्न फालकी क्रियाओंसे फुरसत पायी । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तेसे ही कुश आदि भो सेनाके साथ उस स्थानपर आ पहुँचे । उन्होंने वहाँ जानकीं को देखा तो उनके आश्रयका ठिकाना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ किर शब्दीके मुखसे उन्होंने सब समाचार सुना । तब उन लोगोंको विश्वास हुआ कि रामचन्द्रजी साक्षात् शिव ही हैं ॥ ४९ ॥ और सीताजो साक्षात् पावंती हैं । तत्पश्चात् रामचन्द्रजोने कुश आदि बालकों तथा सेनाके साथ भोजन किया, स्वच्छ जल पिया और उन स्त्रियोंसे कहा-‘हे स्त्रियों ! अब तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो’ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह रामकी बात सुनकर स्त्रियाँ बोलीं कि जिससे संसारमें हमारी सुकृति हो, कोई ऐसा वरदान दीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर उन नारियोंसे कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी “रामा” यह नाम विख्यात होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियों ! हमारे वरदानके प्रभावसे पुरुषोंकी अपेक्षा नारियोंकी हमारेमें विशेष भक्ति रहेगी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, हरिकथा एवं धर्ममें तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम जैसी सध्वा स्त्रियाँ सदा पवित्र रहेंगी ॥ ५५ ॥ अपने मस्तकपर तीन बेणी धारण करनेवाली स्त्रियाँ किसी मञ्जुलमय कार्यं तथा शकुन आदि सब कार्योंमें आगे-आगे चलेंगी ॥ ५६ ॥ मेरे वाणसे इस सरोवरकी रचना हुई है । अतएव यह तीर्थं मेरे ही नामसे विख्यात होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पाकर उन स्त्रियोंने कहा-हे राम ! आप जन्मान्तरमें भी हम लोगोंको अपना दर्शन दीजिएगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा-द्वापरमें अन्न माँगनेके प्रसञ्जमें ही कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंको दर्शन दूँगा ॥ ५७-५८ ॥ उस समय जब वनमें तुम हमें मिलोगी, तब तुम सब ब्राह्मणको स्त्रियें रहोगी । यह शब्दी भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ५९ ॥ मेरे दर्शनके लिए जानेको उद्यत इस नारीको जब इसका पति खम्भेमें बाँधकर दण्ड देगा तो यह अपना मन मुझे अपेक्षा करके अन्य रूपसे मेरे समीर चली आयेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम सब बड़ी विस्मित होओगी और तबसे मुझवें अपना मन लगाकर सर्वश मेरा छगन करोगी ॥ ६१-६३ ॥ अन्तमें मेरे

युज्माभिर्जपनीयं वै तेनास्तु गतिरुचमा । इति दक्षवा वरांस्ताभ्यः सीतामाह पुरःस्थिताप्त् । ६५॥
 सुखं याहि स्थलं स्वीयं तथेत्युक्त्वा विदेहजा । रामं प्रणस्य खीयुक्ता यथौ देवालयं पुनः ॥६६॥
 देवालयगता भूत्वा दुर्गाहृष्णं दधार सा । तदातिविस्मयं प्रापुस्ता नार्यो निजचेतसि ॥६७॥
 तास्तां दुर्गांप्रपूज्याथ नार्यो जग्मुः स्थलं निजप्त् । रामोऽपि वन्धुपुत्रादैर्यौ निजपुरीं प्रति ॥६८॥
 ततो गेहे कुशः सीतां पप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवच्च यथा वृत्तं तथा सीता न्यवेदयत् ॥६९॥
 ततस्ते लक्ष्मणाद्याश्च मेनिरे राघवं हरम् । सीतां साक्षान्महादुर्गां मेनिरे गतविभ्रमाः ॥७०॥
 एवं शिष्यं जनानां च रामेण परमात्मना । द्वैतबुद्धिः खंडिताऽत्र वने कृत्वा तु कौतुकम् ॥७१॥
 एवं वरेण रामस्य रामा नर्यत्र कथ्यते । तासामपि मनुश्चावं स्मृतो रामेति द्वयक्षरः ॥७२॥
 नान्यो मन्त्रोऽस्ति नारीणां शूद्राणां चापि भोद्विज । सर्वेभ्यो मन्त्रवर्येभ्यो रामस्यायं मनुर्वरः ॥७३॥
 त्रासे भये महापापे वाधायां सर्वदा नरैः । रामेति द्वयशुरो मन्त्रः कीर्त्यते जगतीतले ॥७४॥
 कृत्वा पापं महावोरं पश्चात्तापेन यो नरः । यकुद्रापेति मन्त्रं हि कीर्तयेन्द्रुदिमाप्तुयात् ॥७५॥
 रामेति मन्त्रराजोऽयं गमने भोजने तथा । शयने क्रीडने रात्रौ स्थिते कार्यातिरे नरैः ॥७६॥
 जपनीयः सर्वदैव संध्ययोरुभयोरपि । चतुर्वर्णः सदा जप्यश्चतुराश्रमवासिभिः ॥७७॥
 नास्य मन्त्रस्य कालोऽस्ति जपार्थं कालरूपिणः । तस्माज्ञैर्जपनीयः सर्वदा मनुरुत्तमः ॥७८॥
 राममन्त्रो मुखे यस्य देहो मुद्रांकितस्तथा । राममुद्रांकितं वस्त्रं यस्य तं नेत्रयेद्यमः ॥७९॥
 राममुद्रांकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमुच्चते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठ पवित्रं पापनाशकम् ॥८०॥
 समुद्रं वसनं देहे विभ्रत मानवोत्तमम् । कृतं पापं न लिप्येत पद्मपत्रमिवाभसा ॥८१॥
 समुद्रवस्त्रसयुक्तं दृश्वा भुवि नरोत्तमम् । यमदूताः पलायते सिंह दृश्वा मृगा यथा ॥८२॥

लोकको प्राप्त करके तुम सब उत्तम सुख भोगोगो । मेरे 'राम' इस तारक मन्त्रको तुम लोग सदा जपती रहना, इससे तुम्हें उत्तम गति प्राप्त होगी । इस तरह उन स्त्रियोंको वरदान देकर सामने बैठो हुई सीताजीसे कहा कि अब आप आनन्दसे अपने मन्दिरको जाइए । 'तथास्तु' कहकर वे भी उन स्त्रियोंके साथ मन्दिरकी ओर चली गयीं ॥ ६४-६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर पहलेकी तरह दुर्गाका रूप धारण कर बिया । उस समय वे स्त्रियाँ और भी विस्मित हुईं ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन स्त्रियोंने दुर्गाकी पूजा की और अपने-अपने वरोंको चली गयीं । राम भी अपने वन्धुओं, पुत्रों एवं सेना आदिको साथ लेकर अयोध्या चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुशने सीतासे वह वृत्तान्त पूछा तो साताने इस तरह सब कह सुनाया कि जैसे उन्होंने अपनी आत्मों सब कुछ देखा हो ॥ ६९ ॥ तबसे लक्ष्मण आदिने सम्बेदहरहित होकर रामको महेश्वर और सीताको महादुर्गा माना ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने भक्तोंकी हृत बुद्धिको दूर करनेके लिए ही रामने वनमें इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामचन्द्रजोके वरदानसे हो इत्यर्थी रामा कहलाती हैं । उन लोगोंके लिए भी 'राम' वह दो अक्षरोंका मन्त्र बतलाया गया है ॥ ७२ ॥ स्त्रियों और शूद्रोंके लिए इसके सिवाय और कोई मन्त्र नहीं है । सब मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वथोष्ठ है ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार त्रास, बाधा या भय आनेपर लोग इसी नामका उच्चारण करते हैं ॥ ७४ ॥ महाघोर पाप करके भा जो प्राणी पश्चात्तापपूर्वक 'राम' इस मन्त्रका कीर्तन करता है, उसकी शुद्धि हो जाती है ॥ ७५ ॥ लोगोंको चाहिए कि कहीं जाते समय, भोजन करते समय, तोते समय, खेलते-कूदते समय अवश्य कोई भी कार्य करते समय और सायंकालको, चाहे वे किसी वर्ण तथा किसी आश्रमके हों, राम इस मन्त्रका जप करते रहें । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र है ॥ ७६-७८ ॥ जिसके मुखमें राममन्त्र है, जिसका शरीर रामनामसे अंकित है और जिसकी देहपर राममुद्रा-से अंकित वस्त्र पड़ा रहता है, उसे यमराज नहीं देख पाते ॥ ७९ ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है । यह वस्त्र सबमें श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ उस समुद्र वसनघारों प्राणीको किसी प्रकारका पातक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तेपर जलका असर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यको

पुरैकदा तु सुनयः संमञ्चयोच् रघूतम् । राम रौम महावाहो कलावग्रे द्विजोत्तमाः ॥८३॥
 वयग्रचित्ता मंदधियो भविष्यत्यवनीतले । निजजाठरपूर्व्यर्थं द्वाराद्वारं भ्रमंति हि ॥८४॥
 कुतोऽवकाशः स्मरणे तव तेषां भविष्यति । अतस्तेषां हितार्थाय त्वां वाचामोऽव राघव ॥८५॥
 तेषां हितार्थं किञ्चिच्चमुपायं वक्तुमर्हसि । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघुनन्दनः ॥८६॥
 उवाच वाक्यं संतुष्टस्तान्मुनीन्प्रहसन्प्रभुः । सम्यगुक्तं मुनिश्चेष्टाः सृणुध्वं वचनं मम ॥८७॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं कलौ धार्य जनैः सुखम् । मम मुद्रांकितं वस्त्रं विभ्रंतं मानवोत्तमम् ॥८८॥
 न स्पशेत्प्रातकं किञ्चित्कृतं चापि नरेण हि । शङ्खचक्रगदापद्मनाममुद्रांकितं शुभम् ॥८९॥
 वस्त्रं धार्य नर्भवत्या मुद्रयैवांकितं तु वा । शङ्खादिपञ्चभिर्युक्तं सदा वस्त्रं मम प्रियम् ॥९०॥
 मन्मुद्रयांकितं वापि वस्त्रं मत्तोपदं स्मृतम् । स्नात्वा धार्य सदा तच्च जपकाले विशेषतः ॥९१॥
 मलमूत्रोत्सर्जने च शयने क्रीडने तथा । अशुचौ च क्षये वृद्धौ इडे राजसभासु च ॥९२॥
 पथि दुर्जनसंसर्गे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । तथा भोजनकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९३॥
 स्नानकाले व्रते तीर्थे पूजायां पितृर्घ्मणि । होमे दाने जपे कुच्छवांद्रायणव्रतादिषु ॥९४॥
 नित्यर्घ्मतु काम्येषु तथा नैमित्तिकेष्वपि । तथा तपःसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्य सदैव हि ॥९५॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं विभ्रंतं मनवोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रदास्यामि सत्यं सत्यं मुनीश्वराः ॥९६॥
 एवं श्रुत्या रामवाक्यं मुख्यस्ते मुद्रानिताः । रामं पृष्ठाऽऽव्रमं स्वं स्वं यागुस्ते मुदिताननाः ॥९७॥
 तस्मात्सदा गममुद्रावस्त्रं धार्य नर्भुवि । रामेनि द्वयक्षणे नक्त्रो तपनीयस्तु सर्वदा ॥९८॥
 राममुद्रा शुभा धार्या गोपीचन्दनसयुता । सदाऽन्नं मानवर्भवत्या रामतोयार्थमादरात् ॥९९॥

देखकर यमके दूत उसी तरह भागते हैं, जैसे सिहको देखकर मृग भाग जाते हैं ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले—हे महावाहो ! आगे चलकर कलियुगमें ब्राह्मण बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पेट पालनेके लिये व्यय रहते हुए द्वार-द्वार घूमेंगे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनको आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा । अतएव उनके कल्याणार्थं हम आपसे यह भिक्षा माँग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए । उन मुनियोंकी बात सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न छेड़ा है । अच्छा सुनिए ॥ ८५-८७ ॥ उन लोगोंको चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र धारण करे । जो मेरी मुद्रासे अंकित कपड़े पहने रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनको नहीं लगेगा । इसलिए वे सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे अङ्कित कपड़े पहनें । यह भी न हो सके तो बेवल मेरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहनें । शंख आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझे बड़े प्रिय हैं ॥ ८८-९० ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र मुझे प्रसन्न करते हैं । इसलिए लोगोंको चाहिए कि स्नान करके ऐसे हो कपड़े पहनें और जपके समय इसके लिए विशेष ध्यान रखें ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, विछोनेपर, खेलते समय, अपवित्रावस्थामें, किसी कुटम्बीके मरनेपर, बाजारमें, राजसभामें, रात्सेमें और दुर्जनोंके ससर्गमें इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहनें । भोजन करते समय और स्त्रीके साथ विहार करते समय भी इसे न पहनें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमें, तीर्थमें, पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करते समय, होम, दान, जप आदि करते समय, चान्द्रायण आदि व्रतमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरों ! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ९७ ॥ इसीलिये लोगोंको यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अंकित कपड़े पहनें और 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा

पूजा सदा राघवस्य कार्योऽत्र मानवैर्भुवि । सदा स्नानं रामतीर्थे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥
सदा रामायणं चेदं श्रवणीयं नरैर्भुवि । चित्तनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥
स्तोतव्यः कीर्तनीयश्च बन्दनीयोऽत्र राघवः । न किञ्चिदणुमात्रं हि विनारामं सदाऽचरेत् ॥१०२॥
हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥
पठन्ति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अरथे रोदनं तैस्तु कृतमेव न संशयः ॥१०४॥
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रेतुमिच्छामि हनुमत्कवचं शुभम् । तथैव रामकवचं वद कृत्वा कृपां मयि ॥१०६॥
श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
आदिकाव्ये रामेणाद्वैतप्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(हनुमत्कवच तथा रामकवच)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शंकरं लोकशंकरम् । पप्रच्छ गिरिजाकांतं कर्पूरध्वलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो । शोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेदध्युवम् ॥ २ ॥
संग्रामे संकटे धोरे भूतप्रेतादिके भये । दुःखदावाग्निसंतप्तचेतसां दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें। इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे ॥ ६६ ॥ संसारमें मनुष्योंको चाहिए कि सदा रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ १०० ॥ सर्वदा इस आनन्दरामाणका पाठ करते हुए जन्म और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहें। उन्हींकी स्तुति करें और उन्हींका गुणानुवाद गायें। कहनेका भाव यह है कि रामचन्द्रके भजनके मिवाय कोई और काम न करें ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ किया करें ॥ १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, वे मानो अरण्यरोदन करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अवश्य करना चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं। मेरे ऊपर कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा। तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजपाण्डेयविरचित‘ज्योत्स्ना’ भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार संसारका कल्पाण करनेवाले शिवजी वैठे हुए थे। उसी समय पार्वती-जीने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे लोकनाथ ! हे जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे व्याकुल हों, उनकी किस प्रकार रक्षा की जा सकती है ? जो लोग धोर संग्राम, महान् संकट, भूत प्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थं कौन उपाय किया जा सकता है ? ॥ १३ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया । विभीषणाय रामेण प्रेमणा दत्तं च यत्पुरा ॥ ४ ॥
 कवचं कपिनाथस्य वायुपुत्रस्य धीमतः । गुद्धं तत्ते प्रवक्ष्यामि विशेषाच्छृणु सुन्दरि ॥ ५ ॥
 उद्यदादित्यसंकाशमुदारभुजविक्रमम् । कंदर्पकोटिलावण्यं सर्वविद्याविशारदम् ॥ ६ ॥
 श्रीरामहरयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम् । अभयं वरदं दोभ्यं कलये मारुतात्मजम् ॥ ७ ॥
 हनुमानं जनीसुनुर्वायुपुत्रो महावलः । रामेष्टः फालगुनसखः पिंगाक्षोऽमितविक्रमः ॥ ८ ॥
 उदधिक्रमणश्वैव सीताशोकविनाशनः । लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ ९ ॥
 एवं द्वादशं नामानि कपींद्रस्य महात्मनः । स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ॥ १० ॥
 तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् । राजद्वारे गह्यरे च भयं नास्ति कदाचन ॥ ११ ॥

उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः ।

आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्राजलिरांजनेयम् ॥ १२ ॥

अँनमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटय परवलान् क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय अँहां हौं फट् । घे घे घे अँश्चिवसिद्धं अँहां अँहीं अँहूं अँहैं अँहौं अँहः स्वाहा । परकृतयंत्रमन्त्रपराहकारभूतप्रेतपिशाचदृष्टिसवविधन-दुर्जनचेष्टाकुविद्यासर्वोग्रभयानि निवारय निवारय बन्ध बन्ध लुंठ लुंठ विलुच किलि किलि सर्वकुयन्त्राणि दुष्टवाचं अँफट् स्वाहा । अँत्रस्य श्रीहनुमत्कवचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः । श्रीहनुमान् परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । मारुतात्मज इति बीजम् । अंजनीसुनुरिते शक्तिः । लक्ष्मणप्राणदातेति कीलकम् । रामदूतायेत्यस्त्रम् । हनुमान् देवता इति कवचम् । पिंगाक्षोऽमितविक्रम इति मन्त्रः । श्रीरामचन्द्रप्रेरणया रामचन्द्रप्रीत्यर्थं मम सकलकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । अँहां अजनीसुताय अंगुष्ठाभ्यां नमः । अँहीं रुद्रमूर्तये तजनीभ्यां नमः । अँहूं रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः । अँहैं वायुपुत्राय अनामिकाभ्यां नमः । अँहां प्रग्निगर्भाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । अँहः ब्रह्मात्मनिवारणाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाद्यंगन्यासं कृत्वा ।

अथ छ्यात्म-

छ्यायेद्वालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापिहं

श्रीमहादेवजीने कहा—हे देवि ! मैं संसारको कल्पाणकामनासे तुम्हें वह हनुमत्कवच बतलाता हूँ, जिसे रामने विभीषणको दिया था । यद्यपि वह एक गुप्त वस्तु है, फिर भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ । हे सुन्दरी ! सुनो ॥ ५ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान प्रकाशवान्, लम्बी भुजाओं और अनुपम पराक्रमवाले, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, सब विद्याओंमें विशारद, श्रीरामजीके हृदको आनन्द देनेवाले, भक्तोंके लिए कल्पवृक्षके समान, भयरहित एवं वरदाता हनुमानजीकी मैं हाथ जोड़कर बन्धना करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥ हनुमान्, अञ्जनीपुत्र, वायुसूनु, महावलवान्, रामके प्रिय, अर्जुनके मित्र, पीली आँखोंवाले, अनन्तबलशाली, समुद्रको लाँघनेवाले, साताका शोक नष्ट करनेवाले, लक्ष्मणक प्राणदाता, रावणका अभिमान दूर करनेवाले, इन बारह नामोंको जो मनुष्य सोते या जागते समय अयदा कहीं जाते समय पढ़ता है, उसे कहीं किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता और संग्राममें उसकी विजय होती है । राजद्वार-कन्दरा आदि किसी भी स्थानमें उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता । जिसने समुद्रकी जलराशिको खेल-खेलमें लाँघकर सीताको शोकरूपिणी आगको लेकर उसीसे सारी लंका जलाकर राख कर डाली, ऐसे हनुमानजीको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ ८-१२ ॥ इस प्रकार प्रणाम करनेके अनन्तर 'अँनमो हनुमते सर्वग्रहान्' यहसे लेकर एवं 'हृदयाद्यंगन्यासं कृत्वा' तकके मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ विनियोग और अंगन्यास आदि करे । प्रातः-

देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा ।

सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं

संरक्षारुणलोचनं पवनजं पीतांवरालंकृतम् ॥ १ ॥

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरामनस्थं

मौजीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखं शोभितं कुण्डलांकम् ।

भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं

इयायेदेवंविधेमं प्लवगकुलपतिं गोष्ठदीभूदवार्धिम् ॥ २ ॥

वज्रांगं पिंगकेशाल्यं स्वर्णकुण्डलमंडितम् । निगृहमूषपसंगम्य पारावारपराक्रमम् ॥ ३ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकांति द्विशुजं च कृतांजलिम् । कुण्डलद्वयसंशोभि मुखांभोजं हरिं मजे ॥ ४ ॥

सव्यहस्ते गदायुक्तं चामहस्ते कमण्डलम् । उद्यदक्षिणदोदण्डं हनुमंतं विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

अथ मन्त्रः

ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यशोऽलंकृताय अंजनीगर्भेसम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दाय
कपिसैन्यप्रकाशनपर्वतोत्पाटनाय सुग्रीवसाधारणपरोच्चाटनकुमारब्रह्मचर्यगंभीरशब्दोदय हीं सर्वदुष्ट-
ग्रहनिवारणाय स्वाहा । ॐ नमो हनुमते एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां
विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मत्यान्मारय मारय शोपय
प्रज्वल ग्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरमनाय भूतज्वरप्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरब्रह्मराक्षसपिशाच-
छेदनक्रियाविष्णुज्वरमहेशज्वरान् छिंधि छिंधि भिंधि भिंधि अक्षिशूले शिरोऽभ्यन्तरे ह्यक्षिशूले गुल्मशूले
पित्तशूले ब्रह्मराक्षसकुलश्वलनागकुलविषनिविष झटिति झटिति । ॐ हीं फट् घे घे स्वाहा । ॐ नमो
हनुमते पवनपुत्र वैश्वानरमुखपापदृष्टिहनुमतेको आज्ञाफुरे स्वाहा । स्वगृहे द्वारे पट्टके
तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगभय राजकुलभयां नास्ति तस्योच्चारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति ।
ॐ हाँ हाँ हूँ फट् घे घे स्वाहा ।

कालके सूर्यं सरीखा जिनका तेजस्वी स्वरूप है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ हैं और जो देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाते हैं । जिनका प्रशस्त यश तीनों लोकोंमें फैला हुआ है । जो अपनी जसाधारण शोभासे देदीप्यमान हो रहे हैं । सुग्रीव आदि बड़े-बड़े वानर जिनके साथ हैं । जो सुव्यक्त तत्त्वके प्रेमी हैं । जिनकी आत्मे अतिशय लाल-लाल हैं । पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उन हनुमान-जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय होते हुए करोड़ों सूर्यके समान जिनका प्रकाश है । जो सुन्दर बीरामनसे बैठे हुए हैं । जिनके शरीरमें मौजी-यज्ञोपवीत आदि पढ़े हैं और उनकी किरणोंसे जो और भी शोभासम्पन्न दीख रहे हैं । जिनके कानोंमें पड़े हुए कुण्डल अपनी मनोहर भोभा दिखा रहे हैं । भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, मुनिजनोंसे बन्दित, वेदके मत्रोंकी ऋचा सुनकर प्रसन्न होनेवाले, वानरकुलके अग्रणी और समुद्रको नीके खुर भर जलवाला बना देनेवाले हनुमानजीका ध्यान करना चाहिए ॥ २ ॥ वज्रके समान कठोर जिनका शरीर है, मस्तकपर पीला केश सुशोभित हो रहा है और कानोंमें सुवर्णके कुण्डल पड़े हैं, ऐसे हनुमानजीका मैं अतिशय बाग्रहके साथ ध्यान करता हूँ । वयोंकि उनके पराक्रमरूपी समुद्रकी कोई आहू नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके समान अथवा सुवर्ण सरीखी जिनकी कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ जोड़े खड़े हैं, दोनों कानोंमें पड़े दो सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले हनुमानजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी दाहिनी भुजामें गदा है, बायें हाथमें कमण्डलु हैं और जिनकी दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये ॥ ५ ॥ अथ मन्त्रः—“ॐ नमो हनुमते” यहाँसे लेकर “हाँ, हाँ, हूँ, फट् धे धे स्वाहा” यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः । पातु प्रतीच्या रक्षोदनः पातु सागरपारगः ॥ १ ॥

उदीच्यामूर्ध्वतः पातु केदरीप्रियनन्दनः । अधस्तु विष्णुभक्तस्तु पातु मध्यं च पावनिः ॥ २ ॥

लंकाविदाहकः पातु सर्वापद्मयो निरन्तरम् । सुग्रीवभचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः ॥ ३ ॥

भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम् । नेत्रे छायापदारी च पातु नः प्लगोद्धरः ॥ ४ ॥

कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामकिंकरः । नासाग्रमंजनीसूनुः पातु वक्त्रं हराश्वरः ॥

वाचं रुद्रप्रियः पातु जिह्वा पिंगललोचनः ॥ ५ ॥

पातु देवः फाल्गुनेष्टश्चिवुकं दैत्यदर्ढाः । पातु कण्ठं च दैत्यारिः स्कन्धो पातु सुराचितः ॥ ६ ॥

भुजौ पातु महातेजाः कर्णे च चरणायुधः । नखानखायुधः पातु कुङ्गो पातु कणीश्वर ॥ ७ ॥

वक्षो मुद्रापदारी च पातु पाश्चेभुजायुधः । लंकाभंजनः पातु पृष्ठश्च निरतरम् ॥ ८ ॥

नाभिं च रामदूतस्तु वर्णं वान्वनिलात्मजः । गुद्य पातु महाप्राज्ञो लिंगं पातु श्रिप्रियः ॥ ९ ॥

ऊरु च जानुनी पातु लंकाप्रापादभन्नः । जघे पातु कपिश्चेष्टो गुच्छो पातु लहवलः ॥

अचलोद्धारकः पातु पादो भास्करसञ्जिभः ॥ १० ॥

अङ्गान्यमितसत्त्वाद्यः पातु पादांगुलीस्तथा । सर्वांगानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवित् ॥ ११ ॥

हनुमत्कवचं यस्तु पठेद्विद्वान्विचक्षणः । स एव पुरुषेष्टो भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥ १२ ॥

त्रिकालमेककालं वा पठेन्मासत्रयं चरः । सर्वानि रिपून् श्वणाजित्वा स पुरान् श्रियमाप्नुयात् ॥

मध्यरात्रे जले स्थित्वा सम्भारं पठेत्वदि । क्षयापस्मार्कुष्टादितापत्रयनिवारणम् ॥ १४ ॥

अब हनुमत्कवच प्रारम्भ होता है । श्रीरामचन्द्रजी वोले-हनुमान् पूर्वं दिग्गाको रक्षा करें, पवनात्मज दक्षिण दिशाको रक्षा करें और रक्षोदन (राक्षसोंको मारनेवाले) हनुमानजी पश्चिम दिशाकी रक्षा करें ॥ १ ॥ समुद्रको पार करनेवाले हनुमानजी उत्तर दिशाकी रक्षा करें, वेसरीके प्रिय पुत्र ऊरको रक्षा करें, नीचेकी ओर विष्णुभक्त रक्षा करें, मध्यभागकी पावनि (पवनपुत्र) रक्षा करें ॥ २ ॥ सब प्रकारकी आपत्तियोंसे लङ्घाको जलानेवाले रक्षा करें, सुग्रीवके मन्त्रों मस्तककी रक्षा करें, वायुनन्दन ललाटकी रक्षा करें, भौंटोंके मध्यभागको महावीरजी रक्षा करें, छायाका अपहरण करनेवाले हनुमानजी मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ ४ ॥ कपोलोंकी लङ्घगेश्वर रक्षा करें, श्रीरामचन्द्रजीके सेवक कानको मूलभागकी रक्षा करें, नासिकाके अग्रभागका अज्जनीसूनु रक्षा करें, हृषीश्वर मुखकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ रुद्रप्रिय वाक्यकी रक्षा करें, दैत्योंका दूर दूर करनेवाले कण्ठकी रक्षा करें, चरणसे आयुधका काम लेनेवाले हाथोंकी रक्षा करें, नखके आयुध धारण करनेवाले हनुमान् नखोंकी रक्षा करें, कपियोंके ईश्वर कुक्षिकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ ७ ॥ मुद्राका अपद्वरण करनेवाले दक्षस्थलकी रक्षा करें, भुजासे ही शस्त्रका काम लेनेवाले पार्श्वभागकी रक्षा करें, लंकाका विनाश करनेवाले मेरे पृथग्भागकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ रामके दूत नाभिभागकी रक्षा करें, वायुके पुत्र कटिभागकी रक्षा करें, महान् प्रजाशाली गुह्यभागकी रक्षा करें शिवके प्रिय लिंगकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ लंकाके प्रासादोंका नाश करनेवाले घुटनों तथा जानुभागकी रक्षा करें, कपिश्चेष्ट जंघेकी रक्षा करें, महावलतान् गुलकभागकी रक्षा करें ॥ १० ॥ पर्वतोंको उखाइनेवाले मेरे दोनों पैरोंकी रक्षा करें, सूर्यके समान कान्तिशाली हनुमानजी मेरे समस्त अंगोंकी रक्षा करें, अमित बलवाले हनुमानजी मेरे पैरकी औंगुलियोंकी रक्षा करें, महाशूरवीर मेरे सब अङ्गोंकी रक्षा करें, आत्माको जानेवाले हनुमानजी मेरे शरीरकी समस्त रोगोंसे रक्षा करें ॥ ११ ॥ जो भी विवरण विद्वान् इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वही सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ होता है और सारी भुक्ति-मुक्ति उसीको मिलती है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य तीर्ती महीने तक तीनों काल अथवा एक ही कालमें इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वह सब ग्रन्थोंको पराजित करके अनुल लक्ष्मीका भंडार प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यदि आधी रातके समय जलमें खड़ा होकर सात बार इस कवचका पाठ करे तो क्षय, अपस्मार, कुष्ट एवं दैहिक, दैविक और भौतिक ये तीनों प्रकारके ताप दूर हो जाते हैं ॥ १४ ॥

अश्वत्थमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति संग्रामे विजयं तथा ॥१५॥
बुद्धिर्बलं यशो वैर्यं निर्भयत्वमरोगताम् । सुदाढ्यै वाकस्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाङ्गवेत् ॥१६॥
मारणं वैरिणां सदाः जरणं सर्वसम्पदाम् । शोकस्य हरणे दक्षं वंदे तं रणदारुणम् ॥१७॥
लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे धारयेभित्यं स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥
स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोति निगडात् तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

भान्विदोश्वरणार विद्युगलं कौपीनभौंजीधरं कांचिश्रेणिधरं दुक्लवसनं यज्ञोपवीताजिनम् ।
हस्ताभ्यां धृतपुस्तकं च विलमद्वारावर्लिं कुण्डलं यशालं विशिखं प्रसन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं भजे ॥२०॥
यो वारांनिधिमल्पपल्वलभिवोललंघ्य प्रतापान्वितो वैदेहीघनशोकतापहरणो वैकृण्ठभक्तप्रियः ।
अक्षाद्यजिंतराक्षसेश्वरमहादपिहारी रणे सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्समीरात्मजः ॥२१॥
वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाकांतगण्डं
दंभोलिस्तंभसारं प्रहरणसुवशीभूतरक्षोधिनाथम् ।
उद्यल्लांगूलसमप्रचलचलधरं भीममूर्ति कर्पाद्र
द्यायेत्तं रामचन्द्रं भ्रमरहटकरं सत्वसारं प्रसन्नम् ॥२२॥
वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलैः शोभनीयं
सर्वापीडयादिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं वा ।
भक्तानामिष्टकारं विदधति च सदा सुप्रसन्नं द्वराशं
त्रैलोक्यत्रातुकामं सकलभूवि गतं रामदृतं नमामि ॥२३॥

जो मनुष्य रविवारको पोपलके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे बचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है ॥ १५ ॥ बुद्धि, बल, यश, वैर्य, निर्भयत्व, अरोगिता, दृढता और वाक्यचापल्य, ये सब हनुमानजीके ध्यानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरिणोंको मारनेवाले और सब संपत्तियोंके निषान है, जो शोकका अपहरण करनेमें अतिशय कुशल हैं, मैं उन रणदारुण हनुमानजीको प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजन करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है और जो अपनी भुजाओंमें हमेशा बाँधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्राणी किसी तरह बन्धनमें पड़ गया हो, वह आहूणों द्वारा इस कवचका जप कराये तो तत्क्षण बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ शिवजी बोले-सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभासम्पन्न जिसके चरणकमल हैं, जो कौपीन और मौजी धारण किये हैं, जो कांची श्रेणियों को पहने हैं, वस्त्र धारण किये हैं, यज्ञोपवीत तथा मृगचर्म अलग सुशोभित रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिये हैं और चमकता हुआ हार जिनके वक्षस्वलपर सुशोभित हो रहा है । ऐसे प्रसन्न मुखवाले वायुपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ । जो समुद्रको एक साधारण तलैया समझकर लाँघ गये, जिन्होंने सीताके महाशोक और तापको हर लिया, विष्णु भगवान्सुको भक्तिके प्रेमी, संग्राममें अक्षयकुमार आदि उहृद राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले वानर-पुंगव तथा वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें । जिनका वज्रके समान शरीर है, पीली-यीली आँखें हैं, सुवर्णमय कुण्डलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, वज्ररत्नमें समान जिनका मजबूत शरीर है, रावणको मारनेके लिये जिन्हें तुरन्त शस्त्र मिल गया था, उन पूर्ण ऊपर उठाये, सात पर्वतोंको लादे और भयङ्कर रूपधारी हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये । साथ ही उन श्रीरामचन्द्रजीका भी ध्यान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है, सुवर्णके कुण्डल जिनके कानोंमें पड़े हैं, जो सब बाधूषणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हथेलीमें पूर्णकुम्भको धारण कर रक्षा है, जो भक्तोंकी कामना शूर्ण करते हैं, जो सर्वांग प्रसन्न रहते हैं और तीनों लोकोंकी रक्षा करनेकी कामना रखते हैं, समस्त भुवनमें

वामे करे वैरिभिदं वहंतं शैलं परं शृङ्खलहारकंठम् ।
 दध्वानमाच्छाद्य सुपर्णवर्णं भजे ज्वलत्कुण्डलमांजनेयम् ॥२४॥
 पद्मरागमणिकुण्डलत्विषा पाटलीकृतकपोलमंडलम् ।
 दिव्यदेहकदलीवनांतरे भावयामि पवमाननंदनम् ॥२५॥
 यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम् ।
 वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसांतकम् । २६॥
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेंद्रियं वुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥२७॥

विवादे दिव्यकाले च द्यूते राजकुले रणे । दशवारं पटेद्रात्रौ मिताहारो जितेंद्रियः ॥२८॥
 विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भूते प्रेते महादुर्गेऽरण्ये सागरसंप्लवे ॥२९॥
 सिंहव्याघ्रभये चोग्रे शरश्वास्त्रपातने । शृङ्खलावंधने चैव कारागृहनियंत्रणे ॥३०॥
 कोपे स्तम्भे वह्निचक्रे क्षेत्रे घोरे सुदारुणे । शोके महारणे चैव ब्रह्मग्रहनिवारणम् ॥३१॥
 सर्वदा तु पटेन्नित्यं जयमाप्नोति निश्चितम् । भूजें वा वसने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके ॥३२॥
 त्रिगंधिना वा मष्या वा विलिख्य धारयेन्नरः । पंचसप्तत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥
 करे कटथां वाहुमूले कंठे शिरसि धारितम् । सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥
 अपराजित नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामराजित । प्रस्थानं च करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥३५॥
 इत्युक्त्वा यो व्रजेद्ग्रामं देशं तीर्थांतरं रणम् । आगमिष्यति श्रीघ्रं स क्षेमरूपो गृहं पुनः ॥३६॥
 इति वदति विशेषाद्राघवे राक्षसेन्द्रः प्रमुदितवरचित्तो रावणस्थानुजो हि ।
 रघुवरपदपद्मं वंदयामास भूयः कुलसहितकृतार्थः शर्मदं मन्यमानः ॥३७॥

भुवनमें विराजमान उन रामदूत हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो वाँचे हाथमें शत्रुओंको मारने-वाला पर्वत लिये हैं, जिनके कण्ठमें शृङ्खलाका हार और देवीष्यमान सूवर्णका कुण्डल कानोंमें पड़ा हुआ है, मैं ऐसे हनुमानजीको प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़े हुए पुखराज मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल पाटल वर्णका हो गया है, केलेके बनमें खड़े और दिव्य रूप धारण किये हनुमानजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ २५ ॥ जहाँ-जहाँ रामको कथा होती है, वहाँ माथा झुका तथा हाथ जोड़कर जो खड़े रहते हैं और आँसूसे जिनके नेत्र भरे रहते हैं, राक्षसोंका अन्त करनेवाले उन हनुमानजीको प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान जिनका बेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया है और जो वुद्धिमानोंमें थ्रैत है, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरयूथके मुखिया श्रीरामदूतको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे वहस करते समय, जुआ खेलते समय, शपथ खाते समय, राजकुलमें, संग्राममें और रात्रिमें मिताहार होकर जितेन्द्रियतापूर्वक दस बार जो इस कवचका पाठ करता है, वह सब मनुष्यों और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है । भूत, प्रेत, महादुर्ग, अरण्य और सागरमें वह जानेपर, सिंहव्याघ्र आदिका भय आ जानेपर, बाण तथा अस्त्र-शस्त्रके गिरनेपर, जंजीरोंसे बेंव जानेपर, कारागृहमें बन्द हो जानेपर, किसीके कुपित होनेपर, अग्निकी लपटमें पड़ जानेपर किसी दारुण क्षेत्रमें, शोकके समय, महासंग्राममें और ब्रह्मराक्षसका निवारण करते समय इन सब समयोंमें इसका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है । भूर्जपत्रपर, लाल कपड़ेपर, रेशमी वस्त्रपर, तालपत्रपर ॥ २८-३२ ॥ त्रिगंध अथवा स्याहीसे लिख एवं पञ्च, सप्त तथा त्रिलोहसे बनी ताबीजमें रखकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या मस्तककपर जो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं । यह रामका कहा बचन कभी झूठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं होनेवाले और रामसे पूजित है हनुमानजी । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । मैं जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं शर्मप्रदं सुरमुनींद्रितुतं कर्पांद्रम् ।

कृष्णत्वचं कनकपिंगजटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥

य इदं प्रातरुत्थाय पठेत कवचं सदा । आयुरारोग्यसंतानैस्तस्य स्तवयः स्तवो भवेत् ॥३९॥

एवं गिरींद्रजे श्रीमद्भुमत्कवचं शुभम् । त्वया पृष्ठं मया प्रीत्या विस्तराद्विनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुखाच्छ्रूत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनुमतः सदा भक्त्या पपाठ तन्मनाः सदा ॥४१॥

एवं शिष्य त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्ठं तथा मया । हनुमत्कवचं चेद् तवाग्रे विनिवेदितम् ॥४२॥

इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नरैर्मक्त्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥

हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं विना । ये पठन्ति नराश्वात्र पठनं तदृश्यां भवेत् ॥४४॥

तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य वायुपुत्रस्य सङ्घक्तेश विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

— — —
अथ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुर्यं पवित्रं च सर्ववांछितपूरकम् ॥४६॥

सुतीक्ष्णस्वेकदाऽगस्ति प्रोवाच रहसि स्थितम् ।

भगवन् परमानन्द तत्त्वज्ञ करुणानिधे । गुरो त्वं मां वदस्वाद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥

आजानुवाहुमर्विददलायताक्षमाजन्मशुद्धरसहासमुखप्रसादम् ।

इयामं गृहीतशरचापमुदाररूपं रामं सराममभिराममनुस्मरामि ॥४८॥

शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम् । श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रहा हूँ, वह काम पूरा हो जाय ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर जो किसी दूसरे गाँवको जाता है, वह कुशलपूर्वक अपना काम पूरा करके शीघ्र लौटता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए । उन्होंने रामके चरणोंकी बन्दना की और सपरिवार अपनेको धन्य माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी बन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान पीली जिनकी जटा है, ऐसे मुनियोंके अग्रणी श्रीव्यासजीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सबेरे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उसे आयु-आरोग्य और सन्तान आदि सब वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! जैसे तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! इस तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीने उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमको हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके ही भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये । अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये विना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका वह पाठ व्यर्थ हो जायगा ॥ ४४ ॥ इस लिए सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका पाठ किया करें । रामके भक्त तो इस बातपर विशेष ध्यान रखें ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमको रामकवच बतलाता हूँ । यह भी परम गोप्य, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला कवच है ॥ ४६ ॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु अगस्त्यको एकान्तमें देखकर कहा—हे भगवन् ! हे परमानन्ददाता ! हे तत्त्वज्ञ ! हे करुणानिधे । आज हमें श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र मुनाइए ॥ ४७ ॥ अगस्त्यने कहा कि जानुपर्यन्त जिनकी बाहु हैं, कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रखा है, जिनका उदार रूप है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४८ ॥ हे मुनिसत्तम्

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसत्त्वैकलक्षणः । वहिरंतः सुतीक्ष्णात्र रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥
तत्त्वविद्यार्थिनो नित्यं रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्मामिधीयते ॥५१॥
जय रामेति यन्नाम कीर्तयन्नमिवण्येत् । मर्वपापैविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥५२॥

श्रीरामेति परं मत्रं तदेव परमं पदम् ।

तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम् । श्रीरामेति बदन् ब्रह्ममावमाप्नोत्यसंशयम् ॥५३॥
अस्य श्रीरामकवचस्य अगस्त्यऋषिः अनुष्टुप्छन्दः सीतालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता
श्रीरामचन्द्रप्रसादसिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्ठफलप्रदम् । नीलजीमृतसंकाशं विद्युद्वर्णम्बरावृतम् ॥५४॥
कोमलांगं विशालाक्षं युवानमतिसुन्दरम् । सीतासौमित्रिसहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥
सासितूणधनुर्वाणपाणिं दानवमर्दनम् । सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा ॥५६॥
ध्यात्वा रघुपति युद्धे कालानलसमप्रभम् । चीरकृष्णाजिनधरं भस्मोद्गुलितविग्रहम् ॥५७॥
आकर्णाकृष्टसशरकोदडमुजमडितम् । रणे रिपून् रावणादीर्शीक्षणमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥
सहरंतं महावीरमुग्रमेंद्ररथस्थितम् । लक्ष्मणाद्यर्महावीरवृतं हनुमदादिभिः ॥५९॥

सुग्रीवाद्यर्महावीरैः शैलवृक्षकरोद्यतैः । वेगात्करालहुंकारैर्भुग्मुकारमहारवैः ॥६०॥
नदद्विः परिवादद्विः समरे रावण प्रति । श्रीराम शत्रुसंघान्मे हन मर्दय खादय ॥६१॥
भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामाशु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेद्रामकवचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥
सुतीक्ष्ण वज्रकवचं शृणु वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे मूर्धिं पूर्वं च रघुवंशजः ॥६३॥
दक्षिणे मे रघुवरः पश्चिमे पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपतिर्भालं दशरथात्मजः ॥६४॥

सुतीक्ष्ण ! सुनिए, मैं आज सब कामनाओंको पूर्णकरनेवाला रामकवच बतलाऊँगा ॥४९॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें वे अहैत, आनन्दस्वरूप, शुद्ध और सत्त्वगुणभय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥५०॥ परमात्माके तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखनेवाले लोग जिसके चित्सुखमें आनन्द लूटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥५१॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मत्रका कीर्तन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परम पदको प्राप्त होता है ॥५२॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठमन्त्र है, यह परमपद है, यह मृत्यु-भय आदिको दूर कर देता है और श्रीराम कहता हुआ प्राणी परब्रह्मको प्राप्त होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । विनियोगके बाद सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ध्यान बतला रहा है । जिनका नील मेघके समान श्याम शरीर है, जो विजलीके समान चमकते हुए पीले वस्त्रको बारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय सुन्दर और युवा हैं, जिनके साथ सीता और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटा-मुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, घनुष-वाण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं । मनुष्यको चाहिए कि राजभय, चोरभय और संग्रामका भय आ जाय तो कालानलके समान कुद्ध रामचन्द्रजीका ध्यान करे । जो पीताम्बर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और धूलिसे जिनका शरीर धूसरित हो रहा है ॥५३-५७॥ कानतक जिन्होंने घनुषकी ढोरी खींच रखकी है, संग्रामभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तीक्ष्ण बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥५८॥ इन्द्रके रथपर बैठे जो महावीर शत्रुका संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमानजी आदि वीरोंसे घिरे हुए हैं ॥५९॥ जिनके साथ सुर्योऽव आदि योद्धा हाथमें पाषाणखण्ड और बड़े-बड़े वृक्ष लिये शत्रुओंका संहार कर रहे हैं । ऐसे हे राम ! इसको मारो—इसको स्त्रा-जाओ और भूत, प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो । इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकवचका जप करे ॥६०॥ ६१॥ ६२॥ अगस्त्यजी कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अतिशय उत्तम वज्रकवच कहता हूँ । श्रीराम मेरे मस्तक और पूर्व दिशोंकी रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा

अभुवोद्विदलश्यामस्तयोर्भव्ये जनार्दनः । श्रोत्रं मे पातु राजेन्द्रो दशौ राजीवलोचनः ॥६६॥
 ग्राणं मे मातु राजविंगेंडं मे जानकीपतिः । कर्णमूले खरच्चंसी भालं मे रघुवल्लभः ॥६७॥
 जिह्वां मे वाक्पतिः पातु दंतवच्छ्यौ रघूत्तमः । ओष्ठौ श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६८॥
 कंठं पातु जगद्वन्द्यः स्कंधौ मे रावणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६९॥
 सर्वाण्यं गुलिपर्वाणि हस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥७०॥
 स्तनौ सीतापतिः पातु पाश्वौ मे जगदीश्वरः । मध्यं मे पातु लक्ष्मीशो नाभिः मे रघुनायकः ॥७१॥
 कौसल्येयः कटिं पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हृषीकेशः सविथनी सत्यविक्रमः ॥७२॥
 उरु शार्ङ्गधरः पातु जानुनी हनुमत्प्रियः । जंघे पातु जगद्वच्छापी पादौ मे ताटिकांतकः ॥७३॥
 सर्वांगं पातु मे विष्णुः सर्वसंधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणादीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७४॥
 पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विपदादीनि भूतानि मत्संवंधीनि यानि च ॥७५॥
 जामदग्न्यमहादर्पदलनः पात तानि मे । सौमित्रिपूर्वजः पातु वागादीन्द्रियाणि च ॥७६॥
 रोमांकुराण्यशेषाणि पातु सुग्रीवराज्यदः । वाड्मनो बुद्ध्यहंकारै ज्ञानाहानकृतानि च ॥७७॥
 जन्मान्तरे कृतानीह पापानि विविधानि च । तानि सर्वाणि दग्ध्वाशु हरकोदंडखंडनः ॥७८॥
 पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गवाणधरः सदा । इति श्रीरामचंद्रस्य कवच वज्रसंमितम् ॥७९॥
 गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम । यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः ॥८०॥
 स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकयुक्तो वा गोदनो वा अ॒णहा तथा ॥८१॥
 श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्विमाप्त्यात् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र सशयः ॥८२॥

पश्चिमकी पावन (पवनपुत्र) रक्षा करें । उत्तरकी ओर रघुपति और ललाटकी दशरथात्मज रक्षा करें । दुवादिलके समान श्याम जनार्दन भींहोंके मध्यभागकी रक्षा करें, कानोंकी राजेन्द्र, आँखोंकी राजीवलोचन ॥ ६३-६५ ॥
 नाककी राजर्षि, गंडस्थलकी जानकीपति, कर्णमूलकी खरच्चंसी और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥
 उसी प्रकार जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवल्लीकी रघूत्तम, दोनों होठों और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान् करें ॥ ६७ ॥ कठकी जगद्वन्द्य, दोनों कन्धों रावणान्तक और मेरी दोनों भुजाओंको रक्षा वालिको मारने-वाले घनुवर्णधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरी सब उंगलियों और दोनों हाथोंकी रक्षा राक्षसान्तक, वक्षस्थलकी काकुत्स्थ और हरिभगवान् मेरे हृदयकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ दोनों स्तनोंकी सीतापति, पाश्वंभागकी जगदीश्वर, मध्यभागकी लक्ष्मीपति और नाभिकी श्रीरघुनायजी रक्षा करें ॥ ७० ॥ कमरकी वौसल्येय, पीठकी दुर्गतिनाशन, गुप्तभागकी हृषीकेश और सत्यविक्रम भगवान् हृडियोंकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ शार्ङ्गधर भगवान् दोनों घुटनोंकी, हनुमान्जीके प्रिय दोनों जानुभागकी, जगद्वच्छापी दोनों जांघोंकी और ताङुकाका नाश करनेवाले भगवान् मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे सब अङ्गोंकी, अनामय मेरे शरीरकी, सञ्चियोंकी और मधु-सूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा करें । मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो पैरके जन्तु (मनुष्य) हों, उनकी रक्षा महान् दर्पंको नष्ट करनेवाले परशुराम भगवान् करें । सौमित्रिपूर्वज (राम) मेरी वाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सुग्रीवको राज्य देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी मेरे सारे रोमकूपोंकी रक्षा करें । मन, बुद्धि, अहङ्कार, ज्ञान एवं अज्ञानसे किये हुए इस जन्म तथा जन्मान्तरके पातकोंको जलाकर भस्म करते हुए शिवजीका घनुष तोड़नेवाले घनुवर्णधारी श्रीराम मेरी सब और रक्षा करें । हे मुनिसत्तम सुतीक्ष्ण । यह वज्रसहस्र रामकवच गूढ़से भी गूढ़ है । जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या दूसरोंको सुनाता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम धामकी प्राप्ति करता है । वह चाहे महापातकी, गोधाती या अ॒णहत्याकारी ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका पाठ करनेसे प्राणी शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है

मोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्ठं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥
श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पृष्ठं श्रीरामकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिवेदितम् ॥८३॥
वायुपुत्रस्य रामस्य कवचेऽत्र नरैर्भुवि । विना सीताकवचेन पठनीयं न वै कदा ॥८४॥
आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमतः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥
ततः श्रीरामकवचं पठनीयं महत्तमम् । एवमेव हि मंत्राश्च जपनीयाख्यः क्रमात् ॥८६॥
विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेह्याः स्तोत्रादीनि वदस्व तत् ॥८७॥
सीतायास्तोषदं भूम्यां तत्सर्वं विस्तरेण च ।
श्रीमहादेव उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदासोऽत्रवीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(सीताकवच आदिका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कवचं शुभम् । पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥
एकदा कुंभजन्मान सुतीक्ष्णः प्राह वै मुनिः । रहः मिथितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् ॥ २ ॥
सुतीक्ष्ण उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामे सीतायाः प्रीतिदानि हि ।
यानि स्तोत्राणि कमाणि तानि त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अगस्तिरुचाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । आदौ वक्ष्याम्यहरम्यं सीतायाः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैंने श्रीरामकवच तुम्हें सुना दिया ॥ ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, सो मैंन कह सुनाया ॥ ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके विना न करना चाहिए ॥ ८४ ॥ पहले बुद्धमान् वायुपुत्रके कवचका पाठ करके मुख बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ ८५ ॥ उसके बाद सबैश्रुते श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे ॥ ८६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं सीताकवच तथा सीताके अन्यान्य स्तोत्रोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए ॥ ८७ ॥ जिससे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतियाँ विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमहादेवजीने कहा कि इस प्रकार विष्णुदास-की बात सुनकर रामदास बोले ॥ ८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे दै० शामतेज-पाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच बतलाता हूँ, जिसे अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे, सतीक्षणने जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरो ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ । आप कृपा करते

या सीताऽवनिसभवाऽथ मिथिलाप लेन संबद्धिता पद्माक्षनृपते: सुता नलगता या मातुलुङ्गोद्धवा ।
या रत्ने लयमगता जलनिधी या वद्वार गतऽल या ना मृगलोचना शशिमुखी मां पातु रामप्रिया॥६॥

अस्य श्रीसीताकवचस्तोत्रमत्रस्य अगस्त्यक्षमिः । श्रीसीता देवता । अनुष्टुप्छन्दः । रामेति
वीजम् । जनकजेति शक्तिः । अवनिजेति कीलकम् । पद्माक्षसुतेत्यखम् । मातुलुङ्गीति कवचम् ।
मूलकासुरधातिनीति मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रत्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।
अथ अंगुलिन्यासः ॥ ॐ हां सीतायै अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ हीं रामायै तत्त्वनीभ्यां नमः । ॐ हं
जनकजायै मध्यमाभ्यां नमः । ॐ हे अवनिजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ हां पद्माक्षसुतायै
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ हः मातुलुङ्गयै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयाद्यगन्यासः कार्यः ।
अथ ध्यानम्

सीतां कमलपत्राक्षीं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम् । द्विभुजां सुकुमारांगीं पीतकौशेयवासिनीम् ॥ ६ ॥
सिंहासने रामचन्द्रवामयागस्तिवां वराम् । नानालङ्घरसंयुक्तां कुण्डलद्वयधारिणीम् ॥ ७ ॥
चूडाकंकणकेयरशनान् पुरान्विताम् । सीमते रविचन्द्राभ्यां निटिले तिलकेन च ॥ ८ ॥
मयूराभरणेनापि ग्राणेऽतिशोभितां शुभाम् । हरिद्रां कडजलं दिव्यं कुकुमं कुमुमानि च ॥ ९ ॥
विभ्रतीं सुरभिद्रव्यं सुगन्धस्नेहमुत्तमम् । स्मिताननां गौरवणीं मंदारकुमुमं करे ॥ १० ॥
विभ्रन्तीमपरे हस्ते मातुलुङ्गमनुत्तमम् । रम्यहासां च विंशोष्टीं चन्द्रवाहनलोचनाम् ॥ ११ ॥
कलानाथसमानास्यां कलकण्ठमनोरमाम् । मातुलुङ्गोद्धवां देवीं पद्माक्षदुहितां शुभाम् ॥ १२ ॥
मैथिलीं रामदयितां दासीभिः परिवीजिताम् । एवं हृदयाद्यगन्यासः कार्यः ॥ १३ ॥
सीतायाः कवच दिव्यं पठनीयं शुभावहम् । १४ ॥

श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवतु जानकी । प्रतांच्यां पातु वैदेही पातुदीच्यां च मैथिली ॥ १५ ॥
अथः पातु मातुलुंगी ऊर्ध्वं पद्माक्षजाऽवतु । मध्येऽवनिसुता पातु सर्वतः पातु मां रमा ॥ १६ ॥

कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ अगस्त्यजीने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो ।
पहले मैं सीताजीका कवच सुनाता हूँ ॥ ४ ॥ जो सीता पृथ्वीसे उत्पन्न हुई और मिथिलानरेशके द्वारा पाले-
पासी गयीं, जो मातुलुङ्गसे उत्पन्न होकर पद्माक्ष नामक राजाकी पुत्री कहो गयीं, जो समुद्रके रत्नोंमें लीन
हुई और चार बार लङ्घा गयीं, ऐसी चन्द्रददनी, मृगनदनी और रामकी प्रेयसी सीता मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥
“अस्य थी” से लेकर “एवं हृदय व्यज्ञन्यासः” यहाँ तक विनियोग तथा अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया
है । इसके बाद ध्यान है । जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—कमलकी पंखुडियोंके समान जिनके नेत्र
हैं, विद्युत्पुञ्जके समान जिनको दीप्ति है, जिनके दो भुजायें हैं और जो पोताम्बर पहने हैं । जो सिंहासनपर
रामके वाममागमें बैठी हैं, कानोंमें कुंडल पहने हैं, जूडेमें चूडामणि, भुजाओंमें केयूर तथा कमरमें करघनी
पहने हैं, जिनके सोमन्तभागमें सूर्य-चन्द्रमाके समान आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, माथेमें तिलक लगा
हुआ है, नाकमें मधूरके आकारका सुन्दर आभूषण पढ़ा है ॥ ६-९ ॥ हरिद्रा, काजल, कुंकुम, विविध प्रकारके
फूल तथा तरह तरहके सुगंधित द्रव्य और इत्र आदि गमक रहे हैं, जिनका मुस्कराता हुआ मुखमण्डल है,
गौर वर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारके फूल लिये हैं, दूसरे हाथमें उत्तम मातुलुङ्ग विराजमान है, जिनकी मृदु
मुस्कान है, विवके समान ओष्ठ है, मृगके नेत्रोंके समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, कोयल-
के समान जिनकी मीठी वाणी है, जो मातुलुङ्ग (विजौरा नीव) से उत्पन्न होनेवाली पद्माक्ष नृपतिकी
पुत्री और रामकी भामिनी है, जिन्हें दासियां पहें झल रही हैं, सुवर्णकलशके समान जिनके स्तन हैं, ऐसी
सीताका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥ पूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा
करें, दक्षिणकी तरफ जनकी रक्षा करें, पश्चिमकी वैदेही रक्षा करें, उत्तरकी मैथिली रक्षा करें ॥ १५ ॥ निचले

स्मितानना शिरः पातु पातु भालं नृपात्मजा । एद्वाऽवतु भ्रुवोर्पद्ये मृगाक्षी नयनेऽवतु ॥१७॥
 कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा । नासाग्रं सात्त्विकी पातु पातु वक्त्रं तु राजती ॥१८॥
 तामसी पातु मद्दाणीं पातु जिह्वां पतिव्रता । दंतान् पातु महामाया चिवुकं कनकप्रसा ॥१९॥
 पातु कंठं सौम्यरूपा स्कंधौ पातु सुराचिता । शुजौ पातु वरागोहा करौ कंकणमंडिता ॥२०॥
 नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा । वक्षः पातु रामपत्नी पार्थं रावणमोहिनी ॥२१॥
 पृष्ठदेशे वह्निगुप्ताऽवतु मां सर्वदेव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटि राक्षसमोहिनी ॥२२॥
 गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिङं पातु हरिप्रिया । ऊङ्क रक्षतु रंभोरुज्ज्ञानुनी प्रियमायिणी ॥२३॥
 जंघे पातु सदा सुश्रूगुलकौ चामरवीजिता । पादौ लवसुता पातु पात्वंगानि कुशांविका ॥२४॥
 पादांगुलीः सदा पातु मम नृपुरनिःस्वना । गोपाण्यवत् मे नित्यं पीतकौशेष्वामिनी ॥२५॥
 रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतत्परा । सर्वकालेषु मां पातु मूलकामुरायानिनी ॥२६॥
 एवं सुतीक्ष्णं सीतायाः कवचं ते मयेतिष्ठ । इदं प्रातः समुत्थाय स्नात्वा नित्यं पठेत्तु यः ॥२७॥
 जानकीं पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुयात् । धनार्थी प्राप्नुयाददृश्यं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयान् ॥२८॥
 स्त्रीकामार्थी शुभां नारीं सुखार्थीं सौख्यमाप्नुयात् । अष्टवारं जपनीयं सीताया कवचं सदा ॥२९॥
 अष्टम्यो विप्रवर्येभ्यो नरः प्रीत्याऽप्येत्सदा । फलपृष्ठादिकादीनि यानि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥
 सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पातकानशनम् । ये पठति नरा भक्त्या ते धन्या मानवा भुवि ॥३१॥
 पठंति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । तथा विना लक्ष्मणस्य कवचेन वृथा समृतम् ॥३२॥
 तस्मात्सदा नरजप्त्यं कवचानां चतुष्टयम् । आदो तु वायुपुत्रस्य लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥
 ततः पठेच्च सीतायाः श्रीरामस्य ततः परम् । एवं सदा जपनीय कवचानां चतुष्टयम् ॥३४॥

इति सीताकवचम् ।

भागकी मातृलुंगो, ऊपर वद्याक्षजा, मध्यभागकी अवनिमुता और चारों ओर रमा रक्षा करें ॥१६॥
 स्मितानना मुखकी, नृपात्मजा मस्तककी, भौंगोंके बीचमें पदा और मेरे नेत्रोंकी मृगाक्षी रक्षा करें ॥१७॥
 श्रीरामचन्द्रजीको प्रेयसो कपोल और कण्मूलकी रक्षा करें । सात्त्विकी नासिकाके अग्रभागकी, राजसी मुखकी,
 तामसी वाणीकी, पतिव्रता जिह्वाकी, महामाया दौतोंकी, कनकप्रभा चिवुककी, सौम्यरूपा कण्ठकी, सुराचिता
 कन्धोंकी, वरागोहा वाहुकी और कंकणमंडिता हाथोंकी रक्षा करें ॥१८-२०॥ रक्तनखा नाखूनोंकी, लघूदरा
 कुक्षिकी, रामपत्नी वक्षस्थलकी, रावणमोहिनी पार्थभागकी और वह्निगुप्ता सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें ।
 दिव्यप्रदा मेरी नाभिकी और राक्षसमोहिनी कमरकी रक्षा करें ॥२१॥२२॥ रत्नगुप्ता गुण्डकी और हरिप्रिया
 लिङ्गकी रक्षा वरें । रंभोह मेरे दोनों घुटनोंकी और प्रियमायिणी जानुमागकी रक्षा करें ॥२३॥ मुध्र जांघोंकी,
 चामरवीजिता गुलककी तथा कुण्डलिका शरीरके सब अङ्गोंकी रक्षा करें ॥२४॥ नृपुरनिःस्वना पैरकी उँगलियों
 की और पीताम्बरधारिणी मेरे दोमोंकी रक्षा करें ॥२५॥ रात्रिके समय कालरूपा, दिनको दानैकतत्परा और
 सब समय मूलकामुरधातिनी मेरी रक्षा करें ॥२६॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सीताकवच बतलाया ।
 जो प्राणी सबेरे स्नानके बाद नित्य इसका पाठ करके जानकीजीकी पूजा करता है, वह अपनी सब इच्छायें
 पूर्णं कर लेता है । घनको चाहनेवाला घन और पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र पाता है ॥२७॥२८॥
 स्त्रीकी कामनावाला सुन्दरी स्त्री और सुख चाहनेवाला सौख्य पाता है । उपासकको चाहिए कि सदा आठ
 बार सीताकवचका जप करें । आठ द्वाहूणोंको फल-पूष्प आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दान दे ॥२९॥३०॥
 यह सीताकवच बड़ा पवित्र और पापोंका नाशक है । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे
 प्राणी संसारमें धन्य हैं ॥३१॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं, उनका वह पाठ व्यर्थ हो
 जाता है ॥३२॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इन चारों कवचोंका पाठ करें । इसका कम इस प्रकार है-
 पहले हनुमानजीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

एवं सुतीक्ष्णं सीतायाः कवचं ते मयेरितम् । अतः परं शृणुष्वान्यत्सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३६॥
यस्मिन्नेत्रोत्तरशतं सीतानामानि संति हि । अष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥
ये पठन्ति नरास्त्वत्र तेषां च सफलो भवः । ते धन्या मानवा लोके ते वैकुंठं ब्रजंति हि ॥३७॥

अस्य श्रीसीतानामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य अगस्तिशृष्टिः । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति वीजम् ।
मातुलुंगीति शक्तिः । पद्माक्षजेति कीलकम् । अबनिजेत्यस्त्रम् । जनकजेति कवचम् । मूलकासुर-
मर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्धूर्थं जपे विनियोगः ।
अथांगुलिन्यासः । ॐसीतायै अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐरायै तर्जनीभ्यां नमः । ॐमातुलुंग्यै
मध्यमाभ्यां नमः । ॐपद्माक्षजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐब्रवनिजायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐजनकजायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अथ हृदयादिन्यासः । ॐसीतायै हृदयाय नमः ।
ॐरायै शिरसे स्वाहा । ॐमातुलुंग्यै शिखायै वषट् । ॐपद्माक्षजायै नेत्रत्राय वषट् ।
ॐजनकात्मजायै अस्त्राय फट् । ॐमूलकासुरमर्दिन्यै इति दिग्बन्धः ॥

अथ सीताऽष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ।

वामांगे रघुनाकस्य रुचिरे या संस्थिता शोभना या विप्राधिष्यानरम्यनयना या विप्रपालानना ।
विद्युत्पुंजविराजमानवसना भक्तार्तिसंखण्डना श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलन्यस्तेष्णा साऽवतु ॥३८॥
श्रीसीता जानकी देवी वैदेहा राघवप्रिया । रमाऽवनिसुता रामा राक्षसान्तप्रकारिणी ॥३९॥
रत्नगुप्ता मातुलुंगी मैथिली भक्तोपदा । पद्माक्षजा कंजनेत्रा स्मितास्या नूपुरस्वना ॥४०॥
वैकुंठनिलया मा श्रीमुक्तिदा कामपूरणी । नृपात्मजा हेमवर्णा मृदुलांगी सुभाषिणी ॥४१॥
कुशांचिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुखा केयूरधारिणी ॥४२॥
अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानसंस्थिता सुभ्रूः सुकेशी रशनान्विता ॥४३॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर
सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता हूँ ॥ ३५ ॥ जिसमें एक सी आठ सीताके नाम गिनाये गये हैं । इसलिए
इसका नाम “सीताऽष्टोत्तरशतनाम” रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म
सफल हो जाता है । वे मनुष्य बन्य हैं और वे अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ३७ ॥ “अस्य श्री” यहाँसे
“मूलकासुरमर्दिन्यं” यहाँ तक विनियोग तथा अंगन्यास आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ व्याप्तम् ॥
जो एक सुन्दर सिंहासनपर रामके वामांगमें बैठी हैं, मृगके नेत्रोंकी भाँति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं,
जो विजलीके समूहकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी कसर
नहीं रखतीं, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ अब यहाँसे
शतनाम चलता है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जानकी, (३) देवी, (४) वैदेही अयौत् विदेह जनककी पुत्रा,
(५) राघवप्रिया, (६) रमा, (७) अवनिसुता (पूर्वीकी कन्या), (८) रामा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी (राक्षसों-
का नाश करनेवाली), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुंगी, (१२) मैथिली, (१३) भक्तोपदा (भक्तोंको प्रसन्न
करनेवाली), (१४) पद्माक्षजा (पद्मकर्णामक राजाकी कन्या), (१५) कंजनेत्रा (कमलके समान नेत्रोंवाली),
(१६) स्मितास्या (जिनका मुस्कराता हुआ मुख है), (१७) नूपुरस्वना, (१८) वैकुण्ठनिलया (वैकुण्ठलोकमें
जिवास करनेवाली), (१९) मा, (२०) श्री, (२१) मुक्तिदा, (२२) कामपूरणी (अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी
करनेवाली), (२३) नृपात्मजा, (२४) हेमवर्णा, (२५) मृदुलाङ्गी (जिनका कोमल अङ्ग है). (२६) सुभाषिणी,
॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशांचिका (कुशकी माता), (२८) दिव्या (लंकासे लौटनेपर रामके कट्ट वाक्य सुनकर
शपथ खानेवाली), (२९) लवमाता, (३०) मनोहरा, (३१) हनुमद्वन्दितपदा (हनुमानजीने जिनके चरणोंकी
बन्दना की थी), (३२) मुखा, (३३) केयूरधारिणी, (३४) अशोकवनमध्यस्था (अशोकवनमें निवास करनेवाली)

रजोरूपा सत्त्वरूपा तामसी बहिवासिनी । हेममृगासक्तचित्ता वाल्मीक्याश्रमवासिनी ॥४४॥
 पतिव्रता महामाया पीतकौशेयवासिनी । मृगनेत्रा च विद्वोष्टी धनुविद्याविशारदा ॥४५॥
 सौम्यरूपा दशरथस्तुषा चामरवीजिता । सुमेधादुहिता दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी ॥४६॥
 अब्रूणी महालक्ष्मीर्धोर्लज्जा च सरस्वती । शांतिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाऽयोध्यानिवासिनी ॥४७॥
 वसंतशीतला गौरी स्नानसंतुष्टमानसा । रमानामभद्रसंस्था हेमकंकणमण्डिता ॥४८॥
 सुराचिता धृतिः कांतिः स्मृतिमेधा विभावरी । लघूदरा वरारोहा हेमकंकणमण्डिता ॥४९॥
 द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्नताटकधारिणी ॥५०॥
 रामवामांगसंस्था च रामचन्द्रैकरंजनी । सर्वगृजलसंक्रीडाकारिणी राममोहिनी ॥५१॥
 सुवर्णतुलिता पुण्या पुण्यकीर्तिः कलावती । कलकण्ठा कंचुकण्ठा रंभोरुग्जगामिनी ॥५२॥
 रामपितृमना रामवंदिता रामदल्लभा । श्रीरामपदचिह्नांका रामरामेति भाषिणी ॥५३॥
 रामपर्यङ्कशयना रामांघ्रिक्षालिनी वरा । कामधेनवन्नसन्तुष्टा मातुलुंगकरे धृता ॥५४॥
 दिव्यचन्दनसंस्था श्रीमूलकासुरमर्दिनी । एवमष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां सुपुण्यदम् ॥५५॥
 ये पठन्ति नरा भूम्यां ते धन्याः स्वर्गगामिनः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥५६॥
 जपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सति स्तोत्राण्यनेकानि पुण्यदानि महांति च ॥५७॥

(३५) रावणादिकमोहिनी, (३६) विमानसम्मिता, (३७) मृग्नि, (३८) सुकेशी, (३९) रणनान्विता, (४०) रजोरूपा (४१) सत्त्वरूपा, (४२) तामसी, (४३) बहिवासिनी (अग्निमें निवास करनेवाली), (४४) हेममृगासक्तचित्ता (सुवर्णके मृगमें जिनका मन आसक्त हो गया था), (४५) वाल्मीक्याश्रमवासिनी (वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें निवास करनेवाली) ॥४२-४४॥ (४६) पतिव्रता, (४७) महामाया, (४८) पीतकौशेयवासिनी (रेशमी पीताम्बर वारण करनेवालो), (४९) मृगनेत्रा, (५०) विद्वोष्टी, (५१) धनुविद्याविशारदा (धनुविद्यामें निपुण), (५२) सौम्यरूपा, (५३) दशरथस्तुषा, (५४) चामरवीजिता, (५५) सुमेधादुहिता, (५६) दिव्यरूपा, (५७) त्रैलोक्यपालिनी, (५८) अब्रूणी, (५९), महालक्ष्मी, (६०) वी, (६१) लज्जा, (६२) सरस्वती, (६३) शांति, (६४) पुष्टि, (६५) क्षमा, (६६) गौरी, (६७) प्रभा, (६८) अयोध्यानिवासिनी, (६९) वसन्तशीतला, (७०) गौरी, (७१) स्नानसंतुष्टमानसा (वसन्तऋतुमें शीतला गौरी द्रूतके अवसरपर स्नान करनेसे सन्तुष्ट होनेवाली), (७२) रमानामभद्रसंस्था, (७३) हेमकुम्भपद्मोदरा, (७४) सुराचिता, (७५) धृति, (७६) कांति, (७७) स्मृति, (७८) मेवा, (७९) विभावरी, (८०) लघूदरा, (८१) वरारोहा, (८२) हेमकंकणमण्डिता, ॥४४-४९॥ (८३) द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपन सब आभूषण एक ब्राह्मणीको दे दियेथे), (८४) राघवतोषिणी, (८५) श्रीरामसेवनरता, (८६) रत्नताटकधारिणी (रत्नके बने कर्णफूल पहननेवाली) ॥५०॥ (८७) रामवामांगस्था, (८८) रामचन्द्रैकरञ्जनी, (८९) सर्वगृजलसंक्रीडाकारिणी (सर्वगृजीके जलमें विहार करनेवाली), (९०) राममोहिनी, (९१) सुवर्णतुलिता, (९२) पुण्या, (९३) पुण्यकीर्ति, (९४) कलावती, (९५) कलकण्ठा, (९६) कम्बुकण्ठा, (९७) रम्भोरु, (९८) गत्रगामिनी, (९९) रामापितृमना, (१००) रामवन्दिता, (१०१) रामदल्लभा, (१०२) श्रीरामपदचिह्नांका (जिनके हृष्यमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणका चिह्न विद्यमान है), (१०३) रामरामेतिभाषिणी (सदा राम-राम कहनेवाली) (१०४) रामपर्यंकशयना, (१०५) रामांघ्रिक्षालिनी (रामके पैर धोनेवाली), (१०६) कामधेनवन्नसन्तुष्टा, (१०७) मातुलुंगकरेधृता, (१०८) दिव्यचन्दनसंस्था मूलकासुरधातिनी (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) ये एक सौ आठ सीताजीके नाम बड़े पुण्यदायी हैं ॥५१-५५॥ जो लोग इस बष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे धन्य और स्वर्गामी होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥५६॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा भक्तिपूर्वक इसका पठ किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुण्यदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भूसूर ! वे सब इसके

नानेन सदशानीह तानि सर्वाणि भूमुरा । स्तोत्राणामुत्तमं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥५८॥
 एवं सुतीक्ष्णं ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् । सीतानाम्ना पुण्यदं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥५९॥
 नरैः प्रातः समृत्थाय पठितव्यं प्रथत्नतः । सीतापूजनकालेऽपि सर्ववाञ्छितदायकम् । ६०॥
 अन्यत्सीतातोपदानि ब्रतादीनि महांति च । यानि संत्यद्य ते शिष्य तानि सम्यग्वदाम्यहम् ॥६१॥
 नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तीर्थे तु तत्कृते ॥६२॥
 यत्र सीताकृतं तीर्थं रामतीर्थं न बतते । तथा लक्ष्म्याश्च गौर्याश्च सरस्वत्यादियोपिताम् ॥६३॥
 तीर्थेषु च सदा कार्यं तदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥
 ज्ञेयं तीर्थं तु सर्वत्र नैकं ज्ञेयं तु राघवम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं सौभाग्यवर्द्धनम् ॥६५॥
 न कुर्वत्यत्र या नार्यः स्नानं ताः सप्तजन्मसु । भवन्ति विधवास्तस्मात्सदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण उवाच

मो गुरो शीतलागौरीस्नानस्योदयापनं कथम् । स्त्रीभिः कार्यं वदस्वाद्य सविस्तारं शुभावहम् ॥६७॥
 अगस्तिरुवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सुतीक्ष्णं शृणु सादरम् । चैत्रमासे सिते स्त्रीभिस्त्रृतीयायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥
 कार्यं तु शीतलागौरीस्नानं त्रिंशदिनानि हि । वैशाखस्य सिते पक्षे द्वितीयापामुपोष्य च ॥६९॥
 स्त्रीभिश्च विधिना कार्यं निशायामधिवासनम् । पूर्ववच्च प्रकर्तव्यं मण्डपादिकमुत्तमम् ॥७०॥
 तत्र रमानामभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं दूर्धमाण्यन्यानि वा क्रमात् ॥७१॥
 स्थापनीयं मध्यदेशे तन्मध्ये पङ्कजोपरि । धान्यराशौ तोयपूर्णः स्थापनीयो घटः शुभः ॥७२॥
 तन्मुखे तात्रपात्रं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् । आच्छाद्य पात्रं कौशयवस्त्रेण तन्मनोरमम् ॥७३॥
 तस्मिन्सीतारामयोश्च द्वे मूर्तीं रूपमनिर्मिते । स्थापनीये पूजनीये पोडशैरुपचारकः ॥७४॥
 नवमाषात्मको रामः सीताऽष्टमाषनिर्मिता । निजशक्त्याऽयवा कार्ये द्वे मूर्तीं रजतस्य वा ॥७५॥

बराबर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा भुक्ति-मुक्तिदायक है ॥५७॥५८॥
 है सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुमसे सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे
 मङ्गलदाता है ॥५९॥ लोगोंको चाहिये कि रोज सबेरे उठकर और सीताका पूजन करके अवश्य
 इसका पाठ करें । ऐसा करनेसे उनकी कामनायें पूर्ण हो जायेंगी । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे व्रत
 आदि हैं, जिनसे सीताजी प्रसन्न हो सकती हैं । हे शिष्य ! उन्हें आज मैं तुन्हें बतलाया हूँ ॥६०॥६१॥ सीताजी-
 को प्रसन्न करनेके लिए स्त्रियोंको चाहिए कि सीताके द्वारा स्वापित किसी भी तीर्थमें जाकर शीतलागौरीका
 व्रत करें ॥६२॥ यदि आस-पास कोई सीतातीर्थं न हो तो लक्ष्मी, गौरी तथा सरस्वती आदि किसी भी
 देवीके तीर्थमें उत्त व्रत करें । यदि वह भी न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करें । जहाँ-जहाँ
 रामतीर्थ है, उसके बामभागमें सीतातीर्थ अवश्य रहता है । कहाँपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता ।
 वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत स्त्रियोंका सौभाग्य बढ़ाता है ॥६३-६५॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतको नहीं करतीं,
 वे सात जन्म तक तक विधवा रहकर जीवन विताती हैं । इससे स्त्रियोंको सदा शीतलागौरीका स्नान करना
 चाहिए ॥६६॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! इस शीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उद्यापन कैसे
 करना चाहिए । सो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥६७॥ अगस्त्यजीने कहा-हे शिष्य सुतीक्ष्ण !
 तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सुनो । चैत्रशुक्ल तृतीयासे लेकर तीस दिनतक शीतलागौरीका स्नान करे
 और वैशाख शुक्ल द्वितीयाको उपवास करके रात्रिके समय पूर्वोक्त विधिके अनुसार मण्डप आदि बनावे ॥६८-७०॥
 उसमें अष्टोत्तरसहस्रात्मक रमानामतोभद्र, अष्टोत्तरशतात्मक या और कम संख्याका भद्र
 बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यराशि रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥७१॥७२॥ कलशके
 मुखपर एक बड़ा-सा तात्रपात्र रखें और उसको रेणमी वस्त्रसे ढाँक दे ॥७३॥ उसपर सुवर्णकी बनी ही ही सीता

गन्धपृष्ठधूपदीपनैवेद्यवसनादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्ये तु निवेदयेत् ॥७६॥
ततः स्त्रीणां वायनानि वस्त्रालंकारवस्तुभिः । कुंकुमादिपूरितानि देयानि विविधानि च ॥७७॥
देयानि कांस्यपात्राणि पक्षान्नपूरितानि च । त्रयस्त्रिशत्तथा वाऽष्टौ स्त्रीभिर्देयानि शक्तिः ॥७८॥
त्रयस्त्रिशत्तच्च युग्मानि भोजयेत्तच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्त्या भोजनीयानि पद्मसैः ॥७९॥
रात्रौ जागरणं कार्यं गौत्रवाद्यादिमंगलैः । प्रातःकाले दृतीयायां स्नान्त्वा सम्पूजय जानकीम् ॥८०॥
होमश्चापि प्रकर्तव्यः सीतामन्त्रेण यत्नतः । तिलाज्यैः पायसैश्चापि सहस्राण्यष्टभूसुरैः ॥८१॥
मुद्रहीनं नवान्नं च ज्ञेयमष्टाङ्गमुत्तमम् । तन्मीतातोपदं ज्ञेयं तेन वा जुहूयात्सुखम् ॥८२॥
ततः स्वर्थं सुहन्मित्रैर्भक्तिव्यं च यथासुखम् । एवमुद्यापनविधिस्तवाग्रे विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुतीक्ष्णाय यदिदं कथितं पुरा । तत्सर्वं च त्वया पृष्ठं मया तेऽयं निवेदितम् ॥८४॥

विष्णुदास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेणाद्य कथयस्व ममाग्रतः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा प्रोक्तं मया शिष्य रामतोभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥
किंचिद्विशेषस्तत्रास्ति तत्तुभ्यं कथयाम्यहम् । लिंगस्थलेषु कर्तव्या वापिकाश्चैव पूर्ववत् ॥८७॥
मुद्रायामेव किंचिच्च विशेषोऽस्ति मृणुष्यतत् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्रचयेदधः ॥८८॥
ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे द्वे रचनीये तु पूर्वदत् । एवं कृत्वा रमानाम श्वेतवणं निरीक्षयेत् ॥८९॥
एतद्रमानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नानाकर्मसु सर्वेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥
विना रमानामभद्राद्यानि देव्याः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और रामकी दो मूर्ति रखने और बोड्शोपचारसे उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें नौ मासे सुवर्णसे रामको और आठ मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिके अनुसार चाँदी-की दो प्रतिमायें बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पूष्ठ, धूप, दोप, नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताको अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुयें तथा कुमकुम आदिके साथ विविध प्रकारके बायन दे ॥ ७७ ॥ तदनन्तर तरह-तरहके पकवानसे भरकर तेंतीस, आठ अथवा तीन कांस्यपात्र अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तेंतीस ब्राह्मणदम्पत्ति, आठ ब्राह्मण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणदम्पतिशोंको भोजन कराये ॥ ७९ ॥ रात्रिमर गीत-वाद्य आदि मञ्जलमय कार्यं करता हुआ जागरण करे । तृतीयाको प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिल, धी तथा स्त्रीरसे आठ ब्राह्मणोंके साथ सीतामन्त्रसे होम करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मूँगको छोड़कर अन्य नौ प्रकारके अन्न सीताजीको बहुत प्रिय हैं । यदि हो सके तो उन्हींसे हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित-मित्रादिके साथ सुखपूर्वक भोजन करे । इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कही ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा-तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने वह सब बातें कह दीं, जो सुतीक्ष्णगों अगस्त्यजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ विष्णुदासने कहा कि जब स्त्रियाँ पूजन करने लगें तो रमानामक भद्रकी रचना किस प्रकार करें । यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा-पहले मैंने जो रामतोभद्र रचनाकी विधि बतायी है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रकी भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मुद्रामें योड़ीसी विशेषता है । सो मैं तुमको बताये देता हूँ, सुनो । चाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह निचले भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रमा इन दो अक्षरोंकी भी पहले ही की तरह रचना करे । ऐसा कर लेनेके बाद रमा इस नामको भद्रके इवेत भागमें उभड़ा देखे ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा और-और प्रकारके शुभ कर्मोंमें प्रयत्न करके इस रमानामतो भद्र-

अकृतान्यत्र तस्माद्वि कर्तव्यं यत्नतस्त्वदम् । कृता रमानामभद्रे या पूजा मानवैभुवि ॥१२॥
 सा देव्यै तोपदा ज्ञेया तस्मात्कार्या प्रयत्नतः । पूर्वोक्तानि देवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥१३॥
 आवाहयेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भो शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥१४॥
 रमानामतोभद्रं च कार्यं वा मानवैभुवि । तत्त्वापि पूर्वतस्त्वं कर्तव्यं मानवैधिंया ॥१५॥
 इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् । रामनाम्ना रमानाम्ना हृदं भद्रं महत्तमम् ॥१६॥
 यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोक्तमे । रमारामतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकारयेत् ॥१७॥
 रामासनोपमान्येव देवान्यत्र विचिन्तयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्ठं यद्यत्तत्त्वमयोदितम् ॥१८॥
 का तेऽन्यास्ति स्पृहा श्रोतुं वद तां तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥१९॥

पुरा गुरो त्वया तच्च मां वदस्व सविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥
 श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्ठं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥
 सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो त्वया पुरा ग्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं जनैश्चेति तन्मामथं प्रकाशय ॥१०२॥
 भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्तिरुदाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः श्रुणु । आदौ सौमित्रिकवचं कथ्यतेऽत्र मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे

सीतारामकवचादिनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

को रचना करे ॥ १० ॥ विता रमानामतोभद्रके देवोपूजन आदि जितना भी कृत्य किया जाता है, वह सब व्यर्थ हो जाया करता है । अतएव रमानामतोभद्रकी स्वापना अवश्य करनी चाहिये । रमानामतोभद्रमें लोग जो पूजन आदि करते हैं, वह सफल होता है ॥ ११ ॥ ६२ ॥ उससे देवी प्रसन्न होती हैं । इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए । पूर्वमें जितने देवता कह आये हैं, वे सब इस भद्रमें भी रहेंगे ॥ ६३ ॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि इस भद्रमें राम और सीताका आवाहन करे । हे शिष्य ! सीतारामके पूजनके विषयमें और भी कुछ विशेष बातें हैं । उन्हें कहता हूँ, मूनो ॥ ६४ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानामतोभद्रकी स्वापना अवश्य करे । उस भद्रमें पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहेंगी ॥ ६५ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त इसकी स्वापना की जाती है और केवल रामनामतोभद्र अथवा केवल रामतोभद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ६६ ॥ इस भद्रमें राम और राम इन दोनोंके नाम आ जाते हैं । इसीलिए यह भद्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ६७ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए हो देवता इस भद्रमें रहेंगे । इस तरह हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा ॥ ६८ ॥ अब क्या सुननेकी इच्छा है सो बताओ, मैं कहूँ । विष्णुदास बोले-आपने कहा था कि लक्ष्मणके कवचका भी पाठ करना चाहिए । सो उन्होंने सुतीक्ष्णमें जो कुछ कहा था, वहाँ मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १०१ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंको लक्ष्मणकवचका भी पाठ करना चाहिए । सो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए । उसके साथ-साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए । अगस्त्यने कहा-हे वत्स ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । पहले मैं लक्ष्मणकवचका ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे १० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासाहिते मनोहरकांडे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(लक्ष्मण-भरत तथा रघुवंशकवच)

सौमित्रिं रघुनाथकक्षय चरणद्वंद्वेक्षणं इयामलं विभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विनित्रं दरम् । विभ्रन्तं रघुनाथकक्षय सुमहत्कोदंडवाणामने तं वंडे कमलेक्षणं जनकजात्याक्षे पदा तत्परम् ॥ १ ॥

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रस्य । अगस्त्यकृष्णः । अनुष्टुप्छंदः । श्रीलक्ष्मणो देवता । शेष इति वीजम् । सुमित्रानंदन इति शक्तिः । रामानुज इति कीलकम् । रामदास इत्यस्त्रम् । रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिरिति मंत्रः । श्रीलक्ष्मणप्रान्त्यर्थं सकलमनोऽभिलपितसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐ लक्ष्मणाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ शेषाय तर्जनाभ्यां नमः । ॐ सुमित्रानंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाश्वगन्यासः । ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिरसे व्याहा । ॐ सौमित्राय शिखायै वपट् । रामानुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय वौपट् । रघुवंशजाय प्रख्याय फट् । ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः ।

अथ सद्गानं लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुंडलधारिणम् । नीलोत्पलदलश्यामं रत्नकंकणमंडितम् ॥ २ ॥
 रामस्य मस्तके दिव्यं विभ्रन्तं छत्रमुत्तमम् । वीरं पीतांवरधरं मुकुटेनातिशोभितम् ॥ ३ ॥
 तूणीरे कार्षुके चापि विभ्रन्तं च स्मिताननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥ ४ ॥
 एवं ध्यात्वा लक्षणं च राघवन्यरत्नलोचनम् । कवचं जपनीयं हि ततो भक्त्याऽत्र मानवैः ॥ ५ ॥
 लक्ष्मणः पातु मे पूर्वे दक्षिणे राघवानुजः । प्रतीच्यां पातु शौमित्रिः पातूदीच्यां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 अधः पातु महात्मीरथोध्यं पातु नृपात्मजः । नध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ॥ ७ ॥
 स्मिताननः शिरः पातु भाल पातूमेलाधवः । अवोर्मध्ये धनुर्धारी सुमित्रानंदनोऽक्षिणी ॥ ८ ॥
 कपोले राममंत्री च सर्वदा पातु वै भम । अंगेषुले सदा पातु कवधभुजखडनः ॥ ९ ॥

अगस्त्यजीने कहा—मैं उन लक्ष्मणजीकी बन्दना करता हूँ, जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रामचन्द्रजीके सिरपर छत्रकी छाया किये रहते हैं। जो कन्धेपर रामचन्द्रजीका बनुष धारण किये रहते हैं। जो सर्वदा जानकीजीकी आजाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और कमलके समान जिनकी आँखें हैं ॥ १ ॥ “अस्य श्री” से लेकर ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः” यहाँ तक विनियोग और अंगन्यासकी विधि दत्तलायी गयी है। उसके आगे लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पाढ़े बैठे हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटिः कुण्डल जिनके कानोंमें झूल रहे हैं, नील कमलके समान जिनके मुखका आभा है और जिनके हाथोंमें रत्नजटित करण पढ़े हैं ॥ २ ॥ वीर लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर पहने हैं और मुकुटसे जो अतिशय शोभायमान दीख रहे हैं ॥ ३ ॥ जो तूणीर तथा बनुष धारण किये हैं, मुस्कराता हुआ जिन हा मुखारविन्दि है, रत्नोंकी माला जिनके गलेमें पड़ी है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी माला प्रीसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीपर हृषि लगाये लक्ष्मणजीका ध्यान करके लोगोंको चाहिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजी मेरे पूर्वभागकी रक्षा करें और दक्षिणभागमें राघवानुज पश्चिम और होमित्रि तथा उत्तर भागकी रघूत्तम रक्षा करें ॥ ६ ॥ विचले भागमें रघुवीर, ऊपर नृपात्मज, मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रक्षा करें ॥ ७ ॥ सिरकी स्मिता-

नासाग्रं मे सदा पातु सुमित्रानंदवर्द्धनः । रामन्यस्नेक्षणः पातु सदा मेऽत्र मुखं भुवि ॥१०॥
 सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदाऽत्र हि । सौम्यरूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान् ॥११॥
 चित्तुकं पातु रक्षोच्चनः कठ पात्वसुरार्द्धनः । स्फूर्ध्वं पातु जितागतिर्भुजौ पंडजलोचनः ॥१२॥
 करो कंकणधारी च नखान् रक्तनखोऽवतु । शुश्रिं पातु विनिद्रो मे वक्षः पातु जितेन्द्रियः ॥१३॥
 पाईर्व राघवपृष्ठस्यः पृष्ठदेशं मनोरमः । नामिं गंभीरसाभिस्तु कटि च लक्ष्ममेखलः ॥१४॥
 शुद्धं पातु सहस्रास्यः पातु लिंगं हरिप्रियः । ऊह पातु विष्णुतत्त्वः सुमुखोऽयतु जानुनी ॥१५॥
 नागेन्द्रः पातु मे जघे शुल्कां नूपुरवान्मम । पादावंगदत्तोऽव्यात् पात्वगति सुलोचनः ॥१६॥
 चित्रकेतुपिता पातु मम पादांगुलीः सदा । रोमाणि मे सदा पातु रवियंशसमुद्धवः ॥१७॥
 दशरथसुतः पातु निशायां मम सादरम् । भूगोलधारी मां पातु दिवसे दिवसे सदा ॥१८॥
 सर्वकालेषु मार्मिद्रजिद्वान्ताऽवतु सर्वदा । एवं सीमित्रिकवचं सुतीक्ष्णं कथितं मया ॥१९॥
 इदं प्रातः समृद्धाय वे पठन्त्यत्र मानवाः । ते धन्या मानवा लोके तेषां च सफलो भवः ॥२०॥
 सौमित्रेः कवचस्यास्य पठनान्निश्चयेन हि । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥२१॥
 पत्नीकामो लभेत्यत्त्वां गोधनार्थी तु गोधनम् । धान्यार्थी प्राप्नुयाद्वान्यं राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥२२॥
 पठितं रामकवचं सीमित्रिकवचं दिता । वृत्तेन हीनो नैवेत्रस्तेन दत्तो न सज्जयः ॥२३॥
 केवलं रामकवचं पठितं मानवैर्यदि । तात्पाठेन सुसुनुयो न भवेद्युनंदनः ॥२४॥
 अतः प्रयत्नतश्चेदं सीमित्रिकवचं नरैः । पठनीयं सर्वदेवं पर्वतां छिनदावकपूर् ॥२५॥

नन्, ललाटकी उमिलाधव, भौहोंके बीचमें धनुवारी और आखोंकी सुमित्रानन्दन रक्षा करें ॥८॥ कपोलकी राममन्त्री सदा रक्षा करते रहे और कानोंकी जड़म वैवन्धकी भुजाका खण्डन करनेवाले लक्ष्मणजी रक्षा करते रहे ॥९॥ सुमित्राका आनन्द वढ़ानेवाले मेरी नामिकाने अग्रमागकी रक्षा करें । रामको ओर निहारते हुए लक्ष्मण सर्वदा मेरे मुखकी रक्षा करें ॥१०॥ सीतावाकी आजाका पालन करनेवाले लक्ष्मणजी सर्वदा मेरी वाणीकी रक्षा करें । सौम्यरूपधारी जिह्वाका तथा अनन्तरूपवारी लक्ष्मण मेरे दौतेंकी रक्षा करें ॥११॥ राक्षसोंके वधकारी मेरे चित्तुकी रक्षा करें, असुरोंका परात्म करनेवाले काष्ठकी रक्षा करें, शत्रुको जीतनेवाले मेरे कन्धोंका रक्षा करे और कमल सरीखे नशीवाले लक्ष्मण मेरी भुजाओंकी रक्षा करें ॥१२॥ कंकणको धारण करनेवाले हाथकी रक्षा करें, लाल लाल नखोंयान मेरे नखोंसी रक्षा करें, निद्रासे रहित लक्ष्मणजी मेरी कोखकी रक्षा करें और जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी मेरे वक्षस्थलकी रक्षा करें ॥१३॥ रामचन्द्रजीके पीछे बैठनेवाले लक्ष्मणजी मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें, गम्भीर तामिकाले लक्ष्मणजी नामिकी तथा मुद्रणमयी मेखलावाले मेरी कमरकी रक्षा करें ॥१४॥ शेषल्पमाले लक्ष्मण मेरी गुदाकी तथा हरिप्रिय लक्ष्मण मेरे लिंगकी रक्षा करें । विष्णुके सदृश रूपवाले लक्ष्मणजी धुटनोंकी तथा सुन्दर रूपवारो मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥१५॥ सर्पोंके राजा मेरी जंघाओंकी, गूपुरवारी मेरे गुलकमागकी, अङ्गदतात् मेरे पैरोंकी तथा सुन्दर आँखोंवाले लक्ष्मणजी मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें ॥१६॥ चित्रकेतुके पिता मेरे पैरको डंगलियों तथा मूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले लक्ष्मण मेरे रोमकी रक्षा करें ॥१७॥ रात्रिक समय दशरथके पुत्र मेरी करें और दिनके समय भूगोलधारी लक्ष्मणजी मेरी रक्षा करते रहें । हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें लक्ष्मणकवच कहूँ सुनाया ॥१८॥ जो लोग सबेरे उठकर इस कवचका पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं और उनका जन्म सफल है ॥१९॥ लक्ष्मणजीके इस कवचका पाठ करनेसे पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन पाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥२०॥ पत्नीको कामनावाला प्राणा पत्नी, गोधन चाहनेवाला गोधन, वान्यका इच्छुक वान्य और राज्यकी इच्छा रखनेवाला राज्य पाता है ॥२१॥ विना लक्ष्मणकवचका पाठ किये रामकवचका पाठ उसी तरह व्यर्थ जाता है, जिस तरह धीके विना नैवेच लगाया जाय ॥२२॥ केवल रामकवचका पाठ करनेसे रामचन्द्रजी विशेष प्रसन्न नहीं होते ॥२३॥ इसलिए

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदाम्हहम् । सर्वपापहरं पुण्यं सदा श्रीगमभक्तिदम् ॥२६॥
कैकेयीतनयं सदा रघुवरन्पस्तेक्षणं इयामलं सप्तद्वीपपतेविदेहतनयाकांतस्य वाक्ये रतम् ।
श्रीसीताधवसव्यपाश्चेनिष्टे स्थित्वा तरं चामां धृत्वा दक्षिण त्करेण भरतं तं श्रीजयत भजे ॥२७॥

ॐ अस्य श्रीभरतकवचमंत्रस्य अगस्त्यक्रष्णिः । श्रीभरतो देवता अनुष्टुप्छदः । शंख
इति वीजम् । कैकेयीनंदन इति शक्तिः । भरतखडेश्वर इति कीलकम् ।
रामानुज इत्यस्त्रम् । सप्तद्वीपेश्वरदाम इति कवचम् । गमांशज इति मन्त्रः । श्रीभरतश्रीश्वर्यं
सकलमनोरथसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिश्वरामः । ॐ भरताय अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ कैकेयीनंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतखडेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ शखाय शिरसे स्वादा । ॐ कैकेयीनंदनाय शिखायै यष्ट । ॐ
भरतखडेश्वराय कवचाय हुद् । ॐ रामानुजाय लेन्द्रवयाय दौषट् । ॐ सप्तद्वीपेश्वरदामाय अङ्गाय
फट् । रामांशजाय चेति दिग्बन्धः ।

अब सध्यानं भरतकवचम्

रामचन्द्रसव्यपाश्चे स्थितं कैकेयजासुतम् । रामाय चामरेणैव श्रीजयन्तं भनोरमम् ॥२८॥
रत्नकुण्डलकेयूरकंकणादिविभूषितम् । पीतांवरपरीधानं वनमालाविराजितम् ॥२९॥
मांडवीधोत्तरणं रशनान् पुत्रान्वितम् । नीलोत्पलदलश्यामं द्विजराजसमावनम् ॥३०॥
आजानुवाहुं भरतखंडस्य प्रतिशालकम् । रामानुजं स्मितास्वं च शत्रुघ्नपरिविदितम् ॥३१॥
रामन्यस्तेक्षणं सौम्यं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् । रामभक्तं महावीरं वंदे त भरतं शुभम् ॥३२॥
एवं ध्यात्वा तु भरतं रामपादेक्षणं हृदि । कवचं पठनीय हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥३३॥
ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकयीसुतः । नृपात्मजः प्रतीच्यां हि पातूदीच्यां रघूत्तमः ॥३४॥
अधः पातु इयामलांगश्चोर्ध्वं दशरथात्मजः । मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः ॥३५॥

लोगोंको चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्षणकवचका पाठ अवश्य करें ॥ २५ ॥ हे सुती इन ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊंगा, जो पापोंको हरनेवाला, पवित्र एवं श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी बन्दना करता हूं, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर निहार रहे हैं । जिनका श्याम स्वरूप है । जो सातों द्वीपोंके अधिपति रामचन्द्रजीकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं । जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथमें सुन्दर चमर हाँक रहे हैं । उन भरतजीका मैं ध्यान करता हूं ॥ २७ ॥ “अस्यश्री” से लेकर “रामांशजाय चेति दिग्बन्धः” तक अंगन्यास आदिकी विविधतायी गयी है । इसके बाद ध्यान है-श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी ओर बैठकर रामपर चमर चलाते हुए सुन्दर रत्नजटित कुण्डल, केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे अलंकृत, जिनके चरण मांडवी घोती हैं, रशना और नृपुरसे विराजित, नील कमलके समान इयामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले ॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्तं भुजाओवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिवर्तित, मुस्कुराहटयुक्त मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुञ्जके समान प्रभाशाली, रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके धोड़ी देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें । उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करे ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ कैकेयीसुत और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा करें । उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ नीचे इयामल अङ्गोवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु, चारों और सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले

शिरस्तक्षणिता पातु भालं पातु हरिप्रियः । भ्रूवोर्मध्यं जनकजावाक्यैकतत्परोऽवतु ॥३६॥
 पातु जनकजामाता मम नेत्रे सदाऽत्र हि । कपोले मांडवीकांतः कर्णयूले स्मिताननः ॥३७॥
 नासाग्रे मे सदा पातु कैकेयीतोपवर्द्धनः । उदारांशो शुखे पातु पातु वाणीं जटाधरः ॥३८॥
 पातु पुष्करतातो मे जिह्वा दंतान् प्रभामयः । चिवुकं बलकलधरः कठे पातु वराननः ॥३९॥
 स्कन्धौ पातु जितारातिभूजो शत्रुघ्नवंदितः । करौ कवचधारी च नलान् लङ्घधरोऽवतु ॥४०॥
 कुक्षी रामानुजः पातुः वक्षः श्रीरामवल्लभः । पाश्चे राघवपाश्चस्यः पातु पृष्ठं सुभाषणः ॥४१॥
 जठरं च धतुधारी नामि शरकरोऽवतु । कठिं पद्मेश्वणः पातु गुह्यं रमैरुकमानसः ॥४२॥
 राममित्रः पातु लिंगपूर्व श्रीरामसेत्रकः । नंदिग्रामस्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ॥४३॥
 श्रीरामपादुकाधारी पातु जघे सदा मम । गुलक्ष्मी श्रीरामवन्धुश्च पादो पातु सुरार्चितः ॥४४॥
 रामाज्ञापालकः पातु ममांगान्यत्र सर्वदा । मम पादांगुलीः पातु रघुवंशजिभूषणः ॥४५॥
 रोमाणि पातु मे रम्यः पातु रात्रौ सुधीर्मम । तूणीरधारी दिवसे दिवपातु मम सर्वदा ॥४६॥
 सर्वकालेषु मां पातु पांचजन्यः सदा शुचि । एवं श्रीभरतस्येदं सुतीक्ष्णं कवचं शुभम् ॥४७॥
 मया प्रोक्तं तदाग्रे हि महामंगलकारकम् । स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं सुपुण्यदम् ॥४८॥
 पठनीयं सदा भवत्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ॥४९॥
 यथा याति परं तोप तथा स्वकवचेन न । तस्मादेतत्सदा जप्यं कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥
 अस्यात्र पठनान्मत्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विद्याकामो लभेद्विद्वां पुत्रकामो लभेत्सुतम् ॥५१॥
 पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थीं धनमाप्नुयात् । यद्यन्मनोभिऽलपितं तत्तत्कवचपाठतः ॥५२॥

भरत मेरो रक्षा करें ॥ ३५ ॥ तक्षके पिता मेरे मस्तकको रक्षा करें, हरिप्रिय मेरे ललाटकी रक्षा करें, जानकीकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले भरतजी भीड़ोंके मध्यभागकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥ सीताको माताके समान माननेवाले भरतजी मेरी आँखोंकी रक्षा करें । माण्डवीके प्रियतम मेरे कपोलोंकी रक्षा करें । मुसकाते मुख-मण्डलवाले भरतजी मेरे कणीमूलकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ कैकेयीके आनन्दको बढ़ानेवाले मेरे नासाग्रकी, उग्र अङ्गवाले मुखकी और जटाधारी भरत मेरी वाणीका रक्षा करें ॥ ३८ ॥ पुष्करके पिता जिह्वाको, प्रभामय दौतीोंकी, बलकलधारी चिवुककी और सुन्दर मुखवाले भरत मेरे कण्ठका रक्षा करें ॥ ३९ ॥ शत्रुघ्नीको जीतनेवाले मेरे कन्धोंकी, शत्रुघ्नवन्दित भुजाओंकी, कवचधारी हाथोंकी और खङ्गधारी नखोंकी रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके छोटे भ्राता उदरको, श्रीरामवल्लभ वक्षस्यलकी, रामके पास बैठनेवाले भरतजी नसलियोंकी और सुन्दर भाषण करनेवाले पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ४१ ॥ बनुर्धारी जठरकी, शरकर नामिकी, कमलके समान नेत्रोंवाले कमरकी और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मेरे गुह्यभागकी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ रामके मित्र लिंगकी रक्षा करें, श्रीरामके सेवक ऊहभागकी और नन्दिग्राममें रहनेवाले भरत सर्वदा मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ श्रीरामकी पादुकाको धारणकरनेवाले मेरी जंघाओंकी, श्रीरामवन्धु दोनों गुलफभागकी तथा सुरार्चित भरतजी मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामकी आज्ञा पालन करनेवाले सर्वदा मेरे सब अङ्गोंकी ओर रघुवंशके उत्तम भूषण मेरे पैरकी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ रम्य वपुधारी भरतजी मेरे मित्र लोगोंकी, रात्रिके समय सुन्दर दुः्खिङ्काले और तूणीरधारी भरत दिनके समय सब दिशाओंकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ पाञ्चजन्य सब समय मेरी रक्षा करते रहें । हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह सुनाया । यह बड़ा मङ्गलकारी, सब स्तोत्रोंमें उत्तम और भली भाँति पुण्यदाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ लोगोंको चाहिए कि श्रीरामचन्द्रजीको जानन्द देनेवाले इस भरत-कवचका पाठ करके ही रामकवचका पाठ किया करें । इस कवचके पाठसे रामचन्द्र जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अपने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ सुनकर नहीं प्रसन्न होते । इस कारण लोगोंको चाहिये कि सब कवचोंमें श्रेष्ठ इस कवचका पाठ बवश्य करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । विद्याकी कामनावाला विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानवैत्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ शत्रुघ्नकवचम्

अथ शत्रुघ्नकवचं सुतीक्ष्णं शृणु सादरम् । सर्वकामपदं रम्यं रामसङ्किलिवर्द्धनम् ॥५४॥

शत्रुघ्नं धृतकार्मुकं धृतमहातूणीरवाणोचमं पाइँ श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।

रामं स्त्रीयकरेण तालदलजं धृत्याऽनिवित्रं वरं सूर्यामं व्यजनं सभास्थितमहं तं वीजयंतं भजे ॥५५॥

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमन्त्रस्य अगस्तित्रिपि: । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्टुप्छंदः । सुदर्शन इति वीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीभरतानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रीत्यस्त्रम् । श्रीरामदास इति कवचम् । लक्ष्मणांशज इति मंत्रः । श्रीशत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःक्रामनामिद्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐ शत्रुघ्नाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय कतरलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः । लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः ।

अथ व्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पाइँ विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं सौम्यं मुकुटेनातिरंजितम् ॥५६॥

रत्नकंकणकेयूरवनमालाविराजितम् । रशनाकुण्डलधरं रत्नहारसनूपुरम् ॥५७॥

व्यजनेन वीजयंतं जानकीकांतमादरात् । रामन्यस्तेक्षणं वीरं कैकेयीतोषवर्द्धनम् ॥५८॥

द्विभुजं कंजनयनं दिव्यपीताविरान्वितम् । सुभुजं सुंदरं मेघदयामलं सुन्दराननम् ॥५९॥

रामवाक्ये दत्तकर्णं रक्षोधनं खड्गधारिणम् । धनुर्वाणधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम् ॥६०॥

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीतिलकांकितम् । मुकुटस्थावतंसेन शोभितं च स्मिताननम् ॥६१॥

रविवंशोद्धवं दिव्यरूपं दशरथात्मजम् । मथुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम् ॥६२॥

एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥

पूर्वे त्वबतु शत्रुघ्नः पातु याम्ये सुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः पातु प्रतीच्या सर्वदा मम ॥६४॥

धनार्थी घन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिस किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पाठसे प्राप्त हो जाती हैं ॥५१॥५२॥ यह बात मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ—जूँ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करें ॥५३॥ हे सुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें शत्रुघ्नकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह शत्रुघ्नकवच भी सब कामनाये पूर्णं करने शौर रामकी सङ्किलितवाला है ॥५४॥ धनुष धारण करनेवाले, बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास वामभागमें खड़े, अपने हायसे ताढ़का पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अद्वितीय विवित्र उस पंखेको दीप्ति है, ऐसे शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५५॥ “अस्य आ” से लेकर “लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः” तक अङ्गन्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे ध्यात है—रामके पास वामभागमें विनयपूर्वक खड़े कैकेयीके आनन्दशाता, सौम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरंजित, रत्नजटित कंकण, केयूर तथा वनमालासे अलंकृत, सिकड़ी और कुण्डल धारण किये, रत्नहार तथा सुन्दर नूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीको पंखा झलते और रामकी ओर निहारते हुए, कैकेयीका आनन्द बड़ानेवाले वीर, जिनके दो भुजायें हैं, कमल जैसे नेत्र हैं, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश शगमल तथा सुन्दर मुखवाले, रामकी बातोंमें कान लगाये, राक्षसोंको मारनेवाले, खड्ग धारण किये, धनुष और बाणसे सुन्तज्जित, बड़ा सा तूणीर धारण किये, सशामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और कुण्डलसे सुशोभित, मुस्कराते मुखवाले, सूर्यवंशमें जायमान, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मथुरानिवासी लवणासुरका मर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

पातूदीन्या रामवन्धुः पात्वधो भरतानुजः । रविवंशोऽद्वश्चोऽह्वै मध्ये दशरथात्मजः ॥६६॥
 सर्वतः पातु मामत्र केकेयीतोपवर्द्धनः । श्यामलांगः शिरः पातु भालं श्रीलक्ष्मणांशजः ॥६७॥
 श्रुतोर्मध्ये सदा पातु सुमुखोऽत्रावनीतले । श्रुतकीतिंपतिनेत्रे कपोले पातु राघवः ॥६८॥
 कर्णो कुण्डलकणोऽन्यान्नामाग्रे नृपवंशजः । मुखं मम युवा पातु वाणीं पातु स्फुटाक्षरः ॥६९॥
 जिहां सुवाहुतातोऽन्याद्यपेतुपिता द्विजान् । चित्रुकं रम्यचित्रुकः कठं पातु सुभाषणः ॥७०॥
 स्कन्धौ पातु महातेजा भुजौ राघववाक्यकृत् । कर्णे मे कंकणधरः पातु खङ्गो नखान्मम ॥७१॥
 कुर्भि रामप्रियः पातु पातु वक्षो रघूत्तमः । पाश्वे सुरार्चितः पातु पातु पृष्ठिं वराननः ॥७२॥
 जठरं पातु रक्षोऽनः पातु नाभिं सुलोचनः । कटि भरतमत्री मे गुह्यं श्रीरामसेवकः ॥७३॥
 रामार्पितमनाः पातु लिंगमृह स्मिताननः । कोदंडपाणिः पात्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥७४॥
 राममित्रः पातु जघे गुलफौ पातु सूनपूरः । पादौ नृपतिपूजयोऽन्यान्त्युमान्यादांगुलीर्मम ॥७५॥
 पात्वंगानि समस्तानि ह्युदारांगः सदा मम । रोपाणि रमणीयोऽन्याद्रावी पातु सुधार्मिकः ॥७६॥
 दिवसे सत्यसंधोऽन्याद्वोजने शरसत्करः । गमने कलकंठोऽन्यात्सर्वदा लवणांतकः ॥७७॥
 एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते समुदीक्षितम् । वे पठन्ति नरास्त्वेतत्ते नराः सौख्यभागिनः ॥७८॥
 शत्रुघ्नस्य वरं चेदं कवचं मंगलप्रदम् । पठनीयं नरैर्भक्त्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥७९॥
 अस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यं कामं नरोऽर्थयेत् । तं त लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥८०॥
 पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् । इच्छाकामं तु कामार्थी प्राप्नुयात्पठनादिना ॥८१॥
 कवचस्यास्य भूम्यां हि शत्रुघ्नस्य विनिश्चयात् । तस्मादेतत्सदा भक्त्या पठनीयं नरैः शुभम् ॥८२॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नजीका ध्यान करके इस उत्तम शत्रुघ्नकवचका पाठ करना चाहिए ॥५६-६३॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुदर्शन और पश्चिम ओर कंकेयीनन्दन हमारी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ उत्तरमें रामवन्धु, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर सूर्यवंशज और मध्यमें दशरथात्मज मेरी रक्षा करें ॥ ६५ ॥ कंकेयीको आनन्द देनेवाले मेरी चारों ओर रक्षा करें । श्यामल अङ्गवाले शत्रुघ्न मस्तककी ओर लक्ष्मणके अंशज मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ सुन्दर मुखवाले सदा मेरे भौद्रोंके मध्यभागकी, श्रुतकीतिके पति नेत्रोंका तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ कानोंमें कुण्डल वारण करनेवाले मेरे कानोंकी, नृपवंशज नासिकाके अग्रभागकी युवारूपवारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं स्फुट अक्षर बोलनेवाले मेरी वाणोंकी रक्षा करें ॥ ६८ ॥ सुवाहुके पिता कन्धोंकी, यूपकेतुके पिता दाँतोंकी, सुन्दर चित्रुकवाले मेरे चित्रुकको और सुन्दर बातें करनेवाले मेरे कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महातेजस्वी कन्धोंकी, रामकी आङ्गा पालन करनेवाले भुज़की, कंकणधारी मेरे हाथोंकी ओर खङ्गको वारण करनेवाले शत्रुघ्न नखोंकी रक्षा करें ॥ ७० ॥ रामके प्रिय मेरे उदरकी, रघूत्तम वक्षस्थलकी, सुरार्चित पाश्वभागकी और वरानन पृथुभागकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ रक्षोऽन जठरकी, सुलोचन नाभिकी, भरतके मंत्री कटिभागकी ओर श्रीरामसेवक गुह्यप्रदेशकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ जिन्होने अपना मन रामको अर्पित कर दिया है वे शत्रुघ्न लिंगकी, मुसकाते मुखवाले ऊर्धभागकी और हाथोंमें धनुष धारण करनेवाले सर्वदा मेरी जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र जाँघोंकी, सुन्दर नृपुर पहननेवाले गुलककी, नृसतिपञ्च पैरोंकी ओर श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार अङ्गवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें । रमणीय आङ्गतिवाले मेरे लोमोंकी, रात्रिके समय सुधामिक, दिवसके समय सत्यसंध, भोजनके समय सुन्दर वाण धारण करनेवाले, गमनके समय सुन्दर वाणी बोलनेवाले और सब समय लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें शत्रुघ्नकवच कड़ सुनाया । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखभागी होते हैं ॥ ७७ ॥ यह कपच बड़ा सुन्दर, गंगलप्रद तथा पुत्र-पौत्र बड़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोत्रका पाठ करनेवाला प्राणी जो-जो वस्तुयें चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है । मेरी बात सच मानो । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मारुतेशं पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥
 पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सौमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥
 पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वथोत्तमम् ॥८४॥
 पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववांछितदायकम् । एवं षट् कवचान्यत्र पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥
 पठनं षट्कवचानां श्रेष्ठं मोक्षैकसाधनम् । ज्ञात्वाऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्यं यः पठनं सदा ॥८६॥
 अशक्तेनात्र चत्वारि पठनीयानि सादरम् । हनुमतश्च सौमित्रेः सीताया राघवस्य च ॥८७॥
 हमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां च पठने मानवस्य च ॥८८॥
 न यद्यत्रावकाशश्चेत्तदा त्रीणि पठेन्नरः । मारुतेश्चाथ सीतायास्तथा श्रीराघवस्य च ॥८९॥
 त्रयाणां कवचानां च न पाठावसरो यदा । पठनार्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥
 मारुतेश्चाथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । नैकमेव पठेच्चात्र श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥
 अवकाशे कवचानां पटकमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यो नालसः कदा ॥९२॥
 यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुखाप्सये । मया विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मयेरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्यं स्वयां यद्यत्पृष्ठं तत्त्वमयोदितम् । अन्यतिंकचित्प्रवक्ष्यामि तत्पृष्ठाद्य सादरम् ॥९४॥
 गीतैः प्रवधैः श्रीरामः सदा गेयोऽत्र मानवैः । वीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृत्यान्यपि समाचरेत् ॥९५॥
 दशरथनंदनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्वा तथा रविकुलेति च ॥९६॥
 मंडनराजारामेति द्वाविंशाक्षरजपस्त्वपम् । मनुः सदा जपनीयो वीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥
 दशरथनंदन मेघश्याम रविकुलमंडन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोनैव कार्यो न्यासो जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मन्त्रेषु बोद्धव्यं मानवैर्भुवि ॥९८॥

भो चाहता है, सो उसे मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूमण्डलमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है । अतएव मनुष्यको अवश्य इसका पठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंकी चाहिए कि पहले हनुमतकवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें ॥ ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सौमित्रिकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह सब वांछित फल देनेवाले छः कवचोंका प्रतिदिन पाठ करते रहें ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ श्रेष्ठ और मोक्षका साधन है । ऐसा समझकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करते रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमानजी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करे । यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमानजी, सीता तथा रामके कवचका ही पाठ करें ॥ ८७-८८ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ८९ ॥ ९० ॥ जब समय मिले, तब छहों कवचोंका क्रमशः पाठ करे । आलस्यवश टाल न दे ॥ ९१ ॥ यदि किसी विशेष अड़चनके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तभीके लिए यह परिहार बतलाया गया है । यह सब समय और सबके लिए लागू नहीं है ॥ ९२ ॥ रामदासने कहा-हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनाया । अब और कुछ बातें बतला रहा हूँ, उन्हें आदरपूर्वक सुनो ॥ ९३ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि सदा गौतंकविता आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाया करें और वीणा आदि वाद्योंके साथ भक्तिपूर्वक नाचें ॥ ९४ ॥ पहले “दशरथनन्दन” ऐसा कहकर “मेघश्याम” फिर “रविकुलमण्डन” ऐसा कहकर “राजाराम” कहते हुए “दशरथनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम” इस मन्त्रका कीर्तन और जप किया करें ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ इस

रामजयेति चोक्त्वा तु त्रिवारं चात्र सुस्वरम् । रामेति द्वेऽक्षरे त्वन्ते सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥१९॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं कीर्तनाथं मयेति ॥२०॥

राम जय राम जय राम जय राम इति मनुः ।

मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जपाथं प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनाथं ज्ञातव्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥

एतेषामपि चेद्ग्रन्थाय मंत्राणां च जपः कृतः । तदा भस्मीभविष्यति तेषां पापानि वै क्षगात् ॥१०२॥

अन्यान् मंत्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेत्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥

तथा सीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्त्वयं स्मृतः ॥१०४॥

राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनायो मुहूर्मुहुः । वीणास्वरेण संयुक्तश्चासने गमनेऽपि च ॥१०५॥

श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसमकृत्वा रघुनाथनाम जपं निहन्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥१०६॥

त्रयोदशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभावहः । जपनीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽप्यं मुहूर्मुहुः ॥१०७॥

श्रीराम जय राम जय राम इति मनुः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मत्येऽमंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥

तस्मात्सदा जपनीयः सर्वासद्विप्रदायकः । अष्टादशाक्षरं मंत्रं त्वन्यं शृणु शुभावहम् ॥१०९॥

उक्त्वा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कौसल्यासुतेत्युक्त्वाथ राजारामेति वै ततः ॥११०॥

सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम इति मनुः ।

अष्टादशाक्षरश्चायं कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरसमेतश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥१११॥

रविवरकुलजातं वन्दे चेति प्रकीर्त्य च । सुरभूसुरेत्युक्त्वाऽग्रे गीत चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करते समय न्यास आदि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं हैरहती । इसी तरह आगे बतलाये जानेवाले मन्त्रोंकि भी विषयमें जानना चाहिए ॥६८॥ "रामजय" ऐसा तोन बार कहकर वीणाके स्वरसे "राम" इस दो अक्षरका उच्चारण करना चाहिए । यह चतुर्दशाक्षरात्मक मन्त्र मैते भक्तोंको कीर्तन करनेके लिए बतलाया है । "राम जय राम जय राम जय राम" यह मन्त्र है । मन्त्रशास्त्रमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं । किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥९९-१०१॥ यदि भक्तिपूर्वक इनका जप भी किया जाय तो अगभरमें जप करनेवालेके सारे पातक जल जायेंगे ॥१०३॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हें मै और भी बहुतसे मन्त्र बतलाऊंगा । 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' तथा 'सीतारंजन' और 'राजाराम' ऐसा कहे । यह उन्नीस अक्षरोंका मन्त्र है ॥१०४॥ १०५॥ 'राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम' यह मन्त्र है । अच्छी तरह मीठे स्वरसे बारम्बार इस मन्त्रका कीर्तन करता रहे । चलते-फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥१०५॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जयके बीचमें 'राम' इकीस बार नाम जपनेवाला मनुष्य करोड़ों जहाहत्याके पातक नष्ट कर देता है ॥१०६॥ यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र बड़ा कल्याणदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहें ॥१०७॥ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र है । लोगोंको उचित है कि इस मन्त्रको वीणा आदिके स्वरके साथ-साथ प्रोतिपूर्वक कीर्तन करें । मंत्रशास्त्रमें भी इस मंत्रका उल्लेख है ॥१०८॥ इसलिए सर्वदा इस मंत्रका जप भी करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है । अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मंत्र बतला रहा हूँ । वह भी बड़ा मंगलकारी है ॥१०९॥ 'सीतारंजन' ऐसा कहकर "मेघश्याम" फिर "कौसल्यासुत" कहकर "राजाराम" कहना चाहिए ॥११०॥ "सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम" यह मन्त्र है । इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए । कीर्तन वीणाके स्वर-के साथ तथा कोकिलके समान मीठे स्वरोंमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥१११॥ "रविवरकुलजात-

सप्तदशसुवणश्च राममंत्रस्त्वयं शुभः । कीर्तनीयः सुस्वरं हि वीणावाद्यस्वरादिना ॥११३॥
रविवरकुलजातं वन्दे सुरभूसुरगीतम् इति मनुः ।

विष्णुदासशृणुष्वान्यान् राममंत्रान् शुभावहान् । येषां स्मरणमात्रेण महत्पापं लयं ब्रजेत् ॥११४॥

कौसल्यासुतेत्युक्त्वाथ रामेति द्वेऽक्षरे तथा । तथा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः ॥११५॥

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभावहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥११६॥
कौसल्यासुतराम सीतारंजन मेघश्याम इति मनुः ।

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नरैः । सर्वपापक्षयकरः सर्वांचितदायकः ॥११७॥

दशरथनन्दनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्वा सीतेति द्वेऽक्षरे ततः ॥११८॥

रंजनेति ततश्चोक्त्वा राजारामेति वै ततः । विंशाक्षरमनुशायं महापातकनाशनः ॥११९॥
दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मनुः ।

अर्यं विंशाक्षरो मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणास्वरसमेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥

वन्दे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सीताकान्तमिति रणधीरमिति क्रमात् ॥१२१॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभावहः । कीर्तनीयो जनैभंक्त्या महामंगलकारकः ॥१२२॥
वदे रघुवीरं सीताकांतं रणधीरद्व इति मनुः ।

जय राम जय राम संकीर्त्यं सुस्वरं ततः । जय जयेति संकीर्त्यं रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं तृतीयः कथितो मनुः । कीर्तनीयो जनैनिर्त्यं महापातकनाशनः ॥१२४॥

जय राम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः सीताराघवेति पञ्चवर्णात्मकः स्मृतः । जपनीयः कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२५॥
सीताराघव इति मनुः

“वन्दे” इसका उच्चारण करके “सुरभूतुर्” ऐसा कहकर “गतम्” का उच्चारण करे ॥११२॥ सत्रह सुन्दर वणौं-
से इस शुभ राममंत्रको रचना की गयी है । लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे
इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥११३॥ “रविवरकुलजातं वदे सुरभूसुरगीतम्” यह मंत्रका स्वरूप है । राम-
दास कहते हैं कि हे विष्णुदास । अब मैं और और बहुतसे शुभ मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । जिनके
स्मरणमात्रसे बड़े बड़े राप भी नप्त हो जाते हैं ॥११४॥ “कौसल्यासुतं” ऐसा कहकर ‘राम’ इसका उच्चारण
करे । तदनन्तर “सीतारंजन” और उसके बाद “मेघश्याम” कहे ॥११५॥ यह षोडशाक्षर मंत्र बड़ा शुभ है ।
इसीलिए लोगोंको चाहिए कि मीठों आवाजसे वाणा आदि वाद्योंके साथ-साथ इसका कीर्तन करे ॥११६॥
“कौसल्यासुत राम सीतारंजन मेघश्याम” यही मंत्रका स्वरूप है । इस षोडशाक्षर मंत्रका लोग सर्वदा कीर्तन
करें । वयोंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारको अभिलिप्ति कामनाओंका पूर्ण करनेवाला महामंत्र
है ॥११७॥ “दशरथनन्दन” ऐसा कहकर पहले “मेघश्याम” और उसके बाद “सीता” इन दों अक्षरोंको
कहकर “रञ्जन” ऐसा कहते हुए “राजाराम” कहे । यह दोस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका
नाशक है ॥११८॥११९॥ “दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारञ्जन राजाराम” यही इस मंत्रका स्वरूप है ।
भक्तोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशाक्षर मंत्रका मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके
साथ कीर्तन करें । वयोंकि यह बड़ा पुण्यदायक मंत्र है ॥१२०॥ “वन्दे वीरं रघुवीरम्” ऐसा कहकर “सीताकान्तम्”
तथा “रणधीरम्” ये वाक्य कहें ॥१२१॥ यह परम सुखदायक चतुर्दशाक्षरात्मक राममंत्र है । लोगोंको उचित
है कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका भृत्यपूर्वक कीर्तन करें ॥१२२॥ “वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणधीरम्”
यह इस मंत्रका स्वरूप है । “जय राम जय राम” ऐसा कहकर “जयजय” ऐसा कहते हुए “राम” ये दो
अक्षर कहें । “जय राम जय राम जय राम” यह इस मंत्रका स्वरूप है । चतुर्दशाक्षर मंत्रोंमें यह तीसरा
मंत्र है । लोगोंको चाहिए कि महापातकोंका नाश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥१२३॥१२४॥

भजेति द्वेष्करे पूर्वं सीताराममिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेष्करे पुनः ॥१२६॥
ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुश्चाय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२७॥

भज सीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममिति च कीर्तयेत्सुस्वरं मुहुः ॥१२८॥
द्वादशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा जनैः । वीणावाद्यादिना पुण्यः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

रावणमर्दनेत्युक्त्वा रामेत्युक्त्वा ततः परम् । राघवेति ततश्चोक्त्वा वाली चेति ततःक्रमात् ॥१३०॥
मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामेति द्वेष्करे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णेण्ड्रितीयोऽयं मनुः शुभः ॥१३१॥

रावणमर्दन राम राघव वालीमर्दन रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सर्वदा मानवोत्तमैः । श्रीसीताराममिति च मानसेति ततः परम् ॥१३२॥
भजेति द्वेष्करे चोक्त्वा राममिति द्वेष्करे पुनः । राममिति द्वेष्करे च मंत्रोऽयं परमः शुभः ॥१३३॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं चतुर्थश्च मयेरितः । कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं वीणावाद्यपुरासरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राजारामेति वै ततः । अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽत्र सुस्वरः ॥१३५॥
सीताराम जय राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वन्दे राममिति क्रमात् । जय रामं ततश्चोक्त्वा त्रयोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥
कीर्तनीयः सदा मत्येः सर्वपातकनाशनः । वीणावाद्यादिना नित्यं द्वितीयोऽयं मनुः स्मृतः ॥१३७॥

श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम् इति मनुः ।

मां पाद्यतीति चोक्त्वादौ दीनं राघव चेति हि । त्वत्पद्युगलीनं वै चेत्येष पोडशाक्षरः ॥१३८॥

‘सीताराघव’ यह पंचवणीत्मक राममंत्र है । पूर्ववत् मीठे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप करे ॥१२५॥ “सीताराघव” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “भज” यह शब्द कहकर “सीतारामम्” कहे । उसके बाद “मानस” यह शब्द कहकर “भज राजारामम्” ऐसा कहे । यह पंचदशाक्षरात्मक राममंत्र है । इसे भी जपे या मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करे ॥१२६-१२८॥ “भज सीतारामं मानस भज राजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “श्रीसीतारामम्” ऐसा कहकर “वन्दे” कहे और उसके बाद “श्रीराजारामम्” कहकर इस मंत्रका कीर्तन करे । यह द्वादशाक्षरात्मक मंत्र है । “श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । लोगोंको उचित है कि सब प्रकारकी कामनाये पूर्ण करनेवाले इस मंत्रका जप और कीर्तन करें ॥१२६॥ पहले “रावणमर्दन” फिर “राम” उसके बाद “राघव” फिर “वालीमर्दन” तदनन्तर “राम” ऐसा कहे । अष्टादशाक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है । “रावणमर्दन राम राघव वालीमर्दन राम” यह इस मंत्रका स्वरूप है । सज्जनोंको चाहिए कि सर्वदा इस मंत्रका जप किया करे । पहले “सीतारामम्” उसके बाद “मानस” फिर “भज” और उसके पश्चात् “राजारामम्” ऐसा कहें । यह बड़ा पवित्र मन्त्र है ॥१३०-१३४॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मन्त्र है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए । श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीताराम जय” फिर “राजाराम” ऐसा कहे । यह दशाक्षर राममंत्र है । लोगोंको चाहिए कि मीठे स्वरसे इस मंत्रका भी कीर्तन किया करें ॥१३५॥ “सीताराम जय राजाराम” यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीतारामम्” फिर “वन्दे रामम्” और उसके बाद “जय राम” ऐसा कहें । यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र है । संसारके प्राणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नित्य इस मंत्रका कीर्तन करें ॥१३६॥ १३७॥ “श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्” यह मंत्रका स्वरूप है । पहले “मां पादि अति”

कीर्तनीयो मनुर्मत्येः सर्वपातककुंतनः । वीणावादास्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥
 मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।
 द्वितीयोऽयं मया प्रोक्तो मंत्रो वै पोडशाक्षरः ॥१४०॥
 जय जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् । समाक्षरमनुशायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥
 जय जय राघव इति मनुः ।
 जयजयेति संकीर्त्य तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुशायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥
 जय जय रघुवर इति मनुः ।
 त्वं मां पालयेत्युत्वा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुशरमनुशायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥
 वीणावादास्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥
 त्वं मां पालय सीताराम इति मनुः ।
 सीताराम जयेत्युक्त्वा मनुः पडक्षरः स्मृतः । कीर्तनीयः सदा मत्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४५॥
 सीताराम जय इति मनुः ।
 श्रीसीतारामेति मनुर्ज्ञेयः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मन्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥
 श्रीसीताराम इति मनुः ।
 सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।
 सीताराम इति मनुः ।
 श्रीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्वयक्षरो मनुः ॥१४७॥
 श्रीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।
 राकारो बिंदुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥
 राम इति मनुः ।
 रामजयेति चोक्त्वाऽदौ सीतारामेति वै ततः । राघवेति ततश्चोक्त्वा मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१४९॥

फिर "दीनं राघव" इसके बाद "त्वत्पदयुगलीनम्" ऐसा कहे । यह पोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि बाजों और कोकिला जैसे मीठे तथा ऊचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है ॥ १४० ॥ पहले 'जय जय' ऐसा कहकर "राघव" कहे । यह सप्ताक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ 'जय जय राघव' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे । यह अष्टाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए ॥ १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे । यह नवाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये । क्योंकि यह बड़े-बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" यह पडक्षर राममन्त्र है । संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि बाद्योंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें । "सीताराम जप" यह मन्त्रका स्वरूप है । "श्रीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राम-मन्त्र है । यह भी महान् पातकोंका नाशक है । इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "श्रीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है । "श्रीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है । "राम" यह द्वयक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "श्रीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है । राकारको बिंदुयुक्त (राम) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र हो जाता है । लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनंदनेति रघुकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्वा कौसल्येति ततः परम् ॥१५०॥

विश्रामेति ततश्चोक्त्वा पंकजलोचनेति च । रामेति द्वेष्करे चापि शृष्टाविंशाक्षरो मनुः ॥१५१॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । प्रोक्तः पातकविद्यंसी सर्ववाञ्छितदायकः ॥१५२॥

दशरथनंदन रघुकुलभूषण कौसल्याविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्वेष्करे चापि मंत्रस्तदेकादशाक्षरः ॥१५३॥

कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं मंत्रो वीणास्वरेण च । महापातकहृत्प्रोक्तः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षरश्चायं मंत्रः प्रोक्तो मयाऽत्र हि । द्वितीयः परमः श्रेष्ठो महापातकनाशनः ॥१५५॥

पञ्चवटीस्थितेत्युक्त्वा रामजयजयेति च । दशरथनन्दनेति रामेति द्वेष्करे तथा ॥१५६॥

एकविंशाक्षरश्चायं कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मत्यैश्च महापातकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनंदन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेत्युक्त्वा बालं वन्दे त्विति क्रमात् । रामं घननीलमिति मंत्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥

तृतीयोऽयं मया प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः । वीणावाद्यस्वरेण्व महापुण्यविवर्द्धनः ॥१५९॥

दशरथसुतवालं वन्दे रामं घननीलमिति मनुः ।

कोदंडखण्डनेत्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौसल्यासुत रामेति सीतारंजन चेति वै ॥१६०॥

राजारामेति वै चोक्त्वा षेकोनत्रिंशत्वर्णकः । कीर्तनीयो मनुश्चायं वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदंडखण्डन दशशिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

चाहिए कि इस एकाक्षर मन्त्रका केवल जप करें, कीर्तन नहीं ॥ १४८ ॥ "राम" यह एकाक्षर मन्त्रका स्वरूप है । पहले "राम जय" कहकर "सीताराम" और इसके बाद "राघव" ऐसा कहे । यह एकादशाक्षररात्मक राममन्त्र है ॥ १४९ ॥ "राम जय सीताराम राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पहले "दशरथनन्दन" फिर "रघुकुल" फिर "भूषण" फिर "कौसल्याविश्राम" फिर "पंकजलोचन" और इसके बाद "राम" ऐसा कहे । यह अटाईस अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है । "दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौसल्याविश्राम पंकजलोचन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" ऐसा कहकर "राघव" और उसके बाद "राम" ऐसा कहे । यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है । "सीताराम जय राघव राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करें । क्योंकि सब प्रकारकी कामनायें इससे पूर्ण हो जाती हैं ॥ १५४ ॥ 'पञ्चवटीस्थित' ऐसा कहकर "राम जय जय" और उसके बाद "दशरथनन्दन राम" ऐसा कहे । यह एकविंशाक्षर राममहामन्त्र है । इसका भी मीठे स्वरसे कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह महामन्त्र बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट कर देता है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ 'पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम' यह इस एकविंशाक्षर राममन्त्रका स्वरूप है । "दशरथसुत" ऐसा कहकर "बालं वन्दे" और इसके बाद "रामं घननीलम्" यह कहे । यह षोडशाक्षर राममन्त्र है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट करनेवाला महामन्त्र है । हसे भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । क्योंकि यह अतिशय पुण्यवर्धनकारी मंत्र है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ "दशरथसुतवाल वन्दे रामं घननीलम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "कोदंडखण्डन" ऐसा कहकर "दशशिरमर्दन" इसके बाद "कौसल्यासुत राम सीतारंजन" और "राजाराम" कहे । यह मन्त्र एकोनत्रिंशाक्षररात्मक है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदंडभंजनेत्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौसल्येति ततश्चोक्त्वा विश्रामेति ततः परम् ॥१६२॥
सीतारंजनेति ततो राजारामेति वै ततः । सप्तविंशाक्षरश्चायं मनुः प्रोक्तः शुभप्रदः ॥१६३॥

कोदंडभंजन रावणमर्दन कौसल्याविश्राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

कोदंडखंडनेत्युक्त्वा वालीताडन चेति वै । लंकादाहनेति तुवः पापाणतारणेति च ॥१६४॥

रावणमर्दनेत्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूपणेति ततश्चोक्त्वा कौसल्येति ततः परम् ॥१६५॥

विश्रामेति ततश्चोक्त्वा सीतारंजन चेति वै । राजारामेति वै चोक्त्वा पञ्चाशदक्षरो मनुः ॥१६६॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । मन्त्राणां हि विष्णुऽयं महापातकनाशनः ॥१६७॥

कोदंडखंडन वालीताडन लंकादाहन पापाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण

कौसल्याविश्राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मंत्राः सन्ति शिष्य सहस्रशः । सहस्रवर्षपर्यन्तं कस्तान् दक्षुं भवेत् क्षमः ॥१६८॥

एते सर्वे कीर्तनाया वीणावाद्येन सुस्वराः । इमे मन्त्राः जपनीयान ज्ञेया मानवोत्तमैः ॥१६९॥

मंत्रशास्त्रेषु ये प्रोक्तारते जप्त्या एव मानवैः । ते मन्त्राः कीर्तनीयान कीर्तनीयास्तिव्यमेस्मृताः १७०॥

एतान् मंत्रान् पुरस्कृत्य प्रवच्या विविधाः शुभाः । रचनीया वुद्धिमद्विनानामापाभिरादगत् ॥१७१॥

ये ये नोक्ता मया मन्त्रास्तान् युक्त्या रचयेत्तरः । इनने नैव दोषोऽस्मित तेषुष्टुप्ते जायने हरिः ॥१७२॥

मन्त्रैः प्रवधैः काव्यैश्च स्तुतिमिः कीर्तनादिभिः । ग्राचीनैर्वा कल्पितैर्वा रामो गेयः सदानरैः ॥१७३॥

येन केन प्रकारेण कार्यं राघवचितनम् । पापराशिः क्षणःदग्धा श्रीरामचितनेन हि ॥

भवत्यत्र न सदेहः पावकेन यथा कुटी ॥१७४॥

दंमेन वातिभवत्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन पापं हुतं भवेत् ॥१७५॥

स्वरसे कीर्तन करना चाहिए ॥ १५६ ॥ १६० ॥ ‘कोदंडखण्डन दशशिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारंजन राजाराम’ यह इस मन्त्रका स्वरूप है। “कोदंडभंजन” कहकर “रावणमर्दन” इसके बाद “कौसल्याविश्राम” और “सीतारंजन राजाराम” कहे। यह सप्तविंशाक्षरात्मक शुभ राममन्त्र है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ “कोदंडभंजन रावणमर्दन कौसल्या विश्राम सीतारंजन राजाराम” यह इस मन्त्रका स्वरूप है। “कोदंडखण्डन” कहकर “वालीताडन” और इसके बाद क्रमशः “लंकादाहन” “पापाणतारण” “रावणमर्दन” “रविकुलभूषण” “कौसल्याविश्राम” और “सीतारंजन राजाराम” ऐसा कहे। यह पञ्चाशदक्षरात्मक राममन्त्र है। इसे भी वीणा आदि वाजोंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए। यह मन्त्र सब राममन्त्रोंसे श्रेष्ठ है और बड़े-बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६३-१६६ ॥ “कोदंडखण्डन वालीताडन लंकादाहन पापाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौसल्याविश्राम सीतारंजन राजाराम” यह इस मन्त्रका स्वरूप है। हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं। जिन्हें कोई हजारों दर्ष तक कहता जाय, फिर भी पूरी तीरसे नहीं कह सकता ॥ १६७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए। श्रेष्ठ मनुष्योंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं, बल्कि कंतन करनेके लिए हैं। इनके अतिरिक्त मन्त्रशास्त्रोंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, कंतन करनेके लिए नहीं। वुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्हीं मन्त्रोंके आघारपर विविध भाषाओंमें विविध प्रकारके प्रवन्धोंकी रचनाः करें ॥ १६८-१७० ॥ मैंने जिन-जिन मन्त्रोंको नहीं बतलाया है, उन्हें भी वुद्धिमान् लोग चहें तो बनाकर काष्ठमें ला सकते हैं। उन मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रमन्त्र होते हैं ॥ १७१ ॥ मन्त्र, प्रवन्ध, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हों या अनोन्योंसे नये बनाये गये हों, उनका कीर्तन करना चाहिए। किसी भी प्रकारसे रामका स्मरण करना जहरी है। क्योंकि रामका द्यात्र करनेमें मारी पापराशि उसां तरह क्षगभरमें जल जाती है। जैसे फूसकी कुटीमें आग लगती है तो लगभरमें उसे जलाकर भस्म कर देतो है ॥ १७२-१७४ ॥ दम्भसे, भक्तिसे, निष्काम या सकाम जिस किसी तरह भी रामनामका कीर्तन करनेसे पाप जल जाते हैं ॥ १७५ ॥

यथा वह्निस्तूलराशि स्पर्शितः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव खणात्तद्वम संशयः ॥ १७६ ॥
मंत्रैः प्रवन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्रवर्णनैः

अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पतैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥ १७७ ॥
विनाशयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १७८ ॥
आश्रयेणापि या निन्दा कृता श्रीराघवस्य च । सा भवेन्नरकायैव नात्र कार्या विचारणा ॥ १७९ ॥
किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तर्मवेन्मानवस्य किम् ॥ १८० ॥
रामप्रीतियुतस्यात्र मूर्खस्यापि नरस्य च । तद्वापाकृतस्तुत्यादैः प्रसन्नो जायते हरिः ॥ १८१ ॥
रामचन्द्रस्य प्राप्त्यर्थं यत्कृतं मानवैभूति । तेनातितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १८२ ॥

रामो गेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवानीयोऽत्र रामः ।

ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दश्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥ १८३ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्मन्त्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
लक्ष्मणादीनां कवचादिनिरूपणं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

पोडशः सर्गः

(हनुमत्पताकारोपण व्रत)

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यस्वया पृष्ठं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्वदस्व वदामि ते ॥ १ ॥
विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं समाचरेत् । तत्त्वं वद महाभाग यद्यस्ति तत्सविस्तरम् ॥ २ ॥
श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधीः । चतुर्भिर्वाजिभिर्युक्तं तथा क्षौमपताक्या ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी रुईकी राशिको अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे या विना कामना होके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिको भस्म कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रोंसे पूर्ण काव्योंसे या अपने बनाये अतिब्रशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन क्या जाता है तो भी भगवान् प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७७ ॥ विना किसी आघारके भवने काव्योंसे रामकी स्तुति करनेसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं । यदि रामका आघार लेकर काव्य बनाया जाय और उसमें भगवान् की निन्दा की जाय तो वह नरकका ही साधन होता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं है तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे मूर्ख ही हो, किन्तु वह यदि अपनी टूटी-फूटी भाषामें भगवान् का गुण गाता है तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजीकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा रामका गुण गायें, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ज्ञान करें, और संसारके प्रथेक प्राणीमें भगवान् की अलौकिक ज्योतिका दर्शन करें ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्मन्त्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहूँ ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोंको व्या-व्या विधान करना चाहिए, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समायुक्तं किंकिणीनादनादितम् । संपादितेष्व सम्यग्वै धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ४ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् शतमष्टोचत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं फलप्रदम् ॥ ५ ॥
रामायणं भवेन्नूर्तं नात्र कार्या विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमथोच्यते ॥ ६ ॥
एवं त्वया यथा पृष्ठं मया तत्ते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किंचिद्वतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामस्त्रिकृटादौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मार विनतासुतम् ॥ ८ ॥
तदाऽसौ काशयपो वीरः समागत्य रणागणे । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामिततेजसे ॥ ९ ॥
निवार्य यज्ञगास्त्रं तन्मेघनादसमीरितम् । तुष्टाव रघुवीरं तं ससैन्यं च सलक्षणम् ॥ १० ॥
उवाच ग्रणिपत्याय रामभद्रं खगेश्वरः ।

गरुड़ उवाच

आश्र्व्यमिदमत्यंतं यद्ग्रवानस्मरद्वि माम् ॥ ११ ॥

सति वीरे महारुद्रे सगगे श्रीहनुमति । सुग्रीवे च नले नीले सुषेणे जाम्बवत्यपि ॥ १२ ॥
अङ्गदे दधिवक्त्रे च तारे च तरले तथा । मैंदे सति महावीर्येऽक्षिमेऽत्रास्ति प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीराम उवाच

भवद्वीतिसुरागम्य विद्रुताश्च शुजङ्गमाः । एतेषु सत्सु वीरेषु किंसु सैन्यमपीडयन् ॥ १४ ॥

गरुड़ उवाच

रामदेव महाबाहो कपीनां चरितं श्रृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वात्र गर्हणम् ॥ १५ ॥
साक्षात्त्वं भगवान्विष्णुलङ्घमीत्तु जनकात्मजा । सौमित्रिः फणिराजोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह चार घोड़ों जुते और रेशमी पताकासे सुशोभित रथ क्यावाचक आह्याणको दान दे । विविच प्रकारसे अलंकृत गौका दान करे । इसके बाद एक सौ आठ आह्याणोंको भोजन कराये । जो प्राणी आनन्दरामायण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनेका फल प्राप्त होता है । इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए । जिसमें श्रीरामचन्द्रजीका निवास हो, वही रामायण है अथवा जिसमें राम विद्यमान रहें, वह रामायण है ॥ ३-६ ॥ इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । विष्णुदासने कहा—हे रुद्र ! अब मुझे हनुमानजीका भी शुछ ध्रत बतला दीजिए ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम त्रिकूट पर्वतपर नागपाशमें बैंब गये थे, उस समय उन्होंने नारदके कथनानुसार गरुड़का स्मरण किया । उसी समय गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने संग्रामभूमिमें भगवान्को प्रणाम किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्दर मेघनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण करके समस्त सेना और लक्षण सहित रामकी स्तुति की । फिर प्रणाम करके गरुड़जी भगवान् रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो ! यह सोचकर मुझे आश्र्व्यं होता है कि श्रीहनुमान्जीके रहते हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अतिरिक्त सुग्रीव, नल, नील, सुषेण, जाम्बवान्, अङ्गद, दधिवक्त्र, तार, तरल, मैद आदि वीर थे । इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्जीको मुझे स्मरण करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके भयसे सब सर्व भाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वयं उनके पाणिमें बैंब गये थे ॥ १४ ॥ गरुड़जी बोले—मैं आपको बानरोंका चरित्र सुनाता हूं, सुनिए । यद्यपि यहाँ बहुतसे आत्मीय बानर बैठे हैं, फिर भी मैं कहूँगा । इन लोगोंके चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न मानें ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्

सुग्रीवो वीरभद्रोऽयं शभुरेप स्मृतो नलः । विद्वा दाशरथे नूनं गिरिशो नील एव च ॥१५॥
 महायशः सुषेणोऽयं जांघवांश्चाष्ट्यजैकपात् । अहितुष्ट्यस्त्वंगदोऽन्नदधिदक्त्रः पिनाकधूक् ॥१६॥
 अयुताजित्त्वयं तारः स्थाणुश्च तरलो मतः । मैदो भर्गतनुः साक्षात् हनुमान् भगवान् स्मृतः ॥१७॥
 अवतीर्णा महारुद्रास्त्वदर्थं रघुनन्दन । अवसन् सर्वैरेषेषु नानापर्वतमध्यतः ॥१८॥
 धृत्वा च कपिरुपाणि अवतेरुम्हीतले । सर्वेऽपि कपितां प्राप्ताः कारण तद्वच्चीमि ते ॥१९॥
 पुरा देवासुरैः सिंधोर्मथिता व्याधयोऽभवन् । नानापीडाकराः सर्वा लक्ष्मिस्फोटकादयः ॥२०॥
 तर्तरेव व्याधिभिः सर्वं पीडितं जगतीतलम् । क्रपयोऽपि नृपालाश्च ब्रह्माण शरणं ययुः ॥२१॥
 उच्चुश्च जगतां नाथं ब्रह्माणं कमलोद्धवम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ व्याधिभ्यो जगतीमिमाम् ॥२२॥
 पीडितां दारुणैर्दैपिज्वराद्यैश्च महोद्धवणैः । त्रिदोषैर्जरीभूतां विभ्रमैव्याकुलोकृताम् ॥२३॥
 औषधानि न सिद्ध्यन्ति मंत्रयंत्राणि चैव हि । पीडयन्ति महारोगा मानवान्नाशकारिणः ॥२४॥

एतचे कथितं सर्वं ब्रह्मस्त्वत्पुरतः सुधीः ॥२५॥

तत्त्वेषां वचनं श्रुत्वा रुद्रात्संप्रार्थ्यदिधिः । तेऽपि श्रुत्वा ब्रह्मवावयं रुद्रा एकादशामलाः ॥२६॥
 समाश्वास्य विरिचिते वीरभद्रादयः सुराः । संभूय वानरेष्वेव सुग्रीवप्रसुखा इमे ॥२७॥
 पर्वटन् पर्वताग्राणि मण्डलानि च सर्वशः । नादयन्तो जगतसर्वं भुप्भुकारः सुदरुणैः ॥२८॥
 श्वेडितैः क्रीडनैस्तेषां व्याधयो नाशमाप्नुयुः । ततस्तु सकलां दृष्ट्वा वानरेष्वैष्टां भुवम् ॥२९॥
 तुतोप भगवान्ब्रह्मा ददी तेष्यो वरान् वहन् ।

ब्रह्मोवाच

युष्मास्वपि च मुद्राऽस्तु मृतमंजीवनी कला ॥३०॥

आज्ञाऽस्तु सर्वजगति वेगोऽस्तु मनमः सप्तः । युष्मान्मरंति ये मत्याः पूजयन्ति भवत्तन् ॥३१॥

हैं, श्रीसीताजी लक्ष्मी, लक्ष्मण शेष भगवान्, ये सद्य वानर रुद्रगण, सुग्रीव वीरभद्र और नल साक्षात् शिव-जीके अंशज शंभु हैं। हे दाशरथे ! ये नील भी शिवजीके अंशज गिरिश हैं। इसी तरह महायशस्त्री सुषेण महायशा, जाम्बवान् अजैकपात्, अङ्गौर, अहितुष्ट्य, दधिदनव, पिनाकधूक्, तार, अयुताजित, तरल स्थारा, मैद भर्गतनु और हनुमानजी साक्षात् शिव हैं ॥१६-१९॥ ये ग्राम्ही रुद्र आपके लिए उत्पन्न होकर सब वेषोंमें अनेक पर्वतोंपर रहते थे ॥२०॥ किन्तु अब वानरका रूप घरण करके इस पृथ्वीतलपर आये हैं। ये सब वानर क्यों हूए, इसका कारण भी मैं आपको बतला रहा हूए ॥२१॥ एक समय देवताओं तथा दैत्योंने मिल-कर समुद्रका मन्यन किया । उससे अनेक दुःख देनेवाले लूतम् और विस्लोट आदि वहुतसे रोग उत्पन्न हुए ॥२२॥ उन रोगोंमें तीनों लोक संकटमें पड़ गये । ऐसी अवस्थामें बहुतसे ऋषि और देवता एकत्र होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और कहने लगे—हे जगन्नाथ ! इन दारुण व्याधियोंसे इस विश्वकी रक्षा करिए ॥२३॥२४॥ संसारके प्राणियोंको उत्तर आदि भवद्वार रोगों और वात, पित्त तथा कफ इन तीन दोषोंने धेर लिया है । इनकी शान्तिके लिए जिस किसी औषधितथा यंत्र-मंत्र आदिका प्रयोग किया जाता है, वह भी सफल नहीं हो पाता । मनुष्योंका नष्ट करनेवाले रोग सदैव उन्हें सताते रहते हैं ॥२५॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह मैंने लोगोंके कष्ट आपको कह सुनाये ॥२७॥ उनकी ऐसी वात सुनकर ब्रह्माजीने ख्योंसे प्रार्थना की । ब्रह्माक्षेत्र सुनकर वे वीरभद्र आदि एकादश रुद्रगण ब्रह्माको सान्त्वना देकर सुग्रीव प्रभूति वानर होकर बड़े-बड़े पर्वतों तथा जङ्गलोंमें मण्डल बाँधकर धूमते हुए अपने दारण शब्द तथा कीड़ासे उन व्याधियोंको नष्ट करने लगे ॥२८-३०॥ इसके बाद समस्त पृथ्वीको वानरोंसे वेष्टित देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुतसे वरदान दिये । ब्रह्माजीने कहा कि तुम लोगोंकी मुद्राओंमें अमृत संजीवनी नामकी कला विद्यमान रहेगी ॥३१॥३२॥ तुम्हारा वेग मनके समान होगा । जो लोग तुम्हारे

पताका विविधाः कृत्वा चित्रतोरणसंयुताः । भक्ष्यभोज्यानि खाद्यानि लेघ्यं पेयं च सर्वशः ॥३४॥
युष्मानुदिश्य ये मत्या जुह्नित हि हुताशने । इत्रिः पुण्यतमं रुद्रास्तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥३५॥
पायसेनैव साज्येन तथैव तिलसंपिणा । यजति भवतां वृंदं ते यांति परमं पदम् ॥३६॥
एवं वै रुद्रमखिलं गाथा वैश्वानरीस्तथा । मानस्तोकेति वा मत्रो मनोज्योतिरथापि वा ॥३७॥
भवतां यजनं चात्र गायत्र्या वा प्रकीर्तितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥
व्याधिं मुक्त्या सुखासीनास्त्वन्ते यात्यक्षयं पदम् ।

गरुड़ उवाच

इति राम पुरावृत्तं कपीनां कथितं मया ॥३९॥

एषु रुद्रेषु सर्वेषु हनुमान्मद्रनायकः ॥४०॥

विधानं तत्र कर्तव्यं यत्रास्ते हनुमत्तनुः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च पतिष्ठिता ॥४१॥

तत्र सर्वे प्रकर्तव्यं विधानं सुरसत्तमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कपिपूजनम् ॥४२॥

पताकाः कीटशीस्तत्र कति कार्या विहङ्गम । हवनं कति संख्याकं किं द्रव्यं कोजपोऽत्र वै ॥४३॥

किं दानं केन विधिना तन्मसाचक्षत् सुवत् ।

गरुड़ उवाच

जनमारे समुत्पन्ने ग्रामे वा पचनेऽपि वा ॥४४॥

प्रभवत्यौषधं नैव मणिमन्त्रपुरःक्रियाः । विधानं तत्र कर्तव्यमेकादश्यां तिथौ नृप ॥४५॥

प्रातःकाले समुत्थाय कृतशौचो द्विजोत्तमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकसंस्कृतः ॥४६॥

एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्सोपवासान्निमन्त्रयेत् । जागरस्तेस्तु कर्तव्यः सर्वोपिस्करसंयुतः ॥४७॥

आदौ तु मण्डपं कृत्वा सर्वेत्रापि सुशोभितम् । पुण्यमण्डपिकामध्ये मण्डपे स्थापयेद्वरान् ॥४८॥

श्रीरामकी पूजा और स्मरण करेंगे । विविध रङ्गों की पताकायें, चित्र-विचित्र तारण, तरह-तरह के भक्ष्य-भोज्य तथा पेय पदार्थ आपके उद्देश्य से जो अग्निमें हवन करेंगे, उनकी रुद्रसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३३-३५ ॥ जो लोग धो मिलाकर खीरका हवन करते हैं, उनका परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार “एवं वै रुद्रमखिल” इस मन्त्र से अथवा ‘वैश्वानरा’ या ‘मानस्तोके’ इस मन्त्र तथा ‘मनोज्योति’ इस मन्त्र अथवा गायत्री मन्त्र से आपके लिए हवन करने का विधान है । जो लोग संसार में इस विधिका पालन करते हैं, वे सब प्रकार की व्याविधियोंसे मुक्त होकर अक्षय पद प्राप्त करते हैं । गरुड़जीने कहा-हे राम ! यह मिने बानरों का एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३८ ॥ इन ग्यारहों रुद्रोंमें हनुमानजी सबके मुखिया हैं । इसलिए ऊपर बतलाये हुए सब विधान उसी स्थान पर करने चाहिए, जहाँ कि हनुमानजी की मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजाने पूछा-हे पक्षिराज ! किस-किस प्रकार से कपिपूजन करना चाहिय ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें केसी पताका बनवाये, कितनी आहुतियाँ दे, किस मन्त्र का जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? से सुन्नत ! ये सब बातें हमें बतलाइए । गरुड़ने कहा-हे प्रभो ! जिस समय ग्रामीण या नागरिक मनुष्यों पर महामारी जैसी विपत्ति आ पड़े । मणि-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम न करे तो एकादशी तिथिको यह विधान सम्बन्ध करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उत्तम ग्राहण को चाहिए कि वह प्रातःकाल उठे । श्रीराम में तिल और अंवले लगाकर पवित्र जल से स्नान करे । इसके अनन्तर उपवास किये हुए ग्यारह ग्राहणों को निमन्त्रित करे और सब सामग्रिये एकत्रित करके उन लोगों के साथ रातभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओर से सुशोभित मण्डप तैयार करवाये और उसमें फूलों का एक छोटा-सा मन्दिर बनाकर श्रीराम

पंचामृतैस्तु स्नपनं रुद्रेभ्यः परिक्लिपयेत् । ततस्तु कुमुमैः पूजा शतपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥
 चन्दनं च सकर्मैरु रुद्रेभ्यो लेपनं वरम् । दशांगधूरमादद्याहौपैर्नीराजयेत्ततः ॥५०॥
 नैवेद्यं विविष्टं दद्यात्तावूलेनैव संपृतम् । एकादश पताकास्तु पटैः सुपरिक्लिपयेत् ॥५१॥
 या या यस्मै समुदिष्टा पताका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं तु तस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥
 एवं कृते विधाने च सुपताकासुतोरणैः । प्रातःकाले तु राजेन्द्र जागरांते द्विजोत्तमः ॥५३॥
 कृतस्नानो नदीतोये होमं कुर्यात्समाहितः । पायसेन तु साव्येन तथैव तिलसर्पिणा ॥५४॥
 अप्रुतं हवनं कृत्वा पुनः पूजां प्रकल्पयेत् । पताका हनुमद्वारे तस्यैन च निधापयेत् ॥५५॥
 राजद्वारे तु सौग्रीवीं सौपेणीमापणे न्यसेत् । नलनीलपताके च शिवद्वारे तु विनासेत् ॥५६॥
 तारस्य तरलस्यापि मैदस्य ह्यंगदस्य च । ग्रामाद्विश्वतुदिङ्गु मार्गेषु स्थापयेद्विष्टा ॥५७॥
 जलस्थाने जाववंतीं दाधिवक्त्रीं चतुष्पथे । स्थापयेत्परमां दिव्यां महावाद्यादिमंगलैः ॥५८॥
 द्वारदेशे जनानां च रुद्रमूर्तिं विलेखयेत् । चित्रितां पञ्चरण्णैश्च ग्रामसूत्रैश्च वेष्टयेत् ॥५९॥
 प्रत्यहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणतपेणम् । दद्वाद्वस्त्राणि ऋत्विभ्यो सालंकाराणि भूरिशः ॥६०॥
 छत्राणि करपत्रैश्च पादुकाश्च विशेषतः । धेनुं परस्त्रिनीं दद्वादाचार्यायि सवत्सक्षाम् ॥६१॥
 सदक्षिणां सवस्त्रां च सालंकारा गुणान्विताम् । द्विजाय महिषीं दद्यात्तथैव पृथिवीरते ॥६२॥
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च सप्त धान्यानि भूरिशः । लवण सघृतं देयं तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥
 शश्यादानानि भूरीणि छत्राणि विविधानि च । एतत्कृत्वा विधानं च राजा क्षेममवाप्नुयात् ॥६४॥
 रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणः । अश्वा हरनं शस्तं मानस्तोक इति स्फुटम् ॥६५॥

इति हनुमत्पताकाभिधानं व्रतम् ।

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
 हनुमत्पताकारोपणव्रतवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

बानरोंको स्वापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उन रुद्रोंको पंचामृतसे स्नान कराये और णातपत्र आदिके फूलोंसे विधिवत् पूजन करे । कपूर मिले हुए चन्दनका लेपन, दशांग धूरका आधारण और नीराजन करे । फिर ताम्बूलके साथ विविष्ट प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और बच्चे वस्त्रोंसे भ्यारह पताका बनवाये । जो पताका जिस रुद्रके लिए निर्धारित की गयी हो, उसमें उसका चित्र बनवाये ॥ ४९-५२ ॥ ये विविधायाँ करनेके अनन्तर सुन्दर पताका आदि समर्पित करे । वह ब्राह्मण सबेरे उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावधानतापूर्वक तिल और धी मिले खीरसे अग्निकुण्डमें दस हजार आहूतियाँ दे । इसके बाद फिर उन सबकी पूजा करे । हनुमानजीके द्वारपर हनुमानजीकी पताका, राजद्वारपर सुग्रीवकी पताका, आपण (बाजार) में सुषेणकी और शिवद्वारपर नल-नीलकी पताका स्वापित करे ॥ ५३-५६ ॥ तत्पश्चात् तार, तरल, मैद और अङ्गूष्ठकी पताकाओंको ग्रामके बाहर चारों दिशाश्वेषे स्वापित करे ॥ ५७ ॥ जलस्थानपर जाम्बवान् और चौराहेपर दविवक्त्रकी पताकाओंको विविष्ट वाद्योंकी उत्तिके साथ स्वापित करे । मनुष्योंके द्वारदेशपर पौच वणोंसे चिप्रित रुद्रमूर्ति बनाये और ग्रामसूत्रोंसे उसे परिवेषित करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समझदार लोगोंको चाहिए कि प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छी तरह भोजन करायें और ऋत्विजोंको विविष्ट आभूषण और वस्त्र दान दें ॥ ६० ॥ छत्र, पादुका तथा दूध देनेवाली सवत्सा गौ आचार्योंको दे । उस गौके साथ पर्याप्त दक्षिणा, अलंकार, वस्त्र आदि भी दे । उस यज्ञमें जो ब्राह्मण ब्रह्मा बना हो, उसे एक भेषजका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और जितने ब्राह्मण हों, उन्हें भी शश्यादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रयज्ञ करता है, उसका सब प्रकारसे कलाण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र अववा “मानस्तोके” यह मन्त्र जपना लाभकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत ‘ज्योत्स्ना’ भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण)

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास स्वया यथन्पृष्ठं तत्त्वमयेरितम् । रामाज्ञया तत्र प्रीत्याऽनन्दचारित्रमुत्तमम् ॥ १ ॥
 रामेणैव ममास्येन ततोपदिष्टमादरात् । त्वयस्तिर्थं रामसंप्रीतिस्तरमाद्रामेण मे द्विज ॥ २ ॥
 आज्ञापितं पूजनांते पुरा तत्र तपोबलान् । आनन्दगमचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥
 विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै मुहुः । त्वदर्थे पूजनांते मे दर्शनं दत्तवान्निजम् ॥ ४ ॥
 नवोत्तरशतश्लोकसाररामायणेन च । पुरा मे ग्रथितेनात्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥
 श्रीराघवोपदिष्टेन महामंगलदेन च । नवाधिकश्लोकसाररामायणेन च ॥ ६ ॥
 यद्यन्मया विस्मृतं च श्रुतं पूर्वकथानकम् । मम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुखनिर्गतम् ॥ ७ ॥
 ततो मया विष्णुदास राघवस्याज्ञया तत्र । शतकोटिमिताद्रामचरितात्मविच्य च ॥ ८ ॥
 सारं सारं च कथितं महामागलयकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

त्वथैतत्कथितं चेदमानन्दसंज्ञकं मम ॥ ९ ॥

श्रीरामचरितं रम्यं मम तोपार्थमुत्तमम् । शतकोटिमितात्मस्तिक कथितं च विविच्य च ॥ १० ॥
 अथवा भारतखण्डांतभग्नादुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शतकोटिमितं कृन्सनं मया रामायणं शुभम् ॥ ११ ॥

विविच्य ज्ञानदृष्टयाऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विशेषपात्स्मारितं चापि साररामायणश्रवात् ॥ १२ ॥
 रामोपदेशिताद्रम्यात्ततस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पात्रकापहे ॥ १३ ॥

कति काङ्डानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहा—हे विष्णुदास ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञासे अथवा यौं कहो कि साक्षात् रामचन्द्रजीने ही मेरे मुखसे कहा है । तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसीलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सूनानेकी आज्ञा दी थी । उन्होंने कहा था—यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासको सुनाओ । तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ ॥ १-४ ॥ रामचन्द्रजीके स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ नौ श्लोकोंमें रामायणका सार सुनाया था । जिन-जिन कथानकोंको मैं भूल गया था । वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके मुख्य-मुख्य अंश लेकर कहा है । विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये वह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी बतलाइए कि सीं करोड़ संख्यात्मक रामायणसे आपने कहाँ कहाँसे क्या-क्या अंश लेकर कहा है? ॥ ८-१० ॥ अथवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे—तूरी रामायण सीं करोड़ श्लोकोंकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उपदेश दिया है । हमें तो रामायणके सारका श्रवण

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षणि कांडानि शतकोटिभिते द्विज ॥१४॥

सर्गा नवतिलक्षाश्च ज्ञातव्या मुनिकीर्तिराः । कोटीनां च शतं श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥
विष्णुशास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि यज्ञां श्रीराघवेण हि । उपदिष्टं मदथैः हि साररामायणं शुभम् ॥१६॥
नवोत्तरशतश्लोकसंभितं च मतोहरम् । तत्र वदातुना पुण्यं वरं कौतूहलं मम ॥१७॥
श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोचयते रामकीर्तिरम् ॥१८॥
आविर्भूत्वा पूजनांते मद्भ्रे आत्मिः श्रिया । मां प्रोवाच रवुश्रेष्ठः प्रसन्नमुखपक्षः ॥१९॥

(अथ साररामायणम्)

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुध्वाद्य यत्सारं प्रोचयते तव । चरितं सकलं स्त्रीयं मया तत्र सविस्तरम् ॥ १ ॥
विष्णुदासाय शिष्याय मद्भक्तिनिरताय च । कथयस्व तथाऽन्यच्च ज्ञानादृदृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥
यथा भारतखंडान्तमर्गे चापि त्वयेक्षितम् । स्मरणार्थं त्वहं किंचित्तव वक्षपामि सादरम् ॥ ३ ॥
पार्वतीशिवसंवादः सूर्यवंशार्धपार्थिवाः । मन्त्रिप्रोहरणं लंकां रावणेन विसर्जनम् ॥ ४ ॥
दशरथविवाहश्च कैकेयै द्विवरार्पणम् । कैकेयै द्विजशापश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥
राजः शापो वैश्यहस्या शृण्यशृण्गार्थमुद्यमः । शृण्यशृङ्गमुनेस्तेजःप्रतापाद्विनाऽपितप् ॥ ६ ॥
पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयन् । अंतर्गर्भा नृपत्ल्यस्तासामासन्मुदोहदाः ॥ ७ ॥
ततो भूम्या ब्रह्मणा मे प्रार्थनं मंथराजनिः । चैत्रे मासि ममोत्पत्तिवंघुभिश्च हनूमता ॥ ८ ॥
बालकीडा मत्कृता च व्रतवंधस्ततो मम । वेदाभ्यासो वसिष्ठाच्च तीर्थयात्रा च वंघुभिः ॥ ९ ॥

करनेसे ही बहुत-सी बातें याद आ गयी थीं । उन्हींको रामकी आज्ञासे मैंने तुम्हें सुनाया है ॥१२॥१३॥ विष्णु-
दासने पूछा—उस शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें कितने काण्ड और कितने संग हैं ? सो कुपा करके हमें
बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणमें कुल नौ लाख काण्ड तथा नव्ये
लाख संग हैं ॥ १४ ॥ कुल मिलाकर उस रामायणमें सौ करोड़ श्लोक हैं ॥ १५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब
मैं आपसे वह रामायण सुनना चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीने आपको बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक
सौ नौ श्लोक हैं । कृपया अब मुझे वह सुनाइए । उसको सुननेके लिए मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥
श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । आज मैं तुम्हें वह
साररामायण सुनाऊंगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझसे कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन जब कि मेरा पूजन समाप्त
हो गया था, तब भगवान अपने तीनों भ्राताओंके साथ मेरे समक्ष आये । उन्होंने प्रसन्न होकर यही सार-
रामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोंका जो सार अंश है, सो तुमसे
कह रहा है । इसे विस्तृतरूपसे तुम विष्णुदास नामके अपने शिष्यको सुनाना । क्योंकि वह मेरी भक्तिमें
निमग्न है । इन चरित्रोंके अतिरिक्त तुमने अपने ज्ञानसे जो कुछ देखा-सुना हो या भारतखंडमें देखा हो,
वह सब भी उसे सुना देना । स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र में तुम्हें बतला रहा है ॥ १-३ ॥ शिव-पार्वती-
संवाद, बाधे सूर्यवंशज राजाओंका चरित्र, मेरे माता-पिताका हरण, रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना,
दशरथविवाह, कैकेयीको दो वरदान देना, कैकेयीके लिए ब्राह्मणका शार, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका
शाप, वंशयहत्या, शृण्यशृङ्गको लानेका उद्योग, शृण्यशृङ्गके प्रभावसे अस्तित्वारा महाराज दशरथको पायस
मिलना ॥ ४-६ ॥ उसके हृसे लगानेपर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चली जाना, रानियोंका
गर्भिणी होना, भूमिके साथ ब्रह्माका आकर मेरी स्तुति करना, मंथराकी उत्पत्ति, चैत्रमासमें अपने सब भाइयों
तथा हनुमान्द्रजीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बाललीलायें, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेदाध्ययन

विश्वमित्राद्बुद्धिं द्वा ताटिकामर्दनं बने । प्रारम्भो रणदीक्षायाः सुब्राह्मदर्दनं मखे ॥१०॥
 भारीचक्षेपणं चापि अहल्योद्धरणं मया । स्वयंवरं च शापश्च मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥
 नौकापेन हि गङ्गायां मदंग्रिक्षालनं कृतम् । शैवं धनुर्जामदग्न्यन्यस्तं भग्नं सभांगणे ॥१२॥
 सीतोत्पत्तिश्च सीताया लङ्घागमननिर्गमौ । वंशुनां मे विवाहात्र जामदग्न्यपराजयः ॥१३॥
 दीपावल्युत्सवशापि नृपैः पथि महारणः । जीवनं भरतस्यापि मङ्गावि मुनिनेरितम् ॥१४॥
 वृंदाशापः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । ततो महिनचर्या च गर्भाधानमहोत्सवः ॥१५॥
 नारदाये प्रतिज्ञा मे यौवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवरदानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥
 दर्शनं गुहकस्यापि सीतावाक्यं च जाह्नवीम् । भारद्वाजवाल्मीक्योदर्शनं च गिरौ स्थितिः ॥१७॥
 काकाक्षिभेदनं चापि राजश्च मरणं पुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥
 सीतायास्तिलकोऽरण्येऽनमूर्याभूषणार्पणम् । विराधमर्दनं मार्गे नानाऽश्रमविलोकनम् ॥१९॥
 अगस्तेश्वाय गृधस्य दर्शनं सांचमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः खरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥
 सीतादेहविभागश्च मारीचस्य वधो मया । सीताया दरणं लंकां संगरश्च जटायुषः ॥२१॥
 इन्द्रेण पायसं दत्तं सीतायै गिरिजेक्षणम् । कवंधमर्दनं मार्गे शर्वर्या पूजितस्त्वहम् ॥२२॥
 ततः सख्यं कपीद्रेण शिरशः क्षेपणं मया । छेदनं सप्ताढानां सपेण मालिका हता ॥२३॥
 बालेश्वर्तो मया तत्र सीताशुद्धयर्थमुद्यमः । हनुमताऽन्धितरणं लंकायां जानकीक्षणम् ॥२४॥
 मन्दोदरीसमुत्पत्तिर्वनपाक्षादिमर्दनम् । लङ्घादाहश्च देहान्तं कर्तुं सिद्धोऽभवत्कपिः ॥२५॥
 जाम्बूनदवृक्षशाखाकथाऽन्धेस्तरणं पुनः । बहुमुद्रादर्शनं च सेतुबन्धस्ततः परम् ॥२६॥
 विमीषणाभिषेकश्च विश्वनाथकथा शुभा । गंधमादनेशाख्यानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

भ्राताओंके साथ तीर्थयात्रा, विश्वामित्रसे धनुविद्याकी प्राप्ति, ताड़कासंहार, रणदीक्षाका प्रारम्भ, यज्ञभूमिमें सुब्राह्मका मर्दन, मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा अहल्याका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, अहल्याके शापकी विस्तृत कथा ॥७-११॥ गंगामें निषाद द्वारा मेरे पैर धोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए शङ्करजीका धनुष मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताकी उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस आना, मेरा तथा मेरे भ्राताओंका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥ १२ ॥ १३ ॥ दीपावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओंके साथ महान् संग्राम, भरतका पुतर्जीवन, वृन्दाका शाप, मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या, गर्भाधानमहोत्सव, ॥ १४ ॥ १५ ॥ युवराज न बननेके लिए नारदके समझ मेरी प्रतिज्ञा, मुझे युवराजपदपर अभियित्त करनेको तेयारियाँ, कैकेयीके वरदानसे दण्डक-बनगमन, निषादके साथ वार्तालिप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुछ मनोत्तियाँ, भारद्वाज और बालमीकि क्रृष्णके दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्तके नेत्रभेदन, अयोध्यामें महाराज दशरथकी मृत्यु, भरतजीका दर्शन और विसर्जन ॥ १६-१८ ॥ बनमें मेरे द्वारा सीताके माथेमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराधमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥ १९ ॥ अगस्त्य और गृधके दर्शन, साम्बदर्दन, शूर्पणखाका विरूपकरण, खर आदि राक्षसोंका संहार, साताके शारीरका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जटायुसंग्राम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पायस प्रदान, कवन्धमर्दन, शबरी द्वारा पूजित होकर सुग्रीवके साथ मित्रता, दुन्दुभीके अस्थिको केंकना, सात तालोंका भेदन, सर्पद्वारा मालिकाहरण, मेरे द्वारा बालिका संहार, सीताका पता पानेके उद्योगकी तेयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रलंघन, लंकामें जानकीजीका दर्शन, मन्दोदरीकी उत्पत्तिकथा, अशोकवनमें हनुमानजीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, लङ्घादहन, हनुमानजीका शरीर त्याग करनेका आयोजन, ॥ २०-२५ ॥ जाम्बूनद वृक्षकी शाखाका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसंतरण, बहुमुद्रादर्शन, सेतुबन्धन, विमीषणका अभिषेक, विश्वनाथकी कथा, गन्धमादन पर्वतस्य शिवजीका वृत्तान्त, राम-रावणसंग्राम, काल-

कालनेमिवधश्चाथ तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मंचकभंजनम् ॥२८॥
 कुम्भकर्णवधश्चापि मेघनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विष्वंसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥
 सीताया दिव्यदानं च स्वपुरीगमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं मम ॥३०॥
 उत्पत्ती रावणादीनामिंद्रजेतपराक्रमः । मानभंगो रावणस्य वालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥
 वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनूमतः । शापोऽपि वायुपुत्राच्च द्युगस्तेव विसर्जनम् ॥३२॥
 इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायात्रासमुद्योगः सरयूभेदनं ततः । मया स्ववाणरेखा च सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥
 कुम्भोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं च सुरभी केन मेऽपिता ॥३४॥
 चित्तामणेः शिवाल्लाभस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरंभो वाजिमेघस्य पृथ्व्यां वाजी विमोचितः ॥३५॥

तुरगाय ससैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥
 तमसातटशाला च कुम्भोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्ना मम स्तोत्रं मुनीरितम् ॥३७॥
 दिनचर्याध्वजारोपाववभृथोत्सवो मम । सीतादानं च तन्मुक्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥
 ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विशेषतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो मम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥

पक्षिणां नवकं स्तोत्रं जानक्या वर्णनं मया । देहरामायणं पत्न्यै मया कथितमुत्तमम् ॥४०॥
 दिनचर्या पुनर्में हि सीतालंकारवर्णनम् । पक्ववाचानां च विस्तारो जलकीडा च सीतया ॥४१॥
 माध्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूपणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥
 रात्रौ नानास्थलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । रुक्मिणोऽशमृतीनां न्यासाग्रे दानमपितम् ॥४३॥

नेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, मंचकभंजन, कुम्भकर्णवध, मेघनादमरण, होमविष्वंस तथा रावणवध, ॥ २६-२९ ॥ सीताकी शपथ, अयोध्या पुनरागमन, रणदीक्षाकी समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, रावण आदि-की उत्पत्ति और मेघनादके पराक्रमकी कथा, रावणका मानभंग, वालि-सुग्रीवके जन्मकी कथा, वायुपुत्रके जन्म-कर्मका वृत्तान्त, हनुमानजीके लिए वरदान, हनुमानजीके लिए शाप और अगस्त्यऋग्यिका विसर्जन, इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०-३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयूभेदन, मेरे द्वारा वाणकी रेखा खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए ब्रह्मा द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर अयोध्या वापस आना, ये इतनी कथायें यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेघ यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए धोड़ेका छोड़ा जाना, गङ्गाजीका मेरी सेना तथा धोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर धोड़ेका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तमसा-की तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५-३७ ॥ मेरी दिनचर्या, ध्वजारोपण, अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दस यज्ञोंका वर्णन, ये इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ३ ॥ इसके बाद मेरा स्तवराज, क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नौ पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जानकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहरामायणका वर्णन ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके अलङ्कारोंका वर्णन, पक्ववानोंका विस्तार और सीताके साथ जलकीडा ॥ ४१ ॥ तबनन्तर भोजन आदि मेरे मध्याह्नकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपलीके

ततो निजं रपत्नीभ्यो वरदानं मयाऽपितम् । गुणवत्यै वरदानं पिंगलायै वरार्पणम् ॥४४॥
सीतायाः प्रत्ययाथं च दिव्यदानं मया मुदा । कुरुक्षेत्रे उगस्तिपत्न्या संवादे जानकीजयः ॥४५॥
इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदाथं हि क्रीडाऽऽरामादिषु कृता । सीमंतोन्नयनादीनि नानाकर्माणि वै ततः ॥४६॥
विसर्जितश्च जनको वाल्मीकिराश्रमं मया । सीतया द्वे निजे रूपे कृतं मद्वाक्यगौरवात् ॥४७॥
अंगुष्ठयोग्यो लिखितः कैकेय्या रावणो महान् । लोकानां रजकस्यापि द्विपत्रादाद्विदेहजा ॥४८॥
मया रजस्तमोयुक्ता त्यक्ताऽनीतश्च तद्भुजः । गुप्तरूपेण पुत्रस्य कृतं गत्वा तु जातकम् ॥४९॥
शतयज्ञा मया गत्वा कृताः श्रीजाहृवीतटे । वाल्मीकिना लवानां च लवः पुत्रः कृतं परः ॥५०॥
तथोः कृतं तु मुनिना रामरक्षाभिमंत्रणम् । कमलानां च हरणे लवस्य विजयो महान् ॥५१॥
रामायणस्य अवणं पुत्रास्याभ्यां मयाऽध्वरे । युद्धं लवकृतं चाथ जलस्तस्याभिषेचनम् ॥५२॥
मम युद्धं कुशेनाथं सीतायाः शपथस्ततः । सीताया ग्रहणं चापि विशंत्या भूतलं पुनः ॥५३॥
ततो यज्ञसमाप्तिश्च वन्धुपूत्रजनिस्ततः । वालक्रीडोपनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥
वालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । सर्वेषां व्रतवंधाश्च तेषां यातास्ततः परम् ॥५५॥
इति जन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तिः पत्रिकया तत्पुरं गमनं मम । व्यग्रताऽसीत्पुरख्याणां दर्शनाद्यं तदा मम ॥५६॥
वंदितोऽहं नृपैः सर्वेस्तदा राजसभांगणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥
कुशकंठे चम्पिकया रत्नमालाविसर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चाथ पार्थिवानां सुनन्दया ॥५८॥
सुमत्या रत्नमालाया लवकण्ठे विसर्जनम् । उत्साहोऽथ विवाहस्य नानासम्मानपूर्वकः ॥५९॥
गमनं हि स्तुषाभ्यां च सीताया स्वपुरीं मम । निग्रहो जलदेवीनां वालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

लिए भूषणदान, बहुत-सी स्त्रियोंके साथ रात्रिके समय क्रीडा और सुवर्णमयी बोडश स्त्रियोंका दान, देवपत्नियोंके लिए मेरा वरदान, गुणवती और पिङ्गलाके लिए वरदान ॥ ४२-४४ ॥ सीताके विश्वासाथं मेरी शपथ, कुरुक्षेत्रमें अगस्त्यकी पत्नीके साथ बातचीतमें जानकीकी विजय, इतनी कथायें विलासकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ४ ॥ ४५ ॥ सीताकी गर्भकालीन इच्छा पूर्ण करनेके लिए बगीचे आदिमें विहार, सीमन्तोन्नयन आदि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनको वाल्मिकिके आश्रमपर भेजा जाना, मेरे कहनेसे सीताका दो रूप धारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके अद्वितीय अंगुष्ठके अनुसार कैकेयी द्वारा रावणका पूरा स्वरूप बनाया जाना, अपनी प्रजाके कतिपय लोगों और एक घोबीके मुखसे अपनी निन्दा सुनकर मेरे द्वारा सीताका परित्याग और उनकी भुजा काटकर मौगवाना, गुप्तरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर | बच्चेका जातकमं-संस्कार करना, गङ्गाजीके तटपर मेरे द्वारा सौ अश्वमेष यज्ञ सम्पादित होना, वाल्मीकि द्वारा जल-विन्दुओंसे लव नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि होना, फिर उन दोनों बच्चोंका वाल्मीकि द्वारा रामरक्षामन्त्रसे अभिमन्त्रित होना, कमलहरण करते समय लवकी एक बही विजय ॥ ४८-४९ ॥ यज्ञभूमिमें लवकुशके मुखसे मेरा रामायणश्रवण, उनके साथ मेरे संनिकोंका युद्ध और जलके घड़ोंसे लवको स्नान कराया जाना, मेरे साथ कुशका संग्राम, सीताकी शपथ, पृथ्वीमें प्रवेश करती हुई सीताको मेरे द्वारा पुनः ग्रहण करना, यज्ञसमाप्ति, मेरे आताओंकी पुत्रोत्पत्ति, बच्चोंकी बालक्रीडा, बच्चोंका उपनयनसंस्कार, बच्चोंका वेदाध्ययन, बालकोंके शुभ चित्तका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रोंका लालन-पालन, सब पुत्रोंका व्रतवंघ (उपनयन-संकार) ॥ ५२-५५ ॥ ये इतनी कथायें जन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तिकी पुत्रोंके स्वयंवरका समाचार पाकर मेरा प्रस्थान, उस पुरीकी स्त्रियों की मेरे दर्शनके लिए व्यग्रता, वहाँके सब राजाओंका मेरी बन्दना करना, नन्दा द्वारा सब राजाओंकी शोभा और वंभवका वर्णन, चम्पिकाका कुशके गलेमें रत्नमाला डालना, सुमति द्वारा लवके कण्ठमें मालाप्रक्षेप, विविध सम्मानपूर्वक विवाहोत्सव, सीता और अपनी पुत्रवधुओंके साथ रामका अयोध्याको लौटना, जलदेवी द्वारा

सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कान्तिपुर्योश्च मदनसुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥
यूपकेतोविवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्रीणां गणना चापि सर्वैः सौख्यं ततो मम ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । समानीतौ मया स्वर्गाङ्गिवं दुर्वाससेक्षणात् ॥६३॥
मत्कृष्णोपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काकाय वरदानं च शतस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६४॥
स्थानान्युक्तानि निद्रायै कृतः क्रोधोऽनुगादिषु । शतशोष्णो रावणस्य पौड़कस्य वधोऽपि च ॥६५॥
सीताया विरहो जातो हतश्च मूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः केन लंकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥
लंकायाः परितश्चापि आमयित्वा पुरीं गतः । लाभः कपिलवाराहमूर्तेदत्ता च बंधवे ॥६७॥
लवणासुरघातश्च मथुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभागाश्च समद्वीपजयो मया ॥६८॥
यतिशृद्रगृधशिक्षा सप्तप्रेतसुजीवनम् । शूद्राणां वरदानं च द्विजस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६९॥
पोडवासीसहस्राणां वराश्च मृगया मम । कालिंद्यै वरदानं च पिप्पलं छेत्तुमृद्धमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

वाल्मीकिर्वचनाद्वास्यं कतुमाज्ञापितं जनान् । शापोऽश्विनीकुमाराभ्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥
ब्रह्मणा मेऽवताराणां वर्णनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वाल्मीकिर्वदानस्मृतिर्मम ॥७२॥
मद्राज्यवर्णनं चाथ हेमायाश्च स्वयंवरम् । चित्रांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥
लवस्य जीवदानं च राममुद्रा सविस्तरा । रामनाथपुरदानं विप्रैर्दृष्टश्च मारुतिः ॥७४॥
दिनचर्या मम ततः स्वन्यसंततिकारणम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेष्वयं वरः ॥७५॥
पत्रपाशें श्रीरामेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च मया घृते ॥७६॥
तुलसीपत्रसंधिश्च रामायणश्रुतेः फलम् । सुमंत्रजीवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बच्चोंका नियहू और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ५६-६० ॥ सब बच्चोंका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदनसुन्दरीका हरण, यूपकेतुका विवाह, मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंके साथ मेरा सौख्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथायें विवाहकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे अयोध्या लाया जाना, मेरे और कृष्णके उपासकका संवाद, कोएके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ स्त्रियोंके लिए वरदान, अपने अनुचर आदिपर क्रोध, निद्राके लिए स्थानकथन, शतमुख रावण तथा पौड़कका वध, मेरा और सीताका विरह, मूलकासुरका वध, ब्रह्मा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा लंकामें प्रवेश, ॥ ६३-६६ ॥ लंकाकी चारों ओर घनुषकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहकी मूर्तिका दान, लवणासुरका वध, मथुरामें प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सातों द्वीपोंकी विजय, यति-शूद्र और गृध्रका न्याय, सप्त प्रेतोंका पुनर्जीवन, शूद्रोंको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वरार्पण, सोलह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयावर्णन, कालिन्दीके लिए वरदान, पीपल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७-७० ॥ ये इतना कथायें राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा हास्यपर प्रतिवंश, वाल्मीकिके परामर्शनिःसार लोगोंको हँसनेके लिए मेरे द्वारा आज्ञा दिया जाना, अश्विनीकुमारों और मेरे गणोंमें परस्पर शापप्रदान, ब्रह्माजीके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्णन, वाल्मीकिके वरदानसे तीन जन्मोंतकका स्मरण रहना, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वयंवरवर्णन, चित्रांगदके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंकी कथा, लवको जीवनदान, सविस्तार राममुद्राका वर्णन, रामनाथपुरका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्‌जीका दर्शन ॥७१-७४॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्ततिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पोथीके पन्नेकी बगलमें “श्रीराम” यह लिखनेका कारण, सुगुणाको वरदान, मेरा दो रूप धारण करना ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

इसि राज्यकाण्डमुत्तराधीम् ॥ ७ ॥

नारदोक्तं शतश्लोकैथरितं मम पात्रनम् ॥७८॥

पौराणामुपदेशात्र मन्मातणां परास्यतः । मनःपूजा बहिःपूजा नररूपधर्मस्त्वहम् ॥७९॥
रामलिंगतोभद्राणां नानाभेदां विचित्रिताः । मासनवम्या विस्तारः कथा स्त्रीराज्यसंभवा ॥८०॥
मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तरः । चिरञ्जीविन्वविस्तारो वेदादीनां श्रुतेः फलम् ॥८१॥
सार्वद्वासद्वयं नाम ते व्रतं तिथिविस्तरः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूत्रनम् ॥८२॥
नवम्यां मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तरः । काम्यदेवतविस्तारो रकाराद्यवरो गुणः ॥८३॥
मम नामनश्च महिमा मन्नामार्थं उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो राक्षसादिगतिः समृता ॥८४॥
अद्वैतं दर्शितं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्मुद्रावस्त्रमहिमा कवचं मे हनुमतः ॥८५॥
सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शीतलाव्रतमाहात्म्यं तस्य चोद्यापनं तथा ॥८६॥
रामनामतोभद्रं च मंत्राश्र कीर्तनाय च । पताकारोपणं नाम व्रतं मारुतितोपदम् ॥८७॥
पयोपदिष्टमेतत्ते साररामायणं त्वयि । हनुमता शरसेतोरजुनस्यात्र खंडनम् ॥८८॥

इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशनृपवृत्तनिवेदनम् । पुत्रयोरभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥८९॥
ततो भहान्संगरश्च पुत्रयोश्च जयो मम । व्रद्धणा प्रार्थना मेऽत्र वाल्मीकेश कुशस्य च ॥९०॥
रिपुस्त्राणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयत् । ततो विधेश्च वाक्येन वैकुठ गन्तुमृद्यमः ॥९१॥
सोमवंशोद्भवायाथ दत्तं वै हस्तिनापुरम् । आजमीढाभिषेकश्च सवपां च विसर्जनम् ॥९२॥
कुशस्य गमनं स्वीयपुरि राज्यं शशास सः । सर्पस्वसुः कुमुदत्या वारवंशसमुद्भवः ॥९३॥

की सन्धि, रामायणश्रवणका फल, सुमंत्रके लिए जीवनदान, यमराजके साथ सग्राम, सप्तद्वीपमें सर्वत्र मेरा धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाना, ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ये इतनी कथायें राज्यकाण्डके उत्तराधीम वर्णित हैं ॥ ७ ॥
नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पावन चरित्रका वर्णन, पुरवासियोंके लिए उपदेश, दूसरो द्वारा अपनी माताओं-
के लिए उपदेश, मनःपूजा, बहिःपूजा, रामलिङ्गतोभद्रके अनेक भद्र, मासनवमांका विस्तार, स्त्राराज्यकी उत्पत्ति-
की कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार, चिरञ्जीवित्वका विस्तार, वेदोंके अवणका फल ॥७६-८१॥
हाई महीनेके लिए द्रवत, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीको मूर्तिदानकी
विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रकारादि अक्षरोंके गुणवर्णन, मेरे नामोंकी
महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतियोंका वर्णन, लोगोंको अद्वैत स्वरूपका
दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरार्पण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अद्वैत वस्त्रकी महिमा, हनुमत्कवचका वर्णन ॥८२-८५॥
राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकवच, शीतला व्रतका माहात्म्य, शीतला व्रतका उद्यापन,
रामनामतोभद्र मंत्रका कीर्तन, पताकारोहण और हनुमानजीको प्रसन्न करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८६ ॥ ८७ ॥
इस तरह मैंते तुम्हें साररामायण सुना दिया। इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमानजीके द्वारा अजुनके शरसेतुके
खण्डनकी भी कथा वर्णित है ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ मनोहरकाण्डमें वर्तलाई गयी हैं ॥ ८ ॥ वाल्मीकिर्वर्णित
सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरके स्वानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरा
महासंग्राम, मेरी विजय, ब्रह्माजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिकी तथा लबकुशकी स्तुति, रिपु-स्त्रियोंकी प्रार्थनासे
सीताका अपने पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोकना, ब्रह्माके वाक्यसे मेरी वैकुण्ठयात्राकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए
हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमीढ़का राज्याभिषेक, सब लोगोंकी विदाई ॥ ८९-९२ ॥ लबकुशका अपनी
राजधानीमें पहुँचना और वहाँ शासन करना, कुमुदतीसे सन्तानोत्पत्ति, लक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि वानरों तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरेभ्यस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च ततो देहविसर्जनम् ॥१४॥
 वानरास्ते सुरा जाताः सीता जाता रमा मम । लक्ष्मणः पञ्चगो जातः शंखोऽभूद्धरतस्तदा ॥१५॥
 सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोमिलादिकानां च प्रयाणं सर्वयोषिताम् ॥१६॥
 नीराजनं सुरस्त्रीभिस्तेषां सांतानिकं पदम् । शंभुना संस्तुतश्चाहं गरुडारोहणं मम ॥१७॥
 पुष्पवृष्टिर्मयि तदा वैकुण्ठे गमनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥१८॥
 सूर्यवंशानुक्रमशानन्दरामायणस्य च । कांडसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलश्रुतिः ॥१९॥
 रामायणश्रवणस्योद्यापनं च महत्तमम् । ग्रंथदानमनुष्टानं प्रकाराः पञ्च वै ततः ॥२०॥
 अनुष्टानोद्यापनं च शकुनस्य च विस्तरः । संवादस्य पूर्णतापि युवयोर्गुरुशिष्ययोः ॥२१॥
 आशंकाछेदनं देव्याः कलाऽस्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥२२॥
 मम ध्यानं चेशदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।
 इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं तत्र ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणां संक्षेपेण निवेदितम् । इदं गोप्यं त्वया कार्यं महत्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥
 शतकोटिमितग्रन्थात्सारं सारं मयोदितम् । कः क्षमः सकलं वक्तुं विना वाल्मीकिना भुवि ॥१०५॥
 स एव धन्यो वाल्मीकियेन मच्चरितं कृतम् । साररामायणमिदं ये पठत्यत्र मानवाः ॥१०६॥
 तेभ्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्विज दास्याम्यह मुदा । कृत्स्नं रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥
 अथकलशो यदा नास्ति तदैतत्संपठेत्तरः । अन्यद्यद्यन्मया कर्म कृतं पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥
 तन्मच्छन्दात्मन्मुखान्निर्गमिष्यति निश्चयम् । त्वदूदृष्टिगोचरं कृत्स्नं चरितं ये भविष्यति ॥१०९॥
 विष्णुदासाय शिष्याय वद त्वमधुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान, अपनी देहका रूप, वानरोंका अपना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका शेषरूप हो जाना, भरतका पांचजन्य शत्रू होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन चक्र हो जाना और मेरा विष्णुरूप बारण करना, उमिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोंकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी स्तुति, मेरा गरुडारोहण, मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठगमन, वैकुण्ठमें लक्ष्मी-के साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ६३-६८ ॥ सूर्यवंशकी अनुक्रमणिका, आनन्द-रामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणश्रवणका महाफल, ग्रन्थदानविधि, अनुष्टानके पांच प्रकार, ॥ ६९ ॥ १०० ॥ अनुष्टान, उद्यापन, शकुनका विस्तार, तुम दोनों गुह शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका आशकाछेदन, इसके पाठकी कलाएं, रामायणके एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पार्वतीके संवादकी समाप्ति, ये इतनी कथायें पूर्णकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ९ ॥ हे रामदास ! इस तरह मैंने तुम्हें संक्षेपमें साररामायण बतलायी । इससे तुमको मेरे चरित्रोंका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी । यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है । इसलिए इसे सदा गुप्त रखना । सौ करोड़ संख्यावाली रामायणका सार अंश लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाल्मीकिके सिवाय अला और कौन है, जो पूरे तौरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाल्मीकिजी धन्य हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोंका वर्णन किया है । जो लोग इस साररामायणका पाठ करते हैं । उन्हें मैं भुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता हूँ । यदि किसी सज्जनको पूरी रायायण पढ़ने या सुननेका अवकाश न मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त भी मैंने जो शुभ अवृभ कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएंगे । मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टिगोचर होंगे ॥ १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको आनन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचंद्रेण यथाऽन्न कथितं मम । साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥
 इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्यं मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥
 कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यस्फलं प्राप्यते नरैः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो मम ॥११३॥
 तस्मान्मृभिः सदा जप्यं सर्वेषां शान्तिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं स्त्रोदं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥
 रामायणानि शतशः सन्ति शिष्यावनीतले । तथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे रामदास-
 विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपदिष्टं साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १६ ॥

अष्टादशः सर्गः

(हनुमानजीके द्वारा अर्जुननिर्मित शरसेतुभंजन)

श्रीविष्णुदास उवाच

कपिष्वजोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं श्रुतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्वच्छुर्महसि ॥१॥
 श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां त्वां वदामि च मत्कृताम् ॥२॥
 एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्यन्दनसंस्थितः । ययावरण्ये विचरन्मृगयाथैँ हि दक्षिणाम् ॥३॥
 एकाकी सूतसंस्थाने स्थित्वा तत्कृत्यमाचरन् । हत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्घरः ॥४॥
 ययौ रामेश्वरं सेतौ धनुष्कोण्यां विगात्य च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्यन्दनसंस्थितम् ॥५॥
 अष्टधेस्तटे विचर्चार किंचिद्र्दर्वसमन्वितः । एतस्मिन्नांतरेऽप्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥
 ददर्श मारुतिं वीरः सामान्यकपिष्ठपिणम् । राम रामेति जन्मपतं पिंगलोमधरं शुभम् ॥७॥

दास बोले—जिस तरह रामचन्द्रजीने मेरे समक्ष साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कह सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है । लोगोंको चाहिए कि भुक्ति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥ ११२ ॥ पूरी रामायणके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस साररामायणके भी श्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है । मेरी वात सर्वथा सत्य है ॥ ११३ ॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए । वयोंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है । यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दाता है ॥ ११४ ॥ हे शिष्य ! वैसे तो इस पृथ्वीतलमें सेंकड़ों रामायणों हैं, किन्तु इसके समान अबतक न कोई रामायण हुई है और न आगे होगी ॥ ११५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्री-मदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिष्वज यह नाम सुन चुका हूँ । उनका यह नाम क्यों पड़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । यद्यपि यह कथा द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीको छोड़कर अकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और धूमते-धूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥ ३ ॥ उस समय सारथीके स्थानपर वे स्वयं थे और घोड़ोंको हाँकते हुए चले जा रहे थे । इस तरह वनमें धूम-धूमकर दोपहरके समय तक उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा । इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुबन्ध रामेश्वरके धनुषकोटिर्थपर गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गर्वसे समुद्रके तटपर धूमने लगे । तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण बानरका स्वरूप पारण करके हनुमानजीको बैठे देखा । उस समय हनुमानजी रामनाम जप रहे थे ।

तमर्जुनोऽन्नवीद्वाक्यं किं नामास्ति कपे तव । तदर्जुनवचः श्रुत्वा विहस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥
 यत्प्रतापाच्च रामेण शिलाभिः शतयोजनम् । बह्वोऽयं सागरे सेतुस्तं मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥
 इति तद्वर्वसहितं वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनस्तदा । गर्वाद्विहस्य प्रोवाच मारुतिं पुरतः स्थितम् ॥१०॥
 वृथा रामेण सेत्वर्थं श्रमः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥
 तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मत्तुल्यकपिभारेण शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥
 न्युव्विज्ञ्यतीति मत्वा तं नाकरोदधुनन्दनः । तत्कपेर्वचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥
 कपिभाराद्यदा सेतुर्जले मग्नो भविष्यति । धनुर्विद्या धन्विनः का तदा वानरसत्तम ॥१४॥
 अधुनाऽहं करिष्यामि शरसेतुं तवाग्रतः । त्वं तस्योपरि नृत्यादि कुरुष्वात्र यथासुखम् ॥१५॥
 धनुर्विद्यां ममाद्य त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनगिरं श्रुत्वा तमाह सस्मितः कपिः ॥१६॥
 ममाद्यथंगुष्ठभारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्मग्रः स्यात्समुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम् ॥१७॥
 तत्कपेर्वाक्यमाकर्ण्य सोऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि मग्रः शरसेतुस्त्वद्वारात्तर्हं कपे ॥१८॥
 विशाख्यत्रानलं सत्यं त्वं चाप्यद्य पणं वद । तत्प्रतिज्ञां कपिः श्रुत्वाऽर्जुनं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
 मया स्वांगुष्ठभारेण त्वत्सेतुथेन लोपितः । तर्हि त्वदृध्वजमस्थोऽहं तव साहाय्यमाचरे ॥२०॥
 तथाऽस्त्वत्यर्जुनः प्राह टणत्कृत्य महद्वनुः । निर्ममे शरसंजालैः सेतुं दृढतरं घनम् ॥२१॥
 शतयोजनविस्तीर्णं सागरस्योर्ध्वंतः स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्द्वार्जुनाग्रं ऽगुष्ठमारतः ॥२२॥
 अकरोत्सागरे मग्नं क्षणमाव्रेण लीलया । तदा देवाः सगंधवीः किन्नरोरगराक्षसाः ॥२३॥
 विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं शर्जुनस्याग्रे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२४॥
 तत्कर्मणाऽर्जुनश्चापि चितां कृत्वाऽन्विधरोधसि । निवारितोऽपि कपिना देहं त्यक्तुं समुद्यतः ॥२५॥

पीले रङ्गके रोएं उनके शरीरपर बड़े अच्छे लग रहे थे ॥ ५-७ ॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—है वानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हँसकर हनुमान्जी बोले कि जिनके प्रतापसे रामचन्द्रजीने समुद्रपर सौ योजन विस्तृत सेतु बनाया था, मैं वही वायुपुत्र हनुमान् हूँ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस तरह गर्वभरे वचन सुनकर अर्जुनने भी गर्वसे हँसकर कहा कि रामने व्यर्थ इतना कष्ट उठाया । उन्होंने बाणोंका सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम चला लिया ॥ १० ॥ ११ ॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जीने कहा—हम जैसे बड़े बड़े बानरोंके बोझसे वह बाणका सेतु डूब जाता, यही सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा—है वानरसत्तम ! यदि बानरोंके बोझसे सेतु डूब जानेका भय हो तो उस धनुधारीकी धनुर्विद्याकी ही वया विशेषता रही ॥ १४ ॥ अभी इसी समय मैं अपने कोशलसे बाणोंका सेतु बनाये देता हूँ, तुम उसके ऊपर आनन्दसे नाचो-कूदो ॥ १५ ॥ इस प्रकार मेरी धनुर्विद्याका नमना भी देख लो । अर्जुनकी ऐसी बात सुनकर हनुमान्जी मुसकराते हुए कहने लगे कि यदि मेरे पैरके अंगूठके बोझसे ही आपका बनाया सेतु डूब जाय तो वया करियेगा ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ हनुमान्जीकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे भारसे सेतु डूब जायगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आगमें जल मर्हेणा । अच्छा, अब तुम भी कोई बाजी लगाओ । अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठेके ही भारसे तुम्हारे बनाये सेतुको न डुबा सकूँगा तो तुम्हारे रथको ध्वजाके पास बैठकर जीवनभर तुम्हारी सहायता करूँगा ॥ १८-२० ॥ “अच्छा, यही सही” ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका टंकोर किया और अपने बाणोंके समूहसे बहुत थोड़े समयमें एक सुट्ट सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥ २१ ॥ उस सेतुका विस्तार सौ योजन था और वह सागरके ऊपर ही उत्तरा रहा था । उस सेतुको देखकर हनुमान्जीने उनके सामने ही अपने अंगुष्ठके भारसे डुबा दिया । उस समय गन्धवीके साथ-साथ देवताश्चोने हनुमान्जीपर फूलोंकी वर्षा की ॥ २२-२४ ॥ हनुमान्जीके इस कर्मसे खिल होकर अर्जुनने

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तं प्राह चदुरूपघृक् । ज्ञात्वा ऽर्जुनमुखात्सवं पूर्ववृत्तं पणादिकम् ॥२६॥
 उभाभ्यां यद्यच्चरितं पूर्वं तच्च वृथा गतम् ।
 साक्षित्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न तुष्टयते ॥२७॥
 साक्षित्वेनाधुना मेऽत्र युवाभ्यां कर्म पूर्ववत् ।
 कर्तव्यं तदहं द्वष्टा सत्यं मिथ्या वदाभ्यहम् ॥२८॥

तद्वटोर्वचनं श्रुत्वा द्वावृचतुस्तथेति च । ततश्चकार गांडीवी शरसेतुं हि पूर्ववत् ॥२९॥
 सेतोरंतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चकरोत्तदा ।
 ततः स्वांगुष्ठभारेण कपिः सेतुं प्रपीडयत् ॥३०॥
 सेतुं ददं कपिर्ज्ञात्वा पादजानुकरादिभिः ।
 बलेन पीडयामास स सेतुस्तंश्चचाल न ॥३१॥

तदा तृष्णीं हनुमान्स मंत्रयामास चेतसि । पूर्वं मथांगुष्ठभारात्सेतुश्चान्धौ विलोपितः ॥३२॥
 हस्तादिभिः कथं नायमिदानो न विलुप्यते ।
 कारणं चदुरेवात्र चदुर्नायं हरिस्त्वयम् ॥३३॥
 अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम् ।
 मद्र्वपरिहारोऽद्य कृष्णेनानेन कर्मणा ॥३४॥

कुतोऽस्त्यत्र क कृष्णाये मन्मर्कटसुपौरुषम् । इति निश्चित्य मनसि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥३५॥
 जितं त्वया बटोर्योगात्तत्र साहाय्यमाचरे ।
 नायं चदुस्त्वयं कृष्णः सेतुचक्रमवेशकृत् ॥३६॥
 त्वत्साहाय्यार्थमायातः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन ।
 अनेन रामरूपेण त्रेतायां मे वरोऽपितः ॥३७॥

समुद्रके तटपर ही चिता तंपार की और हनुमान्‌जीके रोकनेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ इसी समय एक ब्रह्मचारीका रूप घारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आये और उन्होंने अर्जुनसे चितामें कूदनेका कारण पूछा । अर्जुनके मुखसे ही सब बात मालूम करके कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसार थी । क्योंकि उस समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षो नहीं था । साक्षीके विना सौच झठका कोई ठिकाना नहीं रहता । इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ । अब तुम लोग फिर पहले की तरह कायं करो तो मैं तुम्हारे कर्मोंको देखकर विजय-पराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६-२८ ॥ ब्रह्मचारीकी बात सुनकर दोनोंने कहा-ठीक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥ २९ ॥ अबकी बार सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया । सेतु तंपार होनेपर हनुमान्‌जी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ जब हनुमान्‌जीने अबकी बार सेतुको मजबूत देखा तो पेरों, घुटनों तथा हाथोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह जो भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ चुपचाप हनुमान्‌जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बोझसे सेतुको डूबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मेरे पूरे शरीरके बोझसे भी क्यों नहीं डूबता । इसमें ये ब्रह्मचारीजी ही कारण हैं । ये ब्राह्मण नहीं, बल्कि साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है । वास्तवमें ही भी ऐसा ही । भला, इन भगवान्‌के सामने हम जैसे बानरकी सामर्थ्य ही क्या है । ऐसा निश्चय करके हनुमान्‌जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन ब्रह्मचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है । ये कोई बदु नहीं, साक्षात् भगवान् हैं । इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥ ३२-३६ ॥ हे अर्जुन ! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं द्वापरे कृष्णरूपघृक् । तत्सत्यं बचनं चाद्य कुर्तं त्वत्सेतुहेतुतः ॥३८॥
 इत्यर्जुनं कपिर्याविदब्रवीत्तावदग्रतः ।
 बदुरेवाभवन्कृष्णः पीतवासा घनप्रभः ॥३९॥
 तदर्शनोर्ज्वरोमाऽभृतप्रणनामांजनीसुतः ।
 आलिंगिनोऽपि कृष्णेन स मेने कुकृतत्यताम् ॥४०॥

चक्रं ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्य ज्ञया तदा । सागरेण स्वकल्लोलैः शरसेतुविलोपितः ॥४१॥
 तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः ।
 कृष्णस्तदाऽर्जुनं प्राह त्वया रामेण स्पर्दितम् ॥४२॥
 हनूमता धनुविद्या तवातोऽत्र मृषा कृता ।
 यत्प्रतापादिति गिरा त्वयाऽपि वायुनन्दन । ४३॥

रामेण स्पर्दितं यस्मात्समादर्जुन संजितः । अतः परं वीतगर्वस्त्वं मां भज निरन्तरम् ॥४४॥
 इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ठाऽर्जुनेन तत्पुरं ययौ ।
 अतः कपिघ्वजश्चैत जनैरर्जुन ईर्यते ॥४५॥
 इति भाविकथा पृष्ठा त्वया साऽपि मयोदिता ।
 किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तत्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच
 गुरोऽधुना राघवस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ।
 मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तोषमाप्नुयाम् ॥४७॥
 श्रीरामदास उवाच
 पूर्णकांडं तावाच्चाहं वदिष्यामि शृणुष्व तत् ।

सहायताके लिए ही यहाँ आये हैं । यही रूप धारण करके त्रेतामें रामने हमें वरदान दिया था कि द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन देंगा । आपके सेतुके बहाने इन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥३७॥३८॥ हनुमानजी अजुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इतनेमें भगवान् अपने बटुरूपको त्यागकर कृष्ण बन गये । उस समय वे पीले वस्त्र पहने थे और नवनीरदके समान उनका श्याम शरीर था । उन कृष्णचन्द्रजीका दर्शन करते ही हनुमानजीके रोंगटे खड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया ॥ जब श्रीकृष्णने हनुमानजीको उठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमानजीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥३९॥४०॥ श्रीकृष्णके आज्ञानुसार चक्र सेतुसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अजुनका बनाया सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥४१॥ इस तरह अजुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया । कुछ देर बाद श्रीकृष्णजीने अजुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्धा की थी । इसलिए हनुमानजीने तुम्हारी धनुविद्याको व्यर्थ कर दिया था । इसी प्रकार है पवनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्द्धा की थी । इसी कारण तुम अजुनसे परास्त हुए । तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया । अब आनन्दके साथ मेरा भजन करो । ऐसा कह और हनुमानजीसे पूछकर श्रीकृष्ण अजुनके साथ हस्तिनापुर चले गये । है शिष्य ! इसी कारण अजुन कपिघ्वज कहे जाते हैं ॥४२-४५॥ यद्यपि तुमने हमसे यह भविष्यकी कथा पूछी थी, फिर भी मैंने कह सुनाया । अब आगे वया सुनना चाहते हो सो बताओ । मैं तुमको सुनाऊं ॥४६॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वत्तान्त सुनना चाहता हूँ । सो आप विस्तापूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो । श्रीरामदासने कहा—आगे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ । उसमें भगवान्के वैकुण्ठारोहणका वृत्तान्त तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥४७॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ॥४८॥

इदं मनोहरं कांडं मया ते समुदीरितम् ।

ये शृण्वन्ति नरा भूम्यां तेषां रामे रतिर्भवेत् ॥४९॥

मनोऽभिलिप्तिरान् कामास्ते लभन्ते न संशयः ।

पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥५०॥

इदं रम्यं पवित्रं च अवणान्मंगलप्रदम् ।

पठनीयं प्रयत्नेन रामसङ्कितवर्द्धनम् ॥५१॥

आनन्दरामायणमध्यसंस्थं मनोहरं कांडमिदं विचित्रम् ।

पठन्ति शृण्वन्ति गृणन्ति मत्यास्ते स्त्रीयकामानखिलान् लभन्ते ॥५२॥

इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्रं त्वतिपुण्यदं च ।

सुदा नरैः आव्यमिदं मुदा श्रीसीतापतेर्भक्तिविवृद्धिकारि ॥५३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे रामदासविष्णु-
दाससंवादे हनूमता शरसेतुभंगो नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

मनोहरकांडे सर्गा आनन्दरामायणेऽष्टादश ज्ञातव्याः ।

एकत्रिंशच्छताः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥

अथ मनोहरकांडे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुगमायणम् ॥ १०४ ॥ वैकुण्ठारोहणम् ॥ १५६ ॥ रामपूजा ॥ २७६ ॥ लघुरामतोभद्रम् ॥ ३०९ ॥ रामलिंगतोभद्रम् ॥ ३७७ ॥ नवमीव्रतम् ॥ २४१ ॥ रामनवम्युद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदादिकाव्यपूजा ॥ १२७ ॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ पिश्चाचमुक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकांड सुनाया है। जो लोग इस कांडको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रबीकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ वे अपना मनोऽभिलिप्त फल प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। इसको सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थी घन पाता है ॥ ५० ॥ यह कांड बड़ा रम्य, पवित्र और सुननेसे मञ्जुलदायक है। इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए। इसके पाठसे रामके चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकांड बड़ा विचित्र है। जो लोग इसका पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपनी सारी कामनायें पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह कांड परम पवित्र, विचित्र, भगवान्के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और अतिशय पुण्यदायक है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकांडका अवश्य श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतं उपोत्सनां भाषाटोकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुछ अठारह सर्ग हैं और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ श्लोक कहे हैं ॥ १ ॥ मनोहरकांडका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४ श्लोक, वैकुण्ठारोहणमें १५५, रामपूजामें २७५, लघुरामतोभद्रमें ३०९, रामलिंगतोभद्रमें ३७७, नवमीव्रतमें २४१, रामनवमीउद्यापनमें १३२,

॥२९६॥ अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् ॥ १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-शशुध्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पत्ताकारोपणम् ॥ ६५ ॥ सारशामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुभङ्गः ॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकाण्डे इलोकसंख्या ॥ ३१०० ॥ इयं मंत्रवृत्तादि-रहिता संख्याऽस्ति ।

वेदादिकाव्यपूजामें १२७, विशेषकालकी पूजामें १९३, चैत्रमहिमावर्णनमें १६७, पिशाचप्रतिक्रियामें २९६, अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण-भरत तथा शशुध्नकवचमें १८२, हनुमत्पत्ताकारोपणमें ६५, सारशामायणमें १५२ और शरसेतुभङ्गमें ५३ इलोक कहे गये हैं और ये ही १८ प्रकरण वर्णित हैं । सब मिलाकर ३१०० इलोक इस काण्डमें हैं । किन्तु यह संख्या मन्त्र और वृत्तादि-की संख्या छोड़कर बतायी है ।

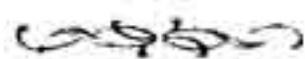
॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रापर्णमस्तु ।

श्रीसीतायतये नमः
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीक्याऽऽटीकितम्



पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(सोमवंशी राजाओं की कथाका विस्तार)

श्रीरामदास उवाच

अथ शासति राजेन्द्रे रामे सीताभिरञ्जिते । समायामेकदा दूतः सुपेगस्य गजाहृयात् ॥ १ ॥
समाययौ स विकलो रामं नत्वाऽत्रीदृचः । राम राजवपत्राक्षं सोमवशोद्धर्वनृपैः ॥ २ ॥
संवेष्टितं गजपुरं नलाद्यैविरजीविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघोऽतीव विस्मितः ॥ ३ ॥
वसिष्ठं प्राह मद्राज्ये न कदा पार्थिवोत्तमाः । समागता मया योद्धुं किमिदानीं हि श्रूयते ॥ ४ ॥
किं कारणं गुरो द्यत्र विचारय सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
प्रष्टव्यमध्य वाल्मीकिं येन ते चरिते कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्षणं प्रष्ट्य समाहृयाथ तं मुनिम् ॥ ६ ॥
सीतया पूजनं कृत्वा रामो वृत्तं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह राम किंचिद्विहस्य सः ॥ ७ ॥
किं त्वं न वेत्सि राजेन्द्र विनोदान्मां तु पृच्छसि । शृणु अथ तदि मे वाक्यं सर्वं शृणुन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्वापि मासास्त्वकादशव द्वि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगते हुए अयोध्याका राज कर रहे थे । उन्हों दिनों सुषेणका एक घदड़ाया हुआ दूत हस्तिनापुरसे आ पहुँचा । उसने भगवान्को प्रणाम करके कहा—हे राजीवपत्राक्ष राम ! सोमवंशी राजे नल आदिन हस्तिनापुरको चारों आरसे घेर लिया हे । दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ १-३ ॥ वे गुरु वासठसे बाले—हे गुरुवर ! यह मे क्या सुन रहा हूँ ? आज तक तो कभी ये राजे मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कुरा करके आप इसपर सविस्तार विचार करिए । रामकी बात सुनकर वासष्टजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है । यह सुनकर रामने लक्षणका भेजकर वाल्मीकिजाको बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिके आनेपर सीताके साथ-साथ रामने उनकी पूजा की और हस्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया । वाल्मीकिने हँसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं ? मालूम हैं । किन्तु कौतुक बश आप हमसे पूछ रहे हैं । अच्छा, आपको यही इच्छा है तो सुनिए । आपके प्रियजन भा सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घड़ी और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र घटिकाश्रापि तन्मिताः । एकादश पलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥
शतकोटिमिते काव्ये पुरैव तेऽवतारतः ।

तन्मध्येऽत्र ह्यतीतानि सहस्राणि तथा सेमाः । अतीताः शेषभूताश्च मासाः शेषं दिनादिकम् ॥११॥
अष्टादशदिनैन्यन्यनमग्रे वर्षं प्रभोऽत्र यत् । शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥
अयं कालोऽत्रतारस्य समाप्तेस्ते समागतः । गत्वा भागीरथीं पुण्यां पूर्वजेनावनोतलम् ॥१३॥
प्रापितां तव राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि । स्तुतो ब्रह्मादिकैः सर्वैः पदं स्वीयं गमिष्यसि ॥१४॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमवृतीत् । एतावत्कालपर्यन्तं नलाद्याः कुत्र संस्थिताः ॥१५॥
कुतोऽधुना समायातास्तत्सर्वं विस्तराद्वद् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमवृतीत् ॥१६॥
शृणु राम महावाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिष्ठुनिः पुरा राम पूर्णिमायां कृते युगे ॥१७॥
वैशाख्यामेकदा सोमं दृष्ट्वा नारीमुखोपमम् । मुमोच वीर्यं भूम्यां स तस्मात्पुत्रो वभूत इ ॥१८॥
सोमस्य दर्शनाज्जातः सोमाख्यः स वभूत इ । सोऽरण्ये जाह्नवीतरे चकार तप उत्तमम् ॥१९॥
एतस्मिन्समये तत्र कथिदूस्ती समाययौ । निहतः पक्षिभिस्तत्र तदृष्ट्वा कौतुकं महत् ॥२०॥
सोमो विचारयामास पक्षिभिनिहतः करी । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुरं तत्र चकार सः ॥२१॥
हस्तिनाशात्पुरं जातं तस्मात्तद्वहस्तिनापुरम् । तत्र पौरैः कृतो राजा सोम एव रथूत्तम ॥२२॥
तस्य जातो बुधः पुत्रस्तात्मी जगतीतलम् । सद्वीपं स्ववशं कृत्वा सुरलोकं प्रजम्भतुः ॥२३॥
तत्र जित्वा सुरान्सर्वान्सुरस्त्रीभिश्च संयुतौ । मुक्त्वा देवान्स्वर्गलोके निवासं चक्रतुर्मुदा ॥२४॥
तयोर्ददौ वरान्ब्रह्मा युवां मद्वंशसंभवौ । युवाभ्यां मोचितस्त्वद्य देवसंघयुतस्त्वहम् ॥२५॥
युवाभ्यां तर्षीहं वच्चिम वरांश्छृणुत वालकौ । युष्मद्वंशे नृपाः केचिदग्रे त्रिपुरुषोर्ध्वतः ॥२६॥

आपको राज्य करनेके लिए मैने निर्दोरित किया था ॥ ६ ॥ १० ॥ ये बातें मैं आपके अवतारके पहले ही अपने शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्षं व्यतीत हो गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा घड़ी-पल आदि ही बाकी बचे हैं ॥११॥ सब मिलाकर अष्टादश दिवस न्यून एक वर्ष बाकी हैं । वह समय संग्राममें समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है । अब आर अपने पूर्वज अर्थात् भगीरथ द्वारा लायी हुई गङ्गामें विविवत् स्नान करके ब्रह्मादिक समस्त देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामको जायेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वाल्मीकिकी बात सुनकर रामने कहा कि अवतक ये नल आदि राजे कहीं थे ? ॥ १५ ॥ इस समय कहाँसे आ गये हैं, यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामका बचन सुनकर वाल्मीकि बोले-हे राम ! हे महावाहो ! मैं सब कुछ कहता हूँ, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाको चन्द्रमाका मुख एक स्त्रीकं समान सुन्दर देखकर अपना वीर्यं त्याग दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१७ ॥ चन्द्रमाको देखनेसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसलिए वह सोम कहलाया और बनमें जाकर गङ्गाजीके तटपर उत्तम तप करने लगा ॥ १९ ॥ उसी समय वहाँ एक हाथी आ गया । उस हाथीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला । यह महाकौतुक देखकर सोमने अपने मनमें साचा कि यहाँके पक्षियोंने हाथीको मार डाला है । यह अवश्य इस भूमिका ही प्रभाव है । ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हाथीका विनाश किया था । इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया । हे रघूतम । वहाँके पुरवासियोंने आग्रह करके सोमको ही वहाँका राज्य बनाया ॥ २२ ॥ सोमके बुध नामका पुत्र हुआ । फिर क्या था, बुध और सोमने मिलकर सब द्वीपोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंके अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको जीतकर छोड़ दिया और वे स्त्रीक वहाँ रखने लगे ॥ २४ ॥ उन दोनोंको ब्रह्माने अनेक वरदान दिये । ब्रह्माने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवन्ति हि । इति दद्वा वरं ब्रह्मा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥
 ततः सोमाय दौहित्री दत्ता पद्मावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ सोमवृधौ स्वैरं स्थितौ चिरम् ॥२८॥
 बुधस्य तनयो भूम्या नाम्नारुयातः पुरुरवाः । चकार राज्यं धर्मेण तथा तद्वस्तिनापुरे ॥२९॥
 तस्य पुत्रश्च गव्योऽभूद्वच्यपुत्रोऽल्प उच्यते । अल्पपुत्रो नल श्रीमान् दिक्षपालान् जेतुमुद्यतः ॥३०॥
 राज्ये पुरुरवार्दीश्च त्रीन् स्थाप्य निजपूर्वजान् । सप्तद्वौपनृपर्युक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥
 आदौ जित्वा स वह्नि हि यमं जित्वाऽथ निर्वितिम् । प्रययौ वरुणं जेतुं रावणादिभिरन्वितः ॥३२॥
 एतस्मिन्नन्तरे राम तूर्णं सैन्येन रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुरानिंद्रादिकान् रणे ॥३३॥
 जित्वा निनाय स्वां लंका सोमो युद्धाय सात्मजः । निर्ययौ सुहृदः सर्वान्मेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ॥३४॥
 तदा निवारयामास ब्रह्मा सोमं त्वरान्वितः । विष्णुर्भूत्वा नृवेषेण रावणं हि हनिष्यति ॥३५॥
 त्वं माऽय रावणं याहि वरस्तस्मै मयाऽपितः । तद्वब्रह्मवचनं श्रुत्वा ययौ सोमोऽमरावतीम् ॥३६॥
 भूम्या नलस्ततो गत्वा वरुणं पवनं तथा । जित्वा झवेरमीशानं कृतकार्यममन्यत ॥३७॥
 आत्मानं च ततः स्वगें चेद्रं जेतुं समुद्यतः । एवं नलेन अप्रता गतं तच्च कृतं युगम् ॥३८॥
 त्रेतायुगसमाप्तौ स ददर्श सकलं वलम् । तत्रादृष्ट्वा रावणं स दूताच्छ्रुत्वाऽदनौ त्विति ॥३९॥
 देवान्स्वशगान् कृत्वा लंकां स्वां स गतः पुराः । तत्र माप्ते तु अपतो नलस्य नद्युक्तः सुतः ॥४०॥
 पुत्रस्तस्य जातीकरस्तत्सुतो वसुदः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुश्रुतः सुरथस्तन्सुतः स्मृतः ॥४१॥
 अजमीढस्तु तत्पुत्रस्त्वेवं वंशोऽभवत्पथि । ततः स मंत्रयामास नलो मंत्रिजनैः सह ॥४२॥
 किमर्थमिदलोकं तं गन्तव्यमधुना यदि । भूवि देवाः समानीता लङ्घायां रावणेन हि ॥४३॥

कहा-तुम दोनों मेरे बंशज हो । तुमने मेरे सहित समस्त देवताओंको जीतकर भी छोड़ दिया है । इसलिए मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे बंशमें तीन पीढ़ीके आगे सात पुश्त तक जितने राजे होंगे, वे किसीसे भी पराजित नहीं होंगे । इस प्रकार वरदान देकर ब्रह्मा अपने द्वायानको चले गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने पद्मावती नामकी अपनी सुन्दरी नतिनी सोमको दे दी । इस तरह वे सोम और बुध आनन्दके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधका पुत्र इस संसारमें पुरुरवा नामसे विस्थापित हुआ । उसने घर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राज्य किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गव्य हुआ । गव्यका पुत्र अल्प और अल्पका पुत्र तल हुआ । नल इतना प्रबल वीर था कि उसने दसों दिवालोंको जीतनेकी इच्छा की । सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरुरवा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत शिखरवाले मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने पहले अग्निको, फिर यमको और उनके बाद निर्वितिको जीतकर रावण आदि देवतोंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्रादि देवताओंको संप्राप्तमें जीतकर अपनी लंकाको वापस चल गया । तब सोम अपने मित्रों तथा पुत्रोंको साथ लेकर रावणसे युद्ध करने तथा इन्द्रादि देवोंको छुड़ानेके लिए चल पड़ा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सोमको रावणपर चढ़ाई करनेसे रोक दिया और कहा कि स्वयं विष्णुभगवान् भनुष्यका रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे । तुम आज रावणके पास भत जाओ । ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न जाकर अमरावतीपुरी गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम नलरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेको कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रको जीतनेके लिए नल स्वर्गलोकमें जा पहुँचा । इस तरह उसके धूमते-फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो जानेपर नलने सब वीरोंको तो देखा, किन्तु रावण नहीं मिला । अन्तमें नलने फिर सब देवताओंको वशमें किया । लंकापर भी आघिपत्य जमाया । आगे चलकर नलके नद्युक, नद्युकके जातीकर, जातीकरके वसुद, वसुदके लघुश्रुत, लघुश्रुतके सुरथ, सुरथके अजमीढ़ पुत्र हुआ और इस प्रकार नलकी सन्तति बढ़ी । एक दिन नलने अपने मंत्रियों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः करमारदः । निजं पुरं प्रगन्तव्यमधुना चिरकालतः ॥४४॥
 दिगाश्रयाद्यं सर्वे जीविताः स्म चिरं त्विह । पुरुरवादिकास्ते नः पूर्वजाः संति वा मृताः ॥४५॥
 नास्माभिश्चिरकालं हि तद्वृत्तं अमतः श्रुतम् । अतः स्वीषपुरं गत्वा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजाः ॥४६॥
 चेत्सोमबुधयोर्नाकं गन्तव्यं दर्शनेच्छया । तहिं ताभ्यां युता देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥
 किं ताभ्यां रहिता देवा जिताश्वेति न वेद्यथहम् । अतस्तत्सकलं वृत्तं विदितं हस्तिनापुरे ॥४८॥
 भविष्यति ततो यद्वि कर्तव्यं तत्कर्मः यहम् । इति निश्चित्य स नलः शनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥
 एतस्मिन्नंतरे राम त्वं जातोऽस्य वनीतले । हत्वा तं रावणं देवा मोचितास्ते दिवं गताः ॥५०॥
 सप्तदीपांतरस्था ये नृपास्ते स्ववशोकुताः । पुरुरवादिकाः स्त्रीश्च निष्कास्यात्र गजाह्वये ॥५१॥
 सुषेणः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितस्त्वया । ततः पुरुरवाद्यास्ते रवकालेन मृतास्त्विह ॥५२॥
 इदानीं ते समायाताः सोमवंशोद्धय नृपाः । नलाद्याः सप्त स्वपुरं सप्तदीपनृपोत्तमाः ॥५३॥
 त्वत्कुताः स्ववशगा ये च द्वीपांतरस्विताः । नृपास्तेषां पूर्वजाश्च स्वसैन्यैस्ते नृपोत्तमाः ॥५४॥
 वलिनः कोटिशः सर्वे समायाता गजाह्वयम् । भविष्यति त्वया तैश्च संगरः सोमवंशजैः ॥५५॥
 तदा ब्रह्मा सुरेयुक्तः समाशत्य तवांतिकम् । पादयोस्ते ग्रणामांश्च नलाद्यैः कारयिष्यति ॥५६॥
 कुत्वा कः प्रार्थनां तेऽपि त्वां वैकुण्ठं प्रणेष्यति । एवं राम सविस्तारं तवाग्रे कथितं मया ॥५७॥
 यत्पृष्ठं मां त्वया पूर्वं नलादीनां कथानकम् । विवाहकांडमारभ्य रम्यं रामायणं शुभम् ॥५८॥
 समग्रं हि मया राम पुराणं आवितं तव । पुत्राभ्यापधुना सर्वं श्रुणुष्व रघुनन्दन ॥५९॥
 इत्युक्त्वा कुशलवयोश्चकाराजां मुनिस्ततः । विवाहकाण्डात्काण्डानि चत्वारि जगतुः शिशू ॥६०॥

से मंत्रणा की कि जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीतलपर ही ले आया है, तब हम स्वर्गलोकको वर्ण चलें ॥ ३६-४३ ॥ रावण हमारा सेवक है, वह हमें कर देता है । हम लोगोंको घूमते-घूमते भी बहुत दिन हो गये हैं । इसलिए अब अपनी पुरीको लौट चलना चाहिए । किन्तु दिशाओंमें घूमते-फिरते हमलोग बहुत समय तक जीवित रहे, किन्तु पुरुरवा आदि हमारे पूर्वजं जीवित हैं या मर गये । मुझे उनकी कुछ भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चलो, अपनी राजधानीकी वापस चलें । वहाँका हाल-चाल देखें और अपने तीनों पूर्वजोंका दर्शन बरें ॥ ४६ ॥ लेकिन हमको यह बात भी नहीं जात है कि सोम और ब्रुव भी तो और-और देवताओंके साथ रावण द्वारा बन्दी नहीं बना लिये गये । हस्तिनापुर चजनेसे ये बातें भी जात हो जायेगी । उसके बाद जो करना उचित होगा, सो किया जायगा । ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको लौटा ॥ ४७-४८ ॥ इसी समय हे राम ! आपका अवतार हो गया । आपने रावणको मार डाला और देवताओंको छुड़ा लिया । जिससे वे सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ४० ॥ सातों द्वीपोंमें रहनेवाले राजाओंको आपने अपने वशमें कर लिया, वे पुरुरवा आदि तन राजे भी आपके वशमें हो गये । तब आपने उनको हस्तिनापुरसे निकालकर बानरोंके साथ सुषेणको उसकी गढ़ोपर बिठाल दिया । कुछ दिनों बाद समय आनेपर पुरुरवा आदि भी मर गये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस समय नल आदि सोमवंशी राजे उन सात राजाओंके साथ यहाँ आ रहे हैं, जिनको कि आपने अपने वशमें कर लिया था और अब तक वे किसी दूसरे द्वीपमें रहा करते थे । वे राजे अकेले नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों तथा करोड़ोंसी विशाल सेनाके साथ हस्तिनापुरपर चढ़े आ रहे हैं । उन सोमवंशियोंके साथ आपको युद्ध करना पड़ेगा ॥ ४३-४५ ॥ उस समय सब देवोंके साथ ब्रह्माजी आकर नल आदिसे आपको ग्रणाम करवायेंगे ॥ ४६ ॥ इसके बाद ब्रह्मा आपकी विधिवत् स्तुति करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायेंगे । हे राम ! इस तरह मैंने आपकी आज्ञासे उन नल आदि चन्द्रवंशी राजाओंका वृत्तांत विस्तारपूर्वक बताया ॥ ४७ ॥ हे रघुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैंने विवाहकांड-से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी । अब आप अपने पुत्रोंके मुखसे वह पुनीत कथा सुनिए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इतना कहकर बालमीकिने कुश और लवको रामचरित्र सुनानेकी आज्ञा दी और वे विवाहकांड-

तत्सर्वे राघवः श्रुत्वा परां मुदमवाप सः । विदुः सर्वे जनाश्चापि वैकुठारोहणं प्रभोः ॥६१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाष्ठे
सोमवंशनृपकथाविस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ५ ॥

—४०३—

द्वितीयः सर्गः

(रामका सोमवंशियोंसे युद्धके लिए प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा प्राह वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् । आगंतव्यं त्वया तत्र मुनिभिस्तु गजाह्यम् ॥ १ ॥
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवो वाक्यमन्त्रवीत् ॥ २ ॥
पत्राणि प्रेष्यस्वाद्य कुमारान्नराज्यसंस्थितान् । स्वस्वराज्ये मन्त्रिणश्च कृत्वा ऽत्रागम्यतां बलैः ॥ ३ ॥
एवमेव प्रलेख्यानि जम्बुद्वीपपतीन्वरान् । तथा द्वीपपतीश्चापि दूतास्तांस्त्वरयंतु नः ॥ ४ ॥
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा तथा चक्रे वथोदितम् । राघवेण सभामध्ये वाल्मीकिगुरुसन्निधौ ॥ ५ ॥
ततः प्राह पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मणं मुदा । वासोगेहानि नेयानि बहिर्मम रघूद्रह ॥ ६ ॥
मुहूर्ते वर्तते श्वो वै सेनां चोदय सादरात् । आयुधान्यथ यंत्राणि जीर्णानि च वहूनि हि ॥ ७ ॥
पूर्वजैर्विहितान्येव कोशागारेषु वै सदा । तानि निष्कासनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्तते ॥ ८ ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि वहिनेयानि मेऽग्रतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सीताप्यग्रेऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥
कोशागाराणि सर्वाणि वहिनेयानि वाहनैः । इस्त्यश्वरथपादाता नेयाः सर्वे बहिस्त्वया ॥ १० ॥
इत्याज्ञाप्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं विनयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्वैव वसिष्ठं चेदमन्त्रवीत् ॥ ११ ॥
अभियेष्यामि भरतं सप्तद्वीपपतेः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥ १२ ॥

के बादवाले कांडोंकी कथाओंको मिल जुलकर गाने लगे ॥ ६० ॥ यह सब कथायें सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंको भी भगवान्‌की स्वर्गारोहणसम्बन्धी वातें जात हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाप्तेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीका-सहिते पूर्णकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास वोले—इतनी कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि आप भी हस्तिनापुर अवश्य आइएगा ॥ १ ॥ महर्षि वाल्मीकिने भक्तवत्सल रामसे कहा—“बहुत अच्छा” । इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहने लगे कि सब राज्योंके सिहासनपर बैठे हुए कुमारोंके पास पत्र लिख दो कि वे अपने-अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपनों सेनाके साथ यहाँ आ जायें ॥ २ ॥ ३ ॥ इसी प्रकारके पत्र जम्बुद्वीपवाले तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और दूतोंको कहो कि उन्हें जीघ्र यहाँ आनेको कहें ॥ ४ ॥ “तथास्तु” कहकर लक्ष्मणजीने भी वैसा ही किया, जैसा कि रामचन्द्रजीने सभाम वाल्मीकि तथा गुरु वसिष्ठके सम्मुख कहा था ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने किर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे तम्बू-कनात आदि सामान बाहर ले चलो ॥ ६ ॥ कल बड़ा अच्छा मुहूर्त है । सेनाको भी जीघ्र तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दो । बहुतसे शस्त्र जोर्ण हो गये थे, जिनको मेरे पूर्वजोंने घरोंमें बन्द कर दिये थे, उनको निकाल लो । क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अन्तःपुरकी जितनी स्त्रियाँ हैं, उनको भी बाहर ले आओ । अग्निहोत्र लेकर सीता भी मेरे साथ चलें ॥ ९ ॥ मेरे जितने लजाने हैं उनको हाथी, घोड़े तथा रथकी सहायतासे बाहर ले आओ ॥ १० ॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा वसिष्ठजीसे कहा कि बब में सातों द्वीपोंके आविष्ट्यके पदपर भरतजीको बिठालूँगा । क्योंकि मेरे विना लक्ष्मण इस भूमण्डल-

एवं वदति राजेन्द्रे पौरास्ते भयविहृलाः । दुमा इव छिन्मूला दुःखार्ताः पतिरा भुवि ॥१३॥
 मूर्छितो भरतश्चापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् । गर्द्यामास राज्यं स प्राह दुःखादघृत्तमम् ॥१४॥
 सत्येन तु शपे नाहं त्वां विना दिवि वा भुवि । कांक्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वपादयोः प्रभो ॥१५॥
 असुं योग्यं वरं राजन्नभिर्विचस्व राज्यं । अयोध्यायां कुशं वीरं समद्वीपपतेः पदे ॥१६॥
 अस्त्युत्तरकुरुष्वत्र जंतुद्वीपपतेः पदे । लबोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥
 भरतेनोदितं श्रुत्वा पतिरास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै भयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ॥१८॥
 वसिष्ठो भगवान् रामभुवाच सदयं वचः । पश्यतामादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥
 तासां भावानुगं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वसिष्ठवच्वनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥२०॥
 सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चात्रवीत् । ततः प्रांजलयः प्रोक्षुः प्रजा भक्त्या रघुद्रहम् ॥२१॥
 गन्तुमिच्छसि वैकुंठं त्वमस्माकं नय प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम द्यनुगच्छामहे वयम् ॥२२॥
 अस्माकमेषा परमा ग्रास्तिर्थमोऽयमक्षयः । तवानुगमने राम हृदता नो दृढा मतिः ॥२३॥
 पुत्रदारादिभिः सार्द्धमनुयामोऽय सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥
 ज्ञात्वा तेषां मनोदाढ्यं कारुण्यादरघुनायकः । भक्तं पौरजनं दीनं वादभित्यब्रवीद्वचः ॥२५॥
 कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै चोदयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥
 सौमित्रिशापि गुरुणा विप्रैः पौरजनैस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं मुदा तमभ्यषेचयत् ॥२७॥
 अभिषेके कुशस्यासीन्महोत्साहो गृहे गृहे । रामावरोधे सुमहान्तस्मुत्साहस्तदाऽभवत् ॥२८॥
 तदा सिंहासनारुदं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः कुशं पर्ति प्राप्य प्रणामं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥११॥१२॥ श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे सब पुरवासी जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े । रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्छित हो गये । होश आनेपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निन्दा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा—मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके विना मैं पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥१३-१५॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप बीर कुशको इस सप्तद्वीपपतिके आसनपर बिठाल दीजिए ॥१६॥ उत्तरकुरु नामके देशमें जम्बुद्वीपपतिके पदपर तो आपने लवका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है, वह अपने पदपर चला जाय ॥१७॥ इस प्रकार भरतकी बात सुनकर वहाँके जितने प्रजाजन थे, वे सब रामके वियोगरूपी दुःखसे विहृल और भयभीत हो गये ॥१८॥ उनकी यह दशा देखकर दयालु वसिष्ठजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, ये सब कितने दुःखी हैं । अब जिस तरह इनकी सन्तोष हो सके, वही काम करिए । वसिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका सत्कार किया और पूछा कि मैं वया करूँ, जिससे आप लोग लोग प्रसन्न हो सकेंगे । यह सुना तो सब लोग हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे राम ! आप अब यदि वैकुण्ठलोकको जाना चाहते हों तो हमें भी अपने साथ लेते चलिए, हम सब भी आपके साथ-साथ चलेंगे ॥१९-२२॥ इससे बढ़कर हमको और कोई लाभ नहीं होगा । हम लोगोंके लिए यह अक्षय वर्मकार्य है । हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमने दृढ़ निश्चय कर लिया है ॥२३॥ आज हम सब अपने परिवारके साथ आपके सङ्ग वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अथवा अयोध्याको जायेंगे ॥२४॥ रामचन्द्रजीने जब भक्तों और पुरजनोंकी इतनी दृढ़ता देखी तो साथ ले चलनेकी स्वीकृति दे दी ॥२५॥ इस तरह निश्चय करके रामने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आजानुसार गुरु, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥२६॥२७॥ कुशका अभिषेक करते समय अयोध्याके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया । विसेषकर रामके अन्तपुरकी नारियोंने उत्सव मनाया ॥२८॥ जब कि छत्र और चमर आदिसे सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

तदा कुशो नृपो विप्रान्धनं वहुतरं ददौ । प्रजास्तं पूजयामासुवस्त्रालंकारयाहनैः ॥२०॥
 ततः प्रापूजयत्सर्वाः प्रजाः स कुशभूषणिः । भोजयामास विप्रीघान्कोटिशः स कुशेश्वरः ॥२१॥
 अथ रामाज्ञया शीघ्रं सौमित्रिः सीतया सह । अन्तःपुराणि सर्वाणि निनाय नगराद्विः ॥२२॥
 नानावाहनसंस्थानि नृत्यवाद्यादिमंगलैः । तदो रातः स्वयं वन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो वृतः ॥२३॥
 मुनिभिर्जयशब्दैश्च स्तुतो मंगलनिःस्वनैः । अयोध्याया वहिः पौरीर्यौ मागधसंस्तुतः ॥२४॥
 रथारुदशामराद्यैर्वीजितश्च शनैर्मुदा । विवेश वासोगेहानि तदा रामो जन्मः राह ॥२५॥
 ननूतुर्वारनार्यश्च तदा श्रीराघवाग्रतः । ततः पौराः सावरोधाद्यांडालान्ता गिनिर्युः ॥२६॥
 निन्युस्ते सारवेयांतान् पुर्याः पौरात्तुष्पदान् । नासन्पश्चिकुलांताद्यास्तत्पुर्यां ते वहिर्युः ॥२७॥
 नासीत्कोऽपि तदा पुर्या जनशून्या वभूव सा । अयोध्यानगरी पुण्या गजभुक्तकपित्थवत् ॥२८॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्वीपांतरनिवासिनः । जंवद्वीपांतरस्थाश्च ययुः सैन्यनृपोत्तमाः ॥२९॥
 कोटिशो राघवं नेमुस्ततो नेमुः कुशेश्वरम् । उपायनानि रामाय कुशाय च पृथक् पृथक् ॥४०॥
 दत्त्वा संपूजितास्ताम्यां तस्युः सर्वे दृपोत्तमाः । ततोऽङ्गदशिवकेतुः पुष्करस्तत्र एव च ॥४१॥
 सुवाहुर्युपकेतुश्च ययुः सर्वे निर्जवलैः । सावरोधाः सपुत्राश्च सपौत्रास्ते स्तुपादिभिः ॥४२॥
 प्रणेम् राघवादीश्च सीतादीश्चापि सादरात् । रामेणालिंगिताः सर्वे सीतया भोजिता अपि ॥४३॥
 तस्युः सर्वे सभायां ते स्वस्वपौरजन्मः सह । तदागतान् नृपान्सर्वान् रामो वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

वैठे, उस समय सब प्रजाजनोंने उनको साणोग प्रणाम किया ॥ २६ ॥ उस समय कुशने ब्राह्मणोंको वहुत-साधन दिया और प्रजाजनने विविव प्रकारके वस्त्रों तथा आभूषणोंसे कुशकी पूजा की ॥ ३० ॥ इसके बाद कुशने सब लोगोंका आदर-सत्कार किया और करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लक्ष्मण सीता आदि अन्तःपुरकी सब नारियोंको विविव सवारियोंपर विठाकर नारके बाहर ले गये ॥ ३२ ॥ उस समय तरह-तरह नृत्य-गीत आदि मङ्गलमय कार्य हो रहे थे । इसके अनन्तर राम मी वन्धुओं, पुत्रादिकों तथा अनेक ऋषियोंके साथ अयोध्याके सब पुरवासियोंकी साथ लिये हुए अयोध्याके बाहर आ गये । उस समय कितने ही तरहके बाजे बज रहे थे और बन्दीजन भावानकी विवदावलीका गान नहर रहे थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जाते समय राम एक रथपर बैठे थे, उनपर छत्र लगा हुआ था और चमर चल रहे थे । इस तरह चलते-चलते राम उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ ठहरनेको डेरा डाला गया था ॥ ३५ ॥ राम वहाँ आकर आसनपर बैठ गये । बेशबावे रामने सामने आकर नाचने लगी । कुछ देर बाद उच्च जातिसे लेकर आण्डाल जाति तकके अयोध्याके समस्त पुरवासी अपने बाल-बच्चोंको साथ लिये जयोध्यासे बाहर निकल गये । वे लोग अपने-अपने कुत्तों तथा बैल-गाय आदि पशुओंको भी साथ लेने आये थे । तहाँ तक कि पक्षिके कुल तक बाहर आ गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय सारी अयोध्या सुनी हो गयी । कोई भी उस नगरीमें हीं रह गया । उस पुनोत नगरोंकी वहाँ दशा हो गयी थी, जो दशा हाथीके पेटसे निकले कैथेकी होती है । तलब यह कि हाथी जब कैथेके फल खाने लगता है तो समचाका समचा ही फल खा जाता है और मलत्याग रते सभय ये कैथे देखनेमें समूचे ही निकलते हैं, किन्तु उन्हें तनिक-सी ठोकर मार दी जाए तो फूट जाते उनमें कुल तस्व नहीं रह जाता । वही दशा अयोध्याकी भी हो गयी थी । ऊपरसे देखनेमें तो अयोध्याओंकी त्यों दीखती थी, किन्तु उसमें कोई रहनेवाला नहीं था ॥ ३८ ॥ उसी समय अनेक द्वीपांके कितने ही जे भा बपनी-अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे ॥ ३९ ॥ उन्होंने वहाँ आकर रामको तथा नवीन राजा कुशको गाम किया और दोनोंको अलग-अलग विविव प्रकारके उपहार दिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उधर दूरकेतु तथा सुवाहु दि राजपुत्र भी अपने अन्तःपुरकी स्त्रियों और पुत्रादिकोंके साथ जा पहुँचे । वहाँ आकर उन्होंने सीता दि माताओं तथा रामको प्रणाम किया । रामने उनको उठाकर हृदयसे लगाया और सीताने उनको अपने शोसे परोसकर भोजन कराया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसके बाद वे सब अपने-अपने नागरिकोंके साथ आकर सभा-

पुनः प्रचल तान्सर्वान्संस्थितान् रघुनन्दनः । युष्माकं पूर्वजाः सर्वे समायाता गजाह्ये ॥४५॥
 अवतां रोचते युद्धं यदि तैः पूर्वजैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजाह्यम् ॥४६॥
 नोचेद्वद्विर्गन्तव्यमित एव निजस्थलम् । निर्वन्धोऽन न मे ज्ञेयः सर्वैः पार्थिवसत्तमैः ॥४७॥
 हति रामवचः श्रुत्वा नृपा राघवमब्रुवन् । राम राम महावीर्य वयं सर्वे तवानुगाः ॥४८॥
 त्वयैव वदिताः सर्वे तवान्नैः पोषिता वयम् । वीराः क्षत्रियवंशीया रणे तातप्रहारिणः ॥४९॥
 तवाज्ञया वधामोऽय पितृपुत्रान् रणाजिरे । नास्मांस्त्वं विद्वि राजेन्द्र स्वामिकायैः पराड्मुखान् ॥५०॥
 हति तेषां वचः श्रुत्वा तानालिङ्ग्य स राघवः । संज्ञ्याभरणैर्वस्त्रैः सुखं सुख्याप सीतया ॥५१॥
 ततः प्रभाते श्रीरामो गत्वा तां सरयूनदीम् । स्नात्वा दानादि वैदक्ष्मा सीतया विधिपूर्वकम् ॥५२॥
 नत्वा तां सरयूं पुण्यां गन्तुं प्रचल वै मुहुः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सरयूं राममब्रवीत् ॥५३॥
 एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता त्वदर्शनेच्छया । अहमत्र त्वया राम यास्यामि त्वत्पदं त्वितः ॥५४॥
 तत्स्या वचनं श्रुत्वा तामाह राघवः पुनः । यावत्कथा मम शुभा स्थास्यत्यत्राघनाशिनी ॥५५॥
 तावत्त्वमंशरूपाऽत्र च स लोकाघनाशिनी । तथेति रामवचनादंशरूपं निधाय सा ॥५६॥
 साकेतेऽत्र पूर्णरूपं ययौ रामेण तत्पदम् । अथ रामः सरयूऽपौ परिक्रम्य निजां पुरीम् ॥५७॥
 साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तु प्रचल पूज्य ताम् । अयोध्येऽन्न नमस्तेऽस्तु त्वयाऽहं रक्षितस्त्विह ॥५८॥
 आज्ञां ददस्व पृच्छामि रवस्यलं गन्तुमुद्यतः । क्षमस्व मेऽपराधांस्त्वं पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥५९॥
 हति रामवचः श्रुत्वा पुरी राघवमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता त्वदर्शनेच्छया ॥६०॥
 यास्ये त्वया समर्था न सोदुं त्वद्विरहं त्वहम् । तत्स्या वचनं श्रुत्वा पुरीमाह रघूत्तमः ॥६१॥

में बैठे । और-और राजे भी वहाँ एकत्रित हुए तो रामने उनको अपना विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने उन राजाओंसे कहा कि आपके पूर्वज हस्तिनापुरीमें युद्धके लिए गये थे ॥ ४५ ॥ सो यदि आपलोगोंको भी युद्ध करना हो तो मेरे साथ हस्तिनापुरी चलिए ॥ ४६ ॥ यदि न इच्छा हो तो आप लोग अपनी-अपनी राजधानीको लौट जाइये । मैं आपलोगोंसे किसी प्रकारका आग्रह नहीं करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उन राजाओंने कहा—हे राम ! हे महावाहो ! हम सब आपके अनुगामी हैं । आपने ही हम लोगोंका अभ्युदय किया है । आपके ही अन्नसे हम पले हैं । वीर क्षत्रियोंके वंशमें मेरा जन्म हुआ है । इस कारण आप यदि आज्ञा देंगे तो हम अपने पितृवातियोंको संग्राममें अवश्य मारेंगे । हे राजेन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न समझियेगा कि हम स्वामी (आप) के कामसे पराड्मुख होंगे ॥ ४८-५० ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनीं तो रामने उन सब राजाओंको हृदयसे लगाया, विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे उनकी पूजा की और जाकर आनन्दभूवेंक सीताके साथ शयन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सबेरे सीताके साथ रामचन्द्रजीने सरयूके तटगर जाकर स्नान-दान किया । इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सरयूजीसे अपने लिए परम बाम जानेकी आज्ञा मांगी । रामकी प्रार्थना सुनकर सरयूने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अबतक आपके दर्शनोंकी इच्छासे मैं भी यहाँ थी । किन्तु हे राम ! जब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपके श्रीचरणोंके साथ चलूँगी ॥ ५४ ॥ सरयूकी बात सुनकर रामने कहा—जबतक सब पापोंको नष्ट करते-बाली मेरी पुनीत कथा इस संसारमें विद्यमान है, तबतक अंशरूपसे तुम भी यहाँ रहतो हुई सबके पाप दूर करती रहो । रामके कहनेपर सरयूने तत्काल अपना एक अंशरूप बनाया, जिससे वह अयोध्यामें रह गयी और पूर्णरूपसे रामके साथ चल पड़ी । सरयूको साथ लेकर रामने अपनी पावन पुरीकी परिक्रमा की और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके परमधाम जानेको आज्ञा मांगी और कहा—हे अम्ब अयोध्ये ! तुमने मेरी रक्षा की है । मैं अब अपने वैकुण्ठलोक जानेकी आज्ञा मांगता हूँ । मेरे अपराधोंको क्षमा करो और मुझे आशीर्वाद दो कि फिर कभी मैं तुम्हारा दर्शन कर सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर अयोध्यापुरीने कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन करनेके लिए यहाँ रही । आपके चले जानेपर मैं

यावत्कथा मम शुभा स्थास्त्यत्राधनाशिनी । तावत्तद्मंशरूपेण वसात्र मृत्युयी चिरम् ॥६२॥
 तथेति रामवचनादंशरूपाऽत्र मृत्युयी । अयोध्या संस्थिता दिव्या हैमा रामेण साययौ ॥६३॥
 अयोध्यया सरश्वाऽपि रामः सेनास्थलं ययौ । अयोध्यायाः सरश्वाश्च प्रभावौ न गती न्वितः ॥६४॥
 अथ सीता महानार्गीमारुरोह सर्वीज्ञैः । पृथक् नागोमिलाद्यास्ताः समारुहस्तता ॥६५॥
 अब रामो मुदा वेगात्समारुद्धा गजोपरि । उवाच लक्षणं वाक्यं पृष्ठपके सकलान् जनान् ॥६६॥
 पौरानारोहयस्व त्वं स्ववंधुभ्यां सुतादिभिः । नागास्त्वैः पृथक् शोत्रं समारुद्धा गजोपरि ॥६७॥
 अनुगच्छस्व मत्पृष्ठे लक्षणः स तथाऽकरोत् । अथ सर्वे नृपतयो नानायानेषु सस्थिताः ॥६८॥
 ययुः स्वस्वत्वलैर्युक्ताः शीघ्र श्रीरामपाश्वेतः । ययावग्रे त्वग्रसरो रज्जुकुदालधारिभिः ॥६९॥
 दृष्ट्वकारैस्ततक्षकंथ कुठारटंकपाणिभिः । ततो ययौ महानागः पताकाध्वजशोभितः ॥७०॥
 ततो ययुर्यन्त्रहस्ता नानावाहनसंस्थिताः । ततो ययुः शतश्नाभिः पूरिताः शक्टाः शुभाः ॥७१॥
 ततोऽश्वसंस्था वाद्यानि वाद्यन्तो ययुर्भट्टाः । ततोऽश्वसंस्थाः शतशो ययुस्ते वेत्रपाण्यः ॥७२॥
 ततो ययुमांगधाश्च वंदिनो यानसंस्थिताः । तता नटाश्चारणाश्च यानस्थाः सुविभूषिताः ॥७३॥
 ततस्ता वारनार्यश्च काष्ठमंचकत्राहिताः । मस्तकेषु भट्टमार्गे नृत्यंत्यः प्रययुः सुखद् ॥७४॥
 ततो ययुर्भूषितास्ते श्रीरामस्य तुरङ्गमः । ततः पुलवद्विष्टान्विभ्रन्त्यः प्रमदोत्तमः ॥७५॥
 ययुस्तरुण्यः शतशः शतश्नाभिः सुभूषिताः । गोपितास्याः कचुकिन्यस्तुरंगादिषु सस्थिताः ॥७६॥
 ततो ययुर्देहस्ता दासीपुत्राः सुभूषिताः । ततो ययौ रामचन्द्रसत्पृष्ठे लक्षणा ययौ ॥७७॥

रहती हुई मैं आपके विद्योगका दुख नहीं सह सकूँगी । इसलिए मैं भी आपके साथ हा चलनेका तेयार बंडी हूँ । उसकी ऐसी बात मुनकर रामने अयोध्यापुरासे कहा कि जबतक जगत्में मरी पापनाशिनी कथा विद्यमान रहे, तबतक तुम अंशरूपसे मृत्युयी होकर यहाँ निवास करो ॥ ५७-६२ ॥ रामके कथनानुसार उसने अपने अंशरूपसे मृत्युयी होकर रहना स्वीकार कर लिया और मुक्तिमया तथा हृषकों अयोध्या रामके साथ चल पड़ी ॥ ६३ ॥ इसके बाद राम अयोध्या तथा सरयुके साथ अपने सेनाजिविरक्तो छोड़ गय । यद्यपि अयोध्या तथा सरयु ये दोनों अपने-अपने स्थानसे चली गया था, किन्तु संसारमें उनका प्रभाव उत्तोका त्यों बना रहा । वह नहीं गया ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर सीता एक अचलः-सा हविनापर मवार हुई और उमिला आदि दूसरी हविनियोंपर जा रहीं ॥ ६५ ॥ इसके बाद राम भी प्रात्मतापूर्वक हाथीपर सवार हुए और लक्षणसे कहा कि समस्त बन्धु-वान्धवोंके साथ अयोध्यादानियोंको पुष्टके विमानपर सवार करा दो । इसके बाद तुम अपने परिवारवालोंको हाथीपर विठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ । रामके आज्ञानुसार लक्षणने सब प्रवन्ध ठीक कर दिया । इसके बाद सब राजे अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार हो-होकर अपनी-अपनी सेनाके साथ रामके पास आये । आगे-आगे वे मजदूर चले, जो रस्तियें तथा कुशल लिये थे । पत्थर काटनेवाले तथा बढ़ी आदि विविध प्रकारके ओजार लिये थे । उनके पीछे-पीछे एक बड़ा हाथी पताका और दूजाओंसे अलंकृत होकर चला । उसके पीछे अपने-अपने हाथोंमें बन्दूक आदि विविध प्रकारके शस्त्रवारी सैनिक तरह-तरहके वाहनोंपर सवार होकर चले । उनके पीछे तोप आदिते लड़ी बैलगाड़ियें चली जा रही थीं ॥ ६६-६१ ॥ उनके पीछे-पीछे अनेक प्रकारके बाजे बजानेवाले लोग घोड़ोंपर बैठ-बैठकर चले । उनके पीछे बहुतसे घुड़-सवार हाथमें बैठ लिये हुए चले ॥ ६२ ॥ उनके पीछे बाहनोंपर आहड़ होकर बहुतसे मागव और बन्दीजन चले जा रहे थे । उनके पीछे नटलोग और सज्जा चौकियोंपर बैठा हुई वेश्यायें गाती-बजाती और नाचती हुई चली जा रही था ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उनके भी पीछे रामके सजाये हुए घोड़े और उनके पीछे पुरुषके समान वेष चारण किये, अनेक प्रकारके अलंकार पहने, तरह-तरहके शस्त्र लिये, पैदेसे अपना मुख छिराये और घोड़े आदि विविध सवारियोंपर सवार स्थियें चली जा रही थीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ उनके पीछे हाथमें लाठियें लिये तरह-तरहके आमूषण पहने दासीपुत्रगण चले जा रहे थे । उनके पीछे भगवान् रामचन्द्र और लक्षण, भरत,

तत्पृष्ठे भरतश्चापि शत्रुघ्नश्च ततो ययौ । ततः कुशो लवश्चाथ ततः सोऽप्यंगदो ययौ ॥७८॥
 ययौ ततश्चित्रकेतुः पुष्करश्च ततो ययौ । ततस्तक्षः सुवाहूथ युपकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥
 ततः सीता ययौ शीघ्रमुर्मिला च ततः परम् । मांडवी श्रुतकीर्तिश्च स्तुपाः सर्वाः क्रमाद्युः ॥८०॥
 ततस्ते मंत्रिणः सर्वे शिविकासंस्थिता ययुः । ततो ययुर्वानिराश्र कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥
 ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारगस्थिताः । ततो नृपाणां सैन्यानि ययुर्वाजिस्थितानि हि ॥८२॥
 ययुस्तस्ते यंत्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शनधनीखङ्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥
 ततो वारणमुख्याश्च नववाद्यसमन्विताः । ततश्चोप्राः सुवर्णानां ततः पृष्ठे खरादयः ॥८४॥
 एवं रामः शनैर्मार्गं चामराद्यैः सुवीजितः । सीतया जालरन्ध्रैश्च वीक्षितश्च मुहुर्मुहुः ॥८५॥
 ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मागधवंदिभिः । पश्यन्नृत्यान्यप्सरसां शृणुन्स गायनान्यपि ॥८६॥
 सेनानिवेशस्थानानां यात्राकांडे यथोदिता । मया पूर्वं सुरचना तद्रासीत्पुनस्त्वह ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे
 रामदासविष्णुसंवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामका सोमसोशियोंके साथ युद्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गं नानादेशान्विलंभ्य च । एकादशदिनैः प्राप सेनया तद्वजाह्नयम् ॥ १ ॥
 राममागतमाज्ञाय सुषेणो वेगवत्तरः । प्रत्युद्ययौ स्वकपिभिर्विश्लेष्मसमन्वितैः ॥ २ ॥
 नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्तं न्यवेदयेत् । राम राम महावाहो प्रतापाच्च वै मया ॥ ३ ॥

शत्रुघ्न, कुश, अङ्गद, चित्रकेतु, पुष्कर, तथा और उनके पीछे राजपुत्र सुवाहू चले जा रहे थे । राज-पुत्रोंकी टोलीके पीछे सीता, उमिला, मांडवी, श्रुतकीर्ति और उनके पीछे उनकी पतोहुए चली जा रही थीं । उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकियोंपर बैठे चले जा रहे थे । उनके भी पीछे पर्वतके समान बड़े-बड़े आकारवाले बानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राजे चले जा रहे थे । उनके पीछे उन राजाओंकी सेनायें धोड़ोंपर सवार होकर चली जा रही थीं । उनके पीछे कितनी ही वैलगाड़ियोंपर लड़े हुए तोप आदि यन्त्र चले जा रहे थे ॥ ७७-८३ ॥ उनके पीछे मुख्य-मुख्य हाथी अनेक प्रकारके बाजे लादे हुए चले जा रहे थे और उनके भी पीछे एक बहुत बड़ा हाथी चल रहा था, जिसपर राष्ट्रकी पताका सुणोभित हो रही थी । उनके पीछे सुवर्णसे लड़े हुए ऊंट और उनके पीछे और-और सामान लादे हुए गधे तथा खच्चर आदि चल रहे थे और सीताजी अपनी सवारीके झरोखोंसे बार बार रामको निहार रही थीं ॥ ८५ ॥ मागध-बन्दीजन आदि विविध प्रकारकी स्तुतियें कर रहे थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-गान हो रहे थे ॥ ८६ ॥ राम-चन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भी थे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लौंघते हुए यारह दिनमें हस्तिनापुर पहुंच ॥ १ ॥ रामके पहुंचनेका समाचार पाते ही सुषेण वीस लाख सैनिकोंको लेकर आ पहुंचा ॥ २ ॥ रामके समक्ष पहुंचकर उसने सीता-रामको प्रणाम किया और कहने लगा—हे महावाहो राम । आपके

चतुर्दशिनं युद्धं कृतमेभिः सुदृष्टकरम् । अधुना त्वं समायातः क्वैते स्थास्यन्निति भूतले ॥ ४ ॥
 सुषेणस्य वचः श्रत्वा तमप्याश्वासयत्प्रभुः । अथ रामः स जाह्नव्याश्वोत्तरे परमे तटे ॥ ५ ॥
 सेनानिवासमकरोदृदर्श रिषुवाहिनीम् । तां निशां समतिक्रम्य द्वितीये दिवसे ततः ॥ ६ ॥
 चोदयामात् युद्धाय वानरान् रघुनंदनः । ततस्ते वानराः सर्वे जाह्नव्यामवप्लुत्य च ॥ ७ ॥
 रामं सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समरं मुदा । ततस्ते वानराश्वकः सिंहनादानभयंकरान् ॥ ८ ॥
 वादयामासुवर्द्यानि दृष्टुः शत्रुवाहिनीम् । नलाद्यास्तेऽपि श्रीरामसेनां दृष्टाऽतिविस्मिताः ॥ ९ ॥
 चकिता भयभीताश्च निर्ययुः संगरं जवात् । ततस्ते वानराः सर्वे गंगामुत्तरं वेगतः ॥ १० ॥
 दृष्टिः पर्वतैर्वृक्षैः शिलाभिमुष्टिभिः पदैः । निजघ्नुः शत्रुवीरांस्ते कीर्तयंतो रघृत्तमम् ॥ ११ ॥
 नलवीराश्च ते सर्वे शख्स्तीक्षणैः कपीश्वरगन् । निजघ्नुः समरे वेगाद्रभूत तुम्लो रणः ॥ १२ ॥
 अथ तैर्वानरैः सर्वे बलाद्रूक्षैः प्रपीडिताः । पराङ्मुखाः कृताः सर्वे रणाते नलसैनिकाः ॥ १३ ॥
 तान् दृष्टा ते नलाद्याश्च रणादीरान् पराङ्मुखान् । निहतान्कपिरीत्याचोदयन्तृपतीस्तदा ॥ १४ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जंबूदीपनिवासिनः । तथा द्वीपांतरेऽन्नता ये बृद्धाश्च पुरोदिताः ॥ १५ ॥
 ययुर्युद्धाय सञ्चद्वा नानावाहनसंस्थिताः । तान्सर्वानागतान्दृष्टा ययुः श्रीगमसैनिकाः ॥ १६ ॥
 जंबूदीपांतरस्थाश्च तथा द्वीपांतरस्थिताः । युवानश्च नृपाः सर्वे नानावाहनमस्थिताः ॥ १७ ॥
 सुग्रीवश्चागदश्वाश्च हनुमांश्च विभीषणः । जांवशांश्च सुषेणश्च संपातिर्मकरध्वजः ॥ १८ ॥
 गुहको भूरिकीर्तिश्च कंबुकठः प्रतापवान् । तथाऽन्ये जनकाद्याश्च ययुः संग्रामभूतलम् ॥ १९ ॥
 तदोभयोर्महानासीत्सैन्ययोर्वीरनिःस्वनः । नववाद्यानि वै नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥ २० ॥
 तदा ब्रह्मादयो देवाः शिवेन सहिताश्च खे । सद्वधेनाथ सोमेन देवेन्द्रेण युता मुदा ॥ २१ ॥
 नानाविमानमारुदा ददृश्युद्रकौतुकम् । अथ चंद्रादयो देवाश्वक्रुमंत्रं परस्परम् ॥ २२ ॥

प्रतापसे मैने चौदह दिनों तक इन लोगोंके साथ भयंकर युद्ध किया है । अब आप भी आगये हैं तो ये दुष्ट वचकर कहाँ जायेंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वासन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुकी सेना देखी । रात बीत जानेपर सबेरे ही रामने वानरोंको युद्धके लिए विदा किया । रामकी आज्ञासे वे लोग सीता तथा रामको प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नतासे गंगाजीको पार करके संग्रामभूमिमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयंकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारू वाजे वजाये और शत्रुकी सेनापर घावा बोल दिया । रामकी हेनाको देखकर वे नल आदि राजे बड़े विस्मित हुए ॥ ६-८ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए जा डटे । इसके अनन्तर वे सब वानर पत्यरके बड़े-बड़े खण्ड और वृक्ष ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करते हुए शत्रुपक्षके बीरों-का संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर नलकी सेनाके भी बीर अपने तीखे शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ और वानरोंने अपनी वृक्ष-पाषाणवर्षासे शत्रुओंके छुड़ा दिये । जिससे नलके सेनिकोंको वहाँसे पीछे हटना पड़ा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपने बीरोंको भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंको प्रोत्साहित किया ॥ १४ ॥ इससे जम्बूदीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर आये हैं, वे सब अनेक प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ हो-होकर बड़ी तैयारीके साथ मिकल पड़े । उन लोगोंको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामके सेनिक जा डटे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उधर जम्बूदीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपस्थित थे । इधर सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, विभीषण, जाम्बवान्, सुषेण, सम्पाती, मकरध्वज, भूरिकीर्ति, कंबुकण्ठ तथा जनक आदि बीर लड़नेके लिए संग्राम-भूमिमें डटे हुए थे । उस समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकार-के बाजे बज रहे थे ॥ १७-२० ॥ उस समय शिव, ब्रह्म, सोम और इन्द्र आदि देवताओंको साथ लेकर

महाभयं समुपन्नं प्रलयोऽद्य भविष्यति । ब्रह्मदत्तवराश्वै सोमवंशोऽद्वा नृपाः ॥२३॥
 रामो विष्णुरयं साक्षात्कथं जयपराजयौ । भविष्यतः कथं युद्धान्निवृत्तिरुभयोरपि ॥२४॥
 भविष्यति उपायः कः कायौ युद्धानवारणे । तदा ब्रह्मा सुरानाह किंचिददृष्ट्वा वयं रणम् ॥२५॥
 करिष्यामस्तयोः सर्वयं रामसोमजयोस्त्वह । हत्युक्त्वा सकलान्वेधा ददर्श गणकौतुकम् ॥२६॥
 तथोभयोः सैन्ययोश्च वसुवुर्यत्रनिःस्वनाः । यंत्रोत्थवह्निज्वालाभिर्व्यासा दशदिशीऽभवन् ॥२७॥
 यत्रोत्थनानागटिकाभिनिंजनुस्ते परस्परम् । शतधनोभिस्तथा जग्मुः शकटस्थाभिरादरात् ॥२८॥
 तथा वीरा निजनुस्ते वाणैः खड्डैः परश्वधैः । परस्परं तोमरेश्च भिर्दिपालैश्च सुद्धरैः ॥२९॥
 परिघैश्चक्रवाणैश्च कुर्तैः शूलैश्च पट्टिशैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्रं तथा पिता ॥३०॥
 पितामहस्तथा पौत्रं पौत्रश्चापि पितामहम् । प्रन्योन्यं कुलजात्याख्यादिकं संश्राव्य वै मुद्दः ॥३१॥
 तथा रणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वाणैः प्रपौत्रोपि जघान प्रपितामहम् ॥३२॥
 मातामहं तु दौहित्रस्तदा वाणैरताढयत् । तथा मातामहश्चापि दौहित्रं च रणोऽहनत् ॥३३॥
 एवं परस्परं चासीयुद्धं तल्लोमहर्षणम् । तत्र ये ये हता वीराः संगरे रामसेवकाः ॥३४॥
 तान्सर्वान् जीवयामास तदा पवननंदनः । द्रोणाचलौपधीभिश्च वारं वारं स्वसैनिकान् ॥३५॥
 रिपुसैन्ये मृता ये ते मृता एव तु नोत्थिताः । एवं तदा सोमवंशनृपास्ते क्षीणतां ययुः ॥३६॥
 तदा लोहितपूरा सा वभूव सुरनिम्नगा । अर्कपद्मिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥३७॥
 निपातिता राघवीर्यनृपैः सा वरसंगरैः । एवं वभूव समरः षण्मासं हस्तिनापुरे ॥३८॥
 ततस्ते सोमवंशस्था नृपाः किंचिद्वलैर्युताः । विष्णुणा विगतोत्साहा निर्ययुः संगरं स्वयम् ॥३९॥
 तानागतांस्तदा वीक्ष्य कुशाद्या वालकाश्च ते । रामदोनां ययुस्त्वग्रे रथस्था रणभूतलम् ॥४०॥

अपने वाहनपर बैठे हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोंका वह भयानक युद्ध देखने लगे । कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि देवताओंने आपसमें कहा कि यह बड़ा भयावह समय आ पहुँचा है । ऐसा लगता है कि आज प्रलय हो जायगा । इधर ये सोमवंशी राजे ब्रह्मासे वर प्राप्त किये हुए हैं, इसलिए किसीसे पराजित नहीं होंगे । उधर रामरूप धारण किये साक्षात् विष्णुभगवान् लड़ने आये हैं । ऐसी अवस्थामें जय-पराजय कैसे हो सकता है ? और यदि यह जगहा ते करानेका विचार किया जाय तो कैसे हो ॥२१-२४॥ उनकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि हम थोड़ी देरतक इनका युद्ध देखकर इन दोनोंमें सन्धि करवा देंगे । ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकौतुक देखने लगे । उस समय दोनों सेनाओंसे तोप बन्दूक आदिकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ रही थी । उन यंत्रोंके मुखसे निकली आगकी लपटोंसे दसों दिशायें व्याप्त हो गयीं ॥ २५—२७ ॥ बन्दूककी गोलियोंसे आपसमें एक दूसरेको मार रहा था । दूसरी और बड़ी-बड़ी गाढ़ियोंपर रक्खी हुई तोपें अलग आग उगल रही थीं । दोनों पक्षके बीर आपसमें पट्टिश आदिसे लड़ रहे थे । उस समय युद्धके मदसे मतवाले होकर पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, पौत्र पितामहको तथा पितामह पौत्रको अपना ग्राम-कुल आदि बतलाकर मार रहा था । प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दौहित्र मातामहको और मातामह दौहित्रको निःशब्दभावसे मार रहा था ॥ २८-३३ ॥ इस तरह परस्पर लोमहर्षक युद्ध हो रहा था । उस समय संग्राम-भूमिमें जो-जो रामके संनिक मरते थे, उन्हें हतुमानजी द्रोणाचलको संजीवनी बूटीसे जीवित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु शत्रुकी सेनामें जो मरे, वे मरे ही रह गये । इस कारण वे सब सोमवंशी राजे धीरे-धीरे धीणबल हो गये ॥ ३५ ॥ उस संग्रामसे रुधिरकी गंगा वह चली और रामके संनिकोंने नल आदि राजाओंकी बारह पद्म सेनाका संहार कर डाला । इस तरह ४१ महीने तक हस्तिनापुरीमें वह महासंग्राम होता रहा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अन्तमें वे सोमवंशी राजे अपनी थोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं संग्रामभूमिमें आये ॥ ३८ ॥ उनको आये देखकर कृश आदि वालक रथ-

नलं ययौ कुशः शीघ्रं नद्युकं स ययौ लवः । जातीकरमंगदश्च तथा च वसुदं नृपम् ॥४१॥
 चित्रकेतुर्ययौ शीघ्रं तथा लघुश्रुतं नृपम् । ययौ स पुष्करः शीघ्रं तक्षकः सुरथं ययौ ॥४२॥
 अजमीढं सुबाहुश्च यूपकेतुर्ययौ चलम् । यूपकेतुहिं तत्सैन्यं चकारागोचरं शरैः ॥४३॥
 वायव्याभ्रेण चिक्षेप लवस्तं लवणांभसि । तदा ते सप्त वीराङ्गच नलाद्याः पर्वता इव ॥४४॥
 युयुधू रघुवीरस्य बालकैः सह संगरे । न विरेजुर्बलैर्हीनाः स्कंधदीननगोपमाः ॥४५॥
 कुशो विव्याध चाणैस्तं नलं संग्राममूर्धनि । तदा नलः प्रभिर्भाँगः स्वचाणैस्तं व्यतर्जयत् ॥४६॥
 ततः कुशः स्वचाणौधैर्नलस्याश्वान्ध्वजं धनुः । छत्रं सारथिनं छिन्वा नलं चाणैरताढयत् ॥४७॥
 नद्युकं चापि विव्याध स्वचाणौधैर्लवस्ततः । नद्युकश्च लवं चाणैस्तदा व्याकुलमातनोत् ॥४८॥
 नद्युकं निजचाणौधैश्चकार विरथं लवः । एवं जातीकरं चाणैरंगदः संप्रताढयत् ॥४९॥
 प्रताढयज्ञातीकरः परिघेणांगदं तदा । ततो जातीकरं चाणैरंगदोऽपातयद्विः ॥५०॥
 चित्रकेतुः स्वचाणौधैः क्रोशेन वसुदं नृपम् । चिक्षेप स्यदनाद्वेगात्तद्वितमिवाभवत् ॥५१॥
 तथा लघुश्रुतो चाणैर्हदि विव्याध पुष्करम् । तदा स पुष्करः क्रोधाद्वाणैर्लघुश्रुतं रथे ॥५२॥
 भित्तिचित्रोपमं कृत्वा वादयामास दुन्दुभिम् । सुरथथापि तक्षं स वर्वा शरवृष्टिभिः ॥५३॥
 ततस्तक्षः स्वचाणौधैः सुरथं गगनांगणे । सरथं आमयामास शुष्कपणं यथा मरुत् ॥५४॥
 अजमीढस्तदा सर्वान्वृवजान्व्याकुलीकृतान् । वीक्ष्य रामात्मजाधैस्तैर्वर्वर्ष शरवृष्टिभिः ॥५५॥
 सुबाहुस्तं स्वचाणौधैश्चकार विरथं तदा । अजमीढस्ततोऽन्ये स रथे स्थित्वा ययौ पुनः ॥५६॥
 मुमोच पवनाखं स कुशादीनां वधे क्रुधा । तं दृष्ट्वा यूपकेतुस्तं पश्चगामं मुमोच सः ॥५७॥
 तदा ते कोटिच्छः सर्पाः पपुस्तं कंपनं क्षणात् । रथस्थः स नलः सर्पन्दृष्ट्वा गारुडमुत्तमम् ॥५८॥

पर सवार होकर रणभूमिमें जा डटे ॥ ४० ॥ उस समय नलके सम्मुख कुश, नद्युकके समक्ष लव, जातीकरके सामने अङ्गद, वसुदके सम्मुख चित्रकेतु, लघुश्रुतके सामने पुष्कर, सुरथके समक्ष तक्षक, अजमीढ़के तामने सुबाहु और बल नामक राजाके सामने यूपकेतु जा पहुंचे । यूपकेतुने थोड़े ही समयमें समस्त सेनाका नाश कर दाला ॥ ४१-४३ ॥ लवने अपने वायव्य अस्त्रसे उन मरे हुए सेनिकोंको खारे समुद्रमें फेंक दिया । ऐसी अवस्थामें पर्वतकी नाई बड़े-बड़े वै नल आदि सातों वीर रामजीके बालकोंके साथ युद्ध करने लगे । यह सब करते हुए भी वे राजे उसी तरह ओछे लग रहे थे, जिस तरह डाली और पत्तोंसे विहीन वृक्ष हों ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ थोड़ी देर बाद कुशने अपने बाणोंसे नलको धायल कर दिया । तब नल भी दूने देगके साथ कुशगद झटा, किन्तु भीका पाकर कुशने बाणों द्वारा नलके रथ, थोड़े, ध्वजा, धनुष, छत्र और सारथीको नष्ट करके उसके शरीरपर भी प्रहार किया ॥ ४६॥४७॥ उधर लवने अपने बाणसमूहसे नद्युकको और नद्युकने अपने शस्त्रोंसे लवको व्याकुल कर दिया ॥ ४८ ॥ अन्तमें लवने अपनो बाणवर्षासि नद्युकके रथको काट डाला । इसी तरह अङ्गदने जातीकरपर प्रहार किया और जातीकरने परिघ चलाकर अङ्गदपर प्रहार किया । अन्तमें अङ्गदने अपने बाणोंसे जातीकरको बराशायी कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसी प्रकार चित्रकेतुने अपने बाणोंसे वसुदको उसके रथसे उठाकर दूर फेंक दिया । यह एक बड़ी कौतुकमयी घटना थी ॥ ५१ ॥ उधर लघुश्रुतने अपने बाणोंसे पुष्करपर प्रहार किया और पुष्करने कुपित होकर अपने बाणोंसे बहुश्रुतको एक तसवोरको तरह उसके रथमें ही जड़ दिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजा दी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर तक्षकने अपनी बाणवर्षासि सुरथको रथ समेत नचा दिया, जैसे सूखे पत्तोंको वायु नचा देता है ॥ ५४ ॥ उसी समय अजमीढ़ने जब देखा कि रामके वीर पुत्र उसके पूर्वजोंको बहुत सत्ता रहे हैं तो वह हन लोगोंपर धोर बाणवृष्टि करने लगा ॥ ५५ ॥ इसी बीच सुबाहुने अजमीढ़के रथको काट डाला और वह दूसरे रथपर आरूढ़ होकर फिर संग्राम-भूमिमें आ डटा ॥ ५६ ॥ आते ही उसने कुश आदिको मारनेके लिए पवनास्त्रका प्रयोग किया । उसके भयक्षर पवनास्त्रको देखकर यूपकेतुने पश्चगास्त्र चलाया ॥ ५७ ॥ जिससे क्षणभरमें उन सूपोंने सब वायु पी ली । उधर

मुमोच पश्चात्तस्य निवृत्यर्थं ततोऽख्ववित् । तदा कुशः प्रमुमोच राक्षसात्मं भयावहम् ॥५९॥
 नद्युकथं तदा वेगाद्वद्धथस्तं तं व्यसर्जयत् । तदा क्रोधाल्लुवशापि मेघात्मं तं व्यसर्जयत् ॥६०॥
 तदा लघुश्रुतश्चापि पवनात्मं मुमोच सः । तदा स हनुमान् शीत्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥
 प्रपिवन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पूष्पकारामसंस्थितौ ॥६२॥
 सीतारामौ मुदा युक्तौ लक्ष्मणाद्यैर्दर्दशतुः । एवं युद्धं पञ्चमासान्सैकादश दिनान्यभूत् ॥६३॥
 एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्समीरिताः । एवमेकादशैर्मासैकादशदिनैरपि ॥६४॥
 त्रेतायुगभवैर्दिव्यैः समाप्तिं संग्रहस्य च । अदृष्टा स कुशो वेगाद्वद्धात्मं संधेतदा ॥६५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे रामदास-
 विष्णुदाससंवादे सोमवंशोद्भवनृपाणां युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मैत्री)

श्रीरामदास उवाच

ब्रह्मात्मं संदधानं तं दृष्टा वेधाः सुरैः सह । सोमेन च बुधेनापि विमानेन ययौ भुवम् ॥१॥
 विमानादवरुद्धाथ तदा ब्रह्मा कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास मा त्वमस्तं विसर्जय ॥२॥
 पालयस्व चचो मेऽद्य नाके सोमाय वै मया । द्वापरांतं वरो दत्तस्त्वजेयाथ रणाजिरे ॥३॥
 भविष्यन्ति नलाद्याथ सर्वे युध्मत्कुलोद्भवाः । पुरा त्विति सुराये हि कस्मिन्शिच्चकारणांतरे ॥४॥
 अतस्त्वं कुश माऽत्मं मे नलाद्येषु विसर्जय । तद्ब्रह्मावचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥
 अधुना क्षणमात्रेण सर्वान्दरवान्करोम्यहम् । नोचेत्कथय रामाय तस्याज्ञां मानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे नलने जब पश्चात्तस्व देखा तो गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५८ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसी समय नद्युकने वह्निस्त्र चलाया । तब मारे क्रोधके लवने उसपर भेघास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुश्रुतने पवनास्त्र छोड़ा । इसी समय हनुमानजीने अपना मुख फैलाकर सब हृवा पी ली और भेघकी तरह बीमत्स स्वरमें गरजे । उधर विमानपर बैठे हुए पुष्कर, राम तथा सीताजी उस महायुद्धको देख रही थीं । इस तरह वह युद्ध पाँच महीना ग्यारह दिन चला ॥ ६१-६३ ॥ ग्यारह ही दिनके लगभग अयोध्यासे हस्तिनापुर आनेमें लगे थे । सब मिलाकर त्रेतायुगके दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें ग्यारह महीने और ग्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ उधर जब कुशने देखा कि अब कोई अन्य उपाय नहीं है तो ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे त्रृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा- जब ब्रह्माने देखा कि कुश ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने जा रहा है तो वे बहुतसे देवताओं और बृष्ट तथा सोमको साथ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उत्तर-कर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे मेरी बात मान लो । योंकि एक बार मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवंशियोंको वरदान दिया था कि द्वापर तक संग्रामभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ३ ॥ आगे चलकर तुम्हारे वंशमें नल आदि बड़े प्रतापकाली राजे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण है कुश ! तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग न करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा कि मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ । यदि आप कुछ कहना चाहते हों तो जाकर रामचन्द्रजीसे कहिए, मैं उन्हींकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

यदा त्वया वरो दत्तस्तदा किं विदितं तव । नासीच्छ्रीरामसामर्थ्यं द्वयुना प्रार्थ्यसे मुधा ॥ ७ ॥
 त्वयि चेद्वर्तते किंचित्सारं धर्तुं रणं मया । तर्हि कुरुष्व साहाय्यं नलादीनां सुरैर्युतः ॥ ८ ॥
 त्वया रणे संगरोऽद्य मम पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकासीना जालरंध्रैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥
 एवं कुशस्य वचनं श्रुत्वा लज्जायुतो विधिः । सोमेनाथ बुधेनापि नलाद्यान्प्राह वेगतः ॥ १० ॥
 रे रे मूढाः शृणुष्वं मे वचनं हि गतायुषः । साक्षान्नारायणं रामं युयं योद्युं समुद्यताः ॥ ११ ॥
 केनेयं शिक्षिता बुद्धिः सर्वेषां धातकारिणी । गच्छुष्वं शरणं रामं नोचेद् मरिष्यथ ॥ १२ ॥
 ममायं जनकः साक्षाद्रामो विष्णुर्न संशयः । इति धिक्कृत्य तान्वेधाः कुशं वचनमववीत् ॥ १३ ॥
 यावद्यास्याम्यहं रामात्पुनस्त्वां कुशवालक । तावच्चेन्मोक्ष्यसे वाणं तर्हि मां हतवानसि ॥ १४ ॥
 इत्युक्त्वा तं कुशं वेदा नलाद्यैः परिवेष्टितः । ययौ रामं सुरैर्युक्तः पुरस्कृत्य वृषभजम् ॥ १५ ॥
 शिवमागतमाज्ञाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । प्रत्युद्गम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥ १६ ॥
 ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्वेदुनन्दनः । ततः सभायां रामस्य तिष्ठुन्वेधा नलादिभिः ॥ १७ ॥
 प्रणामान्कारयामास सोमेन च बुधेन च । ततस्तान्सहस्रोत्थाय रामचन्द्रः करेण हि ॥ १८ ॥
 श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यात्पृथक् पृथक् । ततः प्रपञ्चे वेगेन ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥ १९ ॥
 सर्वे किमर्थमानीतास्त्वत्रैते सोमवंशजाः । वद त्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥ २० ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा वचोऽब्रवीत् । राम राम महावाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥ २१ ॥
 रक्षस्वैतान्त्रपानद्य वरदानान्मम प्रभो । द्वापरांतमजेयत्वं दत्तमस्ति मया पुरा ॥ २२ ॥
 ममास्त्रं सन्दधानं निवारय कुशं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनायकः ॥ २३ ॥
 सभायामाह ब्रह्माणमजेयत्वं त्वयोदितम् । क गतं चाद्य समरात्किर्मर्थमिह चागताः ॥ २४ ॥

जब आपने उनको वरदान दिया था, तब क्या रामकी सामर्थ्यका आपको ध्यान नहीं था ? तब तो रामको कुछ समझे नहीं, अब झूठ-मूठकी प्रार्थना करने आये हैं ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो देवताओंको साथ लेकर आप नल आदिको सहायता करिए । मैं आपके साथ घनघोर युद्ध करें और रामचन्द्रजों तथा सीता पुष्पक विमानके झरोखोंसे मेरा और आपका संघर्ष देखें ॥ ८ ॥ ६ ॥ इस प्रकार कुशकी बात सुनी तो ब्रह्माजा लज्जित हो गये और नल आदिको फटकारते हुए कहने लगे—अरे मूँहो ! जान पड़ता है कि तुम लोगोंकी आयु समाप्त हो गयी है, जो साक्षान्नारायणस्वरूप रामचन्द्रजोंसे युद्ध करने आये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाश उपस्थित करनेवाली यह दुरुद्धि तुमको किसने दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें जाओ, नहीं तो एक एक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे इस पृथ्वीतलपर अवतरे हैं । इस तरह उन लोगोंको डॉट-फटकार करके ब्रह्माजी कुशसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न लौट आऊँ, तबतक बाणका प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानों उनका नहीं, तुमने मेरा वध किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुशसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आगे करके नल आदिके साथ-साथ श्रीरामचन्द्रजोंके पास गये । जब रामने सुना कि शिवजी आ रहे हैं तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीको भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकी विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाभवनमें गये । वहाँ ब्रह्माने सोम और बुधसे श्रीरामको प्रणाम करवाया । तब रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना । कुछ देर बाद रामने ब्रह्मासे पूछा कि आप इन सोम-वंशियोंको यहाँ किस लिए लाये हैं ? जो इसका वास्तविक कारण हो, वह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महावाहो ! आज आप मेरी बात मानकर इन नल आदि राजाओंकी रक्षा कीजिए । मैंने इन लोगोंको यह वरदान दे रखा है कि द्वापरपर्यन्त तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर कुश मेरे शस्त्र (ब्रह्मास्त्र) का सन्बान करके खड़े हैं । उन्हें भी

तद्रामघचनं श्रुत्वा रामं प्राह विधिः पुनः । सर्वेषां पुरतो मेऽस्ति बलं न तु तवाग्रतः ॥२५॥
त्वं तु मे जनकः साक्षादतस्त्वां प्रार्थयाम्यहम् । ततो रामः पुनः प्राह विहस्य चतुराननम् ॥२६॥
न श्रोप्यति वचो मेऽद्य कुशोऽयं यौवनस्थितः । प्रायः कुमारा वृद्धानां वाक्यमग्रे भजन्ति न ॥२७॥
अन्यथापि शृणुच्च त्वं यच्छास्त्रेऽप्युच्यते वचः । लालयेत्पर्यं वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥२८॥
प्राप्ते तु पोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् । अतस्ते बालकाः सर्वे कुशाद्याः स्वार्थतत्पराः ॥२९॥
न भोप्यति वचो मेऽद्य तान्गत्वा प्रार्थयस्व हि । ततः प्राह पुनर्वृद्धा रणक्रोधात्कुशो मया ॥३०॥
वाक्यं रथ्यं मंजुलं च नैवाद्य वदति प्रभो । ततः प्राह विधिं रामः पुनर्वाक्यं विनोदयन् ॥३१॥
विधे त्वं गच्छ वाल्मीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति । ततः स रामवाक्येन वाल्मीकिं पुष्पके स्थितम् ॥३२॥
गुनिभिर्मूर्तिशालायामूर्च्चं सर्वैः स्थितं विधिः । नलाद्यैः सहितो गत्वा वृत्ते सर्वं न्यवेदयत् ॥३३॥
विधिमाहाथ वाल्मीकिर्जात्वा राममनोगतम् । खीलब्धजीविताशैते भवन्तु सुखिनस्त्विति ॥३४॥
नलादीनां ख्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विदेहजाम् । कुशोऽपि जानकीवाक्याच्छान्तिमेष्यति बालकः ३५
तथेति ते नलाद्याश्च दूतान् प्रेष्याथ सादरम् । आनीय स्वकलत्राणि शतशस्तु तदा जवात् ॥३६॥
जानकीं प्रेष्यामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवख्रियः । उपायनानि संगृहा जानकीं प्रययुर्जवात् ॥३७॥
ददृशुर्जानकीं नारीश्वलायां स्वसखीवृताम् । म्नुषाभिः सेवितपदां पर्यके निद्रितां मुदा ॥३८॥
ततः स्त्रीः समागताः सीता दृष्टा चामरजीविता । मचकादवरुद्धाथ घृनपाशोपिवर्हणा ॥३९॥
स्वपृष्ठे भंचकं कृत्वा संस्थिताऽसीत्सखीवृता । म्नुषाभिर्विजितां रम्यां प्रणेषुस्तां परख्रियः ॥४०॥
तासां सीमन्तरत्नौषप्रभया पदपंकजे । विरेजतुस्ते सीतायाश्चित्ररागविचित्रिते ॥४१॥
उपायनानि संगृहा ताम्यः सा जनकात्मजा । समालिङ्ग्य निवेश्याथ ताः प्राह सुस्वरं वचः ॥४२॥

आप रोक दीजिए । ब्रह्माकी बात सुनकर रामने कहा कि आपने जब इनको अजेय कर दिया था, तब फिर ये लोग संग्रामभूमि छोड़कर यहाँ मेरे पास वयों आये हैं ? ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मा कहने लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बल है, किन्तु आपके लिए मेरेमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥ आप मेरे पिता हैं, इसी नाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । फिर राम बाले कि कुश युवावस्थामें है । संसारमें प्रायः देखा जाता है कि कुमार लोग वृद्धोंकी बात नहीं मानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त आस्त्रमें भी कहा गया है कि पौच वर्षोंकी अवस्थातक वचोंका दुलार करे, दस वर्षोंकी अवस्था तक डरायेवामकाये, किन्तु सोलह वर्षोंका हो जानेपर बेटेके साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए । इसी कारण वे स्वार्थी वालक भेरी बात नहीं मानेंगे । आप स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए । ब्रह्माने कहा कि संग्राम-जनित क्रोष्टके कारण आज तो वह हमसे सीधी बात भी नहीं करता । फिर विनोदवश रामने ब्रह्मासे कहा कि आप वाल्मीकिके पास जाइए । वे आपको कोई युक्ति बतलायेंगे । रामके कवनानुसार ब्रह्मा नल आदिको अपने साथ लेकर वाल्मीकिके पास गये । वाल्मीकिजी उस समय रामके साथ पुष्पक विमानपर ही रहा करते थे । इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष समय नहीं लगा । वहाँ जाकर ब्रह्माने वाल्मीकिको सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ २८-३३ ॥ रामका मनोगत अभिप्राय जानकर वाल्मीकिने ब्रह्माजीसे कहा कि अपनी स्त्रियोंकी कृपासे ये लोग जीवनदान पा सकते हैं । उसका उपाय यह है कि नल आदिकी स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतियोंके जीवनकी भीख माँगें । यदि सीता प्रसन्न हो गयीं तो कुश भी मान जायगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिके कवनानुसार नल आदिने अपनी स्त्रियोंको लिवा लानेके लिए सेकड़ों दूत भेजे और वे तुरत्त उनको लिये हुए जा पहुँचे । इसके अनन्तर वे स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं । वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियोंने देखा कि सीता अपनी सखियोंसे घिरी हुई बैठी ज्ञापको ले रही है और पतोहरे उनकी सेवामें तत्पर हैं ॥ ३६-३८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो तकिया बगलमें कर ली और उठ बैठीं । उस समय उन स्त्रियोंने उन्होंने प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजरानियोंके सीमन्तरत्नकी प्रभासे सीताके पैर चित्र-विधिच

किमर्थमागता युर्य मा भेतव्यमितः परम् । कथयच्चं स्वीयमिष्टं ऽन्नद्वोऽय करोम्यहम् ॥४३॥
 तदा ताः कथयामासुः सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । देहि कंकणदानानि कुशं युद्धान्निशारय ॥४४॥
 तथेति जानकी चोक्त्वा ज्ञात्वा राममनोगतम् । नारीहस्तान्मोचनीयाथैते निर्जरवच्चिति ॥४५॥
 आहृष्ट शिविकायां सा ताभिर्युक्ता कुशं यथौ । तदा तं सात्वपामाम क्रोधं त्यज कुशाधुना ॥४६॥
 निवर्त्तस्व रणादय मृणु मे वचनं शिशो । तथेति जानकीवाक्याद्विहस्याथ कुशस्तदा ॥४७॥
 माश्रा तैर्बैधुभिर्युक्तः सेनया संन्यवतंत । पुष्पकं प्रययौ सीता नृपस्त्रीपरिवेष्टिता ॥४८॥
 कुशाद्यास्ते कुमाराश्च सभायां राघवं ययुः । ततो वान्मीकिना ब्रह्मा नलाद्यैः सहितस्तदा ॥४९॥
 सनिर्जरः सभां गत्वा तस्थौ श्रीराघवाग्रतः । कुशाद्यास्तेऽपि श्रीगमं प्रणम्य तस्य संनिधौ ॥५०॥
 तस्युस्तेनालिंगिताश्च स्त्रीभिर्नीराजिता अपि । तदा रामोऽवृत्तिराक्यं ब्रह्माणं सदसि स्थितम् ॥५१॥
 रणाभिवर्तिता वालाः किमये तव वांछितम् । न मे राज्ये छत्रपतिद्वितीयोऽत्र भविष्यति ॥५२॥
 करणीयं नलाद्यैः किं तद्वदस्व सविस्तरम् । तदाऽऽसनादुत्थितः सः वेधा रामाग्रतः स्थितः ॥५३॥
 उवाच मधुरं वाक्यं सभायां रघुनन्दनम् । राम राम महावाहो भूमारश्च त्वया हृतः ॥५४॥
 चिरकालं कुतं राज्यं वैकुण्ठं पालयाधुना । कुरु सत्यं वचो मेऽय ददस्व हस्तिनापुरम् ॥५५॥
 नलादिभ्यस्त्वयोध्यायां कुशो राज्यं प्रशासतु । तदा रामो विधिं प्राह ममाप्येतत्त रोचते ॥५६॥
 वैकुण्ठं श्वो गमिष्यामि सीतया वन्धुभियुतः । दशवर्षमहस्त्राणि प्रोक्तमायुर्युगेऽत्र हि ॥५७॥
 तन्मया स्वीदसामर्थ्यात्कृतमद विधे मृपा । एकादश महस्त्राणि समास्त्वेकादशैव तु ॥५८॥
 तथैकादश मासाश्च गता मे दिवसा अपि । शेषमायुश्च किंचिन्मे तच्छ्व पूर्णं भविष्यति ॥५९।

प्रकारके दीख रहे थे ॥ ४१ ॥ इसके बाद सीताने उनकी भेटे स्वीकार कों और उनको हृदयसे लगाकर कहने लगी कि तुम लोग यहाँ किस कामसे आयी हो ? अपनो इच्छा प्रकट करो । तुम जो कुछ भी चाहोगा मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब उन रानियोंने युद्धसम्बन्धी सब वृत्तान्त बतात हुए कहा—हे देवि ! आज आप मेरी उत्तरती हुई चूड़ी रखनेके लिए कुशको युद्ध करनेसे रोक दाजिए ॥ ४४ ॥ सीताने मन ही मन रामकी इच्छा जान लो । उन्होंने सोचा—वे चाहते हैं कि स्त्रियोंके द्वारा नल आदिको जीवनशान मिले । यह सोचकर उन्होंने उन स्त्रियोंसे कहा—अच्छी बात है । इसके अनन्तर वे तुरन्त पालकीपर सवार हुई और कुशके पास जा पहुँचीं और कहा—बेटे कुश ! अब तुम अपने क्रोधका परित्याग कर दो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मरा बात मानकर संग्रामभूमिसे लौट चलो । जानकीकी बात सुनकर कुश मुस्कराये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाकी साथ लेकर लौट पड़े । सीता कुशको तथा उन स्त्रियोंको अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर आ पहुँचीं । वही चहुंचनेपर कुश आदि बालक सभामें रामचन्द्रजीके पास चले गये । इसके अनन्तर ब्रह्माजी भी बालमीकि तथा नल आदिको साथ लेकर सभामें रामचन्द्रजीके पास पहुँचे । कुश आदि बालक भगवान्द्वारा प्रणाम करके एक और खड़े हो गये ॥ ४७-५० ॥ रामने उनको अपने हृदयसे लगा लिया और स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी । कुछ देर बाद रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छानुसार कुश आदि बालक तो संग्राम-भूमिसे लौट आये । अब आपकी क्या इच्छा है ? अबसे मेरे राज्यमें कोई दूसरा छत्रधारी राजा नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अब आप यह भी बतला दीजिए कि नल आदिको क्या करना चाहिए । रामकी यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा बैठे और कहने लगे—हे राम ! हे महावाहो ! आपने पृथ्वीका भार उतार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य भी किया । अब चलकर वैकुण्ठधामकी रक्षा करिए और मेरी बात सच करनेके लिए नल आदिको हस्तिनापुरी दे डालिए ॥ ५३-५५ ॥ कुश आनन्दके साथ अयोध्याका राज्य करे । तब रामने ब्रह्मासे कहा कि यही बात मुझे भी जैव रही है ॥ ५६ ॥ कल मैं सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुण्ठधामको चल दूँगा । इस युगमें मनुष्यकी आयु दस हजार वर्ष निर्धारित की गयी है । किन्तु हे ब्रह्माजा ! मैं अपनी सामर्थ्यसे उस नियमको व्यर्थ करके यारह हजार वर्ष और यारह

द्वादशायां घटिकायां सुऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधि कुशः प्राह नलाद्या यदि मां विधे ॥६०॥
दास्यन्ति करभारं मे तहि तिष्ठतु चात्र ते । मदाज्ञां पालयन्तवेते तव वाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥
छत्रवीनाः सुखं त्वय वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिः श्रुत्वा पुनः प्राह कुशं प्रति ॥६२॥
छत्रमाज्ञापयस्वेतांस्तवाज्ञावशब्दिनः । दास्यन्ति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥
तथेति स कुशः प्राह विधि किंचित्स्मनाननः । अथ ते सोमवंशस्था नृपाः सर्वे विधि तदा ॥६४॥
प्रोक्तुर्वयं त्वया खीभिर्यास्यामो दिवमय वै । अजमादोऽय नृपतिर्भवत्वत्र गजाह्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिश्चोक्त्वा सभायां समुपाविशत् ।

अथ ब्रह्माऽजमीढाय ब्राह्मणेरभिपित्य च । गजाह्वये तं राजानं चकार राघवाज्ञया ॥६६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतरं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
सोमसूर्यवंशजयो मौत्रीकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका मित्रों तथा राजाओंको विदा करना)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्वयं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥
यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भूवि । ददस्वाज्ञां त्वया गंतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥
विभीषण त्वया स्थेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरित्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥
त्वं गच्छाग्रेव मे वाक्यात्थेति स विभीषणः । नत्वा रामं ययौ लक्ष्मीं राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥
ततः प्राह जाम्बवतं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवँस्त्वया स्थेयं यावद्भूम्यां कथा मम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ घड़ी-सी आयु ग्रेय बच्चो थी, सो भी कल पूरी हो जायगी ॥ ५९ ॥
ठीक बारह घड़ी बाद मैं वैकुण्ठघामके लिए चल दूंगा । तदनन्तर कृष्णने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल
धारि राजे मुझे करभार दें और मेरे आजानुसार चलें तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित
रखूँगा । इनको छत्र धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रवीनां होकर ये लोग आनन्दके साथ
रह सकेंगे । कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि आप इन्हें छत्र धारण करनेकी आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ये
सदैव आपकी आज्ञाका पालन करते हुए करभार देते रहेंगे ॥ ६०-६४ ॥ कृष्णने ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली ।
इसके अनन्तर उन सोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपनी स्त्रियें लिये हुए आपके साथ
स्वर्गको चले चलेंगे । अब इस हस्तिनापुरीका राजा यह अजमीढ़ बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी बात
स्वीकार कर ली और सभामें बैठ गये । इसके बाद रामकी आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमीढ़का राज्या-
भिषेक कराके हस्तिनापुरीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतरं श्रीमदानन्दरामायणे
वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतं ज्योत्स्ना भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्य वानरोंने भगवान्से प्रार्थना की—
हे राम । हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेंगे । आपके दिना हमारा इस पृथ्वीपर जीवित रहना
कठिन है । कृपया हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा—हे विभीषण ! तुम मेरे
कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ही लंका चले
जाओ । विभीषणने भी भगवान्सी की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्घुको प्रस्थान कर दिया । चलते समय
भगवान्से विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले—हे जाम्बवान् ! जबतक
दृष्टि संसार मेरी क्षया प्रचलित रहे, तब तक तुम इसी लोकमें रहो । द्वापरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

प्रचरिष्यति तावच्च द्वापरांते पुनर्मम । भविष्यति दर्शनं ते गच्छाद्यैव सुखं वस ॥ ६ ॥
 स्वया कुतं यत्साहाद्यं लंकायां मे वनेऽपि च । अतस्त्वं शशुरो भूत्वा द्वापरे रुयातिमेष्यसि ॥ ७ ॥
 तथेति रामवचनाद्रामं सीतां प्रणाय्य सः । जांचयान्निर्ययौ शीघ्रं राघवेणातिपूजितः ॥ ८ ॥
 रामः प्राह हनूमन्तं वन्स तिष्ठ यथासुखम् । यदा सेतौ पणस्ये हि द्वापरांतेऽर्जुनेन वै ॥ ९ ॥
 भविष्यति शरैः सेतुं कर्तुं मे दर्शनं तदा । त्वं लभिष्यमि गच्छाद्य सुखं वस भजस्व माम् ॥ १० ॥
 तद्रामवचनं श्रृत्वा नत्वा रामं च लक्ष्मणम् । सीतां प्रणाम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥ ११ ॥
 ततो रामो निजात्कंठात्नवरत्नविभृष्यितम् । हारं ददौ तथा सीता तं ददौ बाहुभूषणे ॥ १२ ॥
 ततो नत्वा रामचन्द्रं सार्द्रनेत्रः स मारुतिः । परिक्रम्य ययौ वेगात्पत्तुं तु हिमपर्वतम् ॥ १३ ॥
 ततोऽङ्गदं रामचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रेषयामास किञ्चिक्षां शृंगवेरं तु गूहकम् ॥ १४ ॥
 पातालं प्रेषयामास राघवो मकरध्वजम् । वस्त्रादिभिस्तोपयित्वा सुहदः स्वस्थलानि हि ॥ १५ ॥
 ततो रामः समाहृय यूपकेतुं महामनाः । वस्त्रादिभिस्तोपयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥ १६ ॥
 प्रेषयामास सैन्येन सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । जानकीं च ययौ वेगात्स्त्रीपुत्रैः परिवारितः ॥ १७ ॥
 एवं रामः सुवाहुं तं मथुरां प्रैष्यत्तदा । एवं रामः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥ १८ ॥
 सैन्येन पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाद्वये । ततोऽङ्गदं गजाश्वं तं प्रेषयामास राघवः ॥ १९ ॥
 धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रवलयाहनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्तोषितं वसनादिभिः ॥ २० ॥
 ततो लवं समाहृय ससीतो रघुनन्दनः । वस्त्रालंकारयानार्द्धस्तोष्य स्त्रोपुत्रसंयुतम् ॥ २१ ॥
 उत्तरेषु कुरुध्वज्रं प्रेषयामास सेनया । कामधेनुं ददौ सीता लवाय व्रजते मुदा ॥ २२ ॥
 ततः कुशं समाहृय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्युतम् ॥ २३ ॥

करोगे । तुम भी आज ही प्रस्थान कर दो और आनन्दके साथ किसी स्थानपर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥
 तुमने लंका और वनमें मेरी जो सहायता की है, उसीके प्रभावसे द्वापरमें तुम मेरे शशुरके रूपमें विख्यात होओगे ॥ ७ ॥ रामकी बात स्वीकार करके जाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिवे ।
 चलते समय रामने उनका भी अच्छी तरह सम्मान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हनुमानजीसे रामने कहा—हे बत्स ! तुम भी आनन्दके साथ इसी लोकमें निवास करो । द्वापर युगके अन्तमें जब तुम्हारी अर्जुनके साथ सेतुविषयक होड़ होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे । अब जाओ और मेरा भजन करते हुए आनन्दके साथ रहो ॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमानजीने राम-लक्ष्मण तथा सीताको प्रणाम किया और चलनेकी तैयारी कर दी ॥ ११ ॥ चलते समय रामने अपने गलेसे एक रत्नमाला उतारकर हनुमानजीको दी और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमानजीने आँखोंमें आँसू भरकर भगवान् को प्रणाम किया और परिक्रमा करके तपस्या करनेके लिए हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ १३ ॥
 इसके बाद रामने अङ्गदको विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण दिये और उन्हें किञ्चिन्न्वा भेज दिया । निवादराज-को शृंगवेरपुर भेज दिया ॥ १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजको पातालपुरी भेजा । मकरध्वजको चलते समय रामने विविध प्रकारकी भेटें दीं । इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंको भी आदर-सत्कार करके अपने-अपने स्थानको भेज दिया ॥ १५ ॥ थोड़ी देर बाद रामने यूपकेतुको बुलाया और विविध प्रकारके वस्त्राभूषण देकर विदिशानगरीको भेज दिया । यूपकेतुने भी राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी सेना तथा परिवारको साथ लेकर चल पड़े ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुवाहुको मथुरा भेज दिया । पुष्करको भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावती तथा तक्षको तक्षशिला भेज दिया । फिर अङ्गदको हस्तिनापुरी-के लिए और चित्रकेतुको स्त्री-सेना तथा वाहनोंके साथ उनकी राजधानीको भेज दिया । चलते समय विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे रामने इनका भी सत्कार किया ॥ १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने छब्द-को बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी स्त्री तथा पुत्रके साथ उन्हें उत्तरकुरु देखमें

दत्त्वा स्वीयानि शस्त्राणि कोदंडं च महोजज्वलम् । नानायानानि वस्त्राणि रामश्चितामणि ददौ ॥२४॥
 मस्त्रीपुत्रं कुशं तोष्य राघवो वाक्यमवैत् । वत्स गच्छ सुख तिष्ठ भूमि धर्मेण पालय ॥२५॥
 जंबुद्रापत्रपन्वर्त्तिथा दीपानरस्थितान् । मवनेतान्शालयस्व पुत्रवस्कशालक ॥२६॥
 इन्द्रुक्त्वा तान्नुपान्नाह युध्मामिः कुशवालकः । मन्त्राने माननीयोऽयं रक्षणीयस्त्वहर्निशम् ॥२७॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा नृपा शोचृ त्युत्तमम् । त्वत्तेजःपूरितो वालस्त्वतोऽस्माकं शताधिकः ॥२८॥
 अस्त्वेव नात्र संदेहः सत्यं विद्य गच्छत्तम् । यथा त्वया पालितः स्मो वयं तद्वक्षोऽप्ययम् ॥२९॥
 रक्षिष्यति मदाऽस्माकं दृष्टोऽश्वालराक्रमः । इन्द्रुक्त्वा राघवं नत्वा मर्द ते पार्थिवोत्तमाः ॥३०॥
 रामेण पूजिताः सम्यक् वस्त्रालकारावाहनैः । वयः कथं पुरस्कृत्य स्वस्यसंन्यन्मन्त्रिताः ॥३१॥
 कुशोऽपि राघवं नत्वा मूर्द्धिं सीताऽद्वयितः । विमुषेन रथे स्थित्वा पुरीं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३२॥
 तदा रामस्तं रजकं मधरां प्रैषयत्पुरीम् । कुशोन् तदे विगेन समाहृत्य सादरम् ॥३३॥
 पूर्ववैरमनुस्मृत्य नाभ्रं यातामधमिणौ । कृष्णावतारं तावेव रजको रजकोऽभवत् ॥३४॥
 मंथरा पूतना जाता होतो तो पूर्ववैराः । ततः कुमः साद्रनेत्रः पश्यन् राम च जानकीम् ॥३५॥
 परिवत्य मुखं पृष्ठ तारं तारं रथे स्थितः । यच्छु गच्छेति रामेण सत्याऽपि निजैः करैः ॥३६॥
 मूर्चितः मन्ययो नैन्यवैरिणः स्वपुरीं प्रति । ददर्श नगरीं शून्द्रां श्रीरामपिरहातुराम् ॥३७॥
 गत्वा पुरीं महोत्माहैन्नेत्रासदासनस्थितः । पूज्य सर्वान्याविंशतिं विमुखं व्यक्तज्ञयत् ॥३८॥

भेज दिया । जिस समय लक्ष्म चलने लगे तो सीताने उन्हें कामधेनु गो दी ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसके बाद रामने कुण्डको बुलाया और उन्हें भी श्री-पुष्ट तथा मित्रता रक्षनेवाले राजाओं और सेना आदिके साथ अयोध्या भेज दिया ॥ २३ ॥ चलने समय कुण्डकी शामने अपने दिव्य जट्य, महामूर्त्य उज्ज्वल बनाय, विविध प्रकारकी सवारियें, वस्त्र और चिन्तामणि दिया । इस तरह गाता एकारकी वस्तुएं देकर रामने कुण्डमे कहा—हे वत्स ! अब तुम अयोध्या जाओ और अपने दुर्बलों को पृष्ठीको रक्षा करो । हे वच्चे कुश ! इस जम्बूदीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके रहनेवाले राजाओंका भर्ता-भौति पालन करना ॥ २४-२६ ॥ ऐसा कहनेके बाद रामने उन सब राजाओंसे कहा कि हुम लोग भी गुणको मेरे समान ही मानना और सदा इसकी रक्षा करते रहना ॥ २७ ॥ रामकी वते सुनकर उन राजाओंने यहा कि यह वालक कुश आपही के तेजसे परिपूर्ण है । इस कारण मेरे लिए तो यह आपने भी सैवद्वैगुना वृद्धिक माननीय है । हे रघूतम ! हम जो कुछ कह रहे हैं, उसे आप सन मानिए । जिस तरह अब तक आप हमारी रक्षा करते आये हैं, उसी तरह यह भी हमारी रक्षा करेगा । यह वालक अवश्य है, किन्तु इसका पराक्रम वच्चे जैसा नहीं है । ऐसा कहकर उन राजाओंने रामको प्रणाम किया और रामने विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण तथा सवारियें आदि देकर उन्हें हैसी-खुशी विदा किया । वे सब कुशको अपने आगे करके अपनी विशाल सेनाके साथ चल पड़े ॥ २८-३१ ॥ कुण्डने चलते समय रामको प्रणाम किया और सीताने कुण्डका माथा सूंधा । इसके बाद वे कुलगुह वसिष्ठके साथ रथपर सवार होकर अयोध्यापुरीको चलनेकी तैयारी करने लगे ॥ ३२ ॥ उसी समय रामने उस निन्दक रजक (घोड़ी) तथा दासी मन्त्रराको सादर बुलाया और कुशके साथ अयोध्यापुरी भेज दिया ॥ ३३ ॥ पिछले वैरका स्मरण करके ही रामचन्द्रजो इन दोनोंको अपने साथ स्वर्गलोक नहीं ले गये । कृष्णावतारमें वह रजक राजा कंसका घोड़ी होकर उत्पन्न हुआ और दासी मन्त्ररा पूतना हुई । श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने हाथों इन दोनोंका संहार किया । रथपर वैठकर चलते समय बार-बार मैंह घुमाकर कुश आँसूभरे नेत्रोंसे राम और जानकीकी ओर निहार रहे थे । इवर राम और सीता भी अपने हाथोंसे कुशको जानेका संकेत कर रहे थे ॥ ३४-३६ ॥ इस तरह संकेत करनेपर कुश अपनी विशाल सेना लिये हुए अयोध्यापुरीको चल पड़े । जब पुरीमें पहुँचे तो वह सारी नगरी रामके विषोगसे रोती-सी दिलायी पड़ी ॥ ३७ ॥ अस्तु, कुश पुरीमें गये और बड़े उत्साहके साथ राजसिंहासनपर बैठे । इसके बाद अपने साथ आये हुए राजाओंका उन्होंने

तेऽपि नत्वा कुशं स्वं स्थलं जग्मुनुपोत्तमाः । करभारं ददुस्तस्मै तदाज्ञावशवतिनः ॥३०॥
मन्यराजकौ द्वौ तौ दैवात्पुर्वा ब्रह्मितौ । प्रापतुर्जन्म साकेते मृतानां न पुनर्भवः ॥३१॥
अथ रामोऽब्रवीत्सर्वान्वानरान् जाह्नवीतरे । मदर्थं भ्रमिताः सर्वे यृथं चानरमत्तमाः ॥३२॥
द्वापराये पुनः सर्वे ब्रजे गोपा भविष्यथ ।
युध्माभिः सहिताः प्रीत्या करिष्याम्यशनादिकम् ॥ ४२ ॥

तदाऽब्रवीत्स सौमित्रिं रामः प्रीत्या पुरःस्थितम् । महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेवायां मम दण्डके ॥४३॥
भव त्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुश्रूपां ते करोम्यहम् । तमस्तान्गाघवः प्राह ऋक्षान्यौरान्कपीनपि ॥४४॥
सवनिव मया सार्थं प्रयोतेति दयान्वितः । ततो ददौ कल्पवृक्षपारिजातौ सुराधिष्ठितम् ॥४५॥
ततस्तं पुष्पकं प्राह कुवेरं वह सादरम् ।
गच्छाद्यैव तथेन्युक्त्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

सीतां पृष्ठा ययौ शीघ्रं राघवेणातिमातितम् । ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्चोर्मिलां मांडवीं तथा ॥४७॥
श्रुतकीर्ति सभाहृष्य वाल्मीकेश्वर मुनेः पुरः । युध्माभिर्भर्तुदेहैश्च निजदेहादि वेगतः ॥४८॥
श्वोऽग्नौ दग्धवा स्वर्गलोकं गन्तव्यं मम चक्षयतः । तथेति राघवं प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः ॥४९॥
रामं नत्या ययुः सर्वाः स्वं स्वं तदुसनगृहम् । अथ रामोऽपि तां रात्रिं सीत्या रुक्मिन्चके ॥५०॥
ऋषिभिः शिवब्रह्मद्यास्तस्युम्भृत्यैव संगताः । सौमित्राद्याः पत्नीभिः शिशियरे परया मुदा ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
सर्वेषां विसर्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन-आलिङ्गन करके विदा किया ॥ ३८ ॥ वे राजे भी कुशको प्रणाम करके अपनी-अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कुशकी आजामें रहते हुए पूर्ववत् करभार देते रहे ॥ ३९ ॥ दैववश वह रामनिन्दक बोवी तथा दासी मन्यरा ये दोनों अयोध्यापुरोंमें न मरकर अयोध्याके बाहर मरे । इसी लिए उन्हें फिर जन्म लेना पड़ा । वैसे तो शयनमें जो लोग मरते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता ॥ ४० ॥ उबर सब लोगोंको विदा करके रामने सब वानरोंसे कहा-हे वानरश्वेषण ! तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मेरे साथ मारेमार किरत रहे । आगे चलकर द्वापरमें तुम सब गोप होओगे । उस समय मैं तुम्हारे साथ भोजन तथा विविध प्रकारकी लीलाये करूँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनमें मेरी सेवा करते समय बड़ा कष्ट उठाया था । आगे द्वापर युगमें तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता वलराम होओगे और मैं स्वयं तुम्हारी सेवा करूँगा । इसके अनन्तर रामने उन भालुओं, वानरों तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामने बलवृक्ष और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये । फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरपूर्वक कुवेरकी सवारीका काम करो । यह सूनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चले पड़ा । चलते समय भगवानने उसका भी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया । वाल्मीकिके समक्ष रामने माण्डवीं (भरतपत्नी), उर्मिला (लक्ष्मणकी स्त्री) तथा श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्नकी पत्नी) से कहा—तुम सब अपने-अपने पतिके शरीरके साथ कल अपना शरीर चिताकी अग्निमें जलाकर हड्डीलोक चली जाना । उर्मिला आदिने भगवान्की आज्ञा स्वीकार कर ली ॥ ४२-४३ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने तम्बुओंमें चली गयीं । इसके अनन्तर राम उम रात्रिमें सीताके साथ एक गुवणमय मन्त्रपर सो गये । शिव-ब्रह्मा आदि देवता भी शृणियोंके साथ वहाँ ही ठहरे रहे और लक्ष्मण आदि भी जलार अग्नी-ग्रान्ति-स्त्रियोंके साथ सानन्द सोये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतं उपोत्सना भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका वैकुण्ठारोहण)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समुत्थाय प्रभाते सीतया सह । अजमीढं समाहूय मंजुलं वाक्यमन्त्रवीत् ॥ १ ॥
 अद्याहं सीतया स्वीयं पदं गच्छामि वन्धुभिः । वानरैः सकलैः पौरैस्त्वया शेषं तु यज्ञलम् ॥ २ ॥
 वस्त्रगृहादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यज्ञवरं कीटकांतं तन्मया यास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥
 अतस्त्वं तं कुशं गत्वा सर्वं वृत्तं निवेदय । करोत्तरकार्याणि कुशोऽस्माकं सविस्तरम् ॥ ४ ॥
 मा करोतु कुशोऽस्माकं खेदं तं त्वं निवारय । इति रामवचः श्रुत्वा साश्रुनेत्रस्तथेति सः ॥ ५ ॥
 अजमीढस्तदा प्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः शनैः पौरैः स्नात्वा भागीरथीजले ॥ ६ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं पूर्वं हुत्वा वह्नि सविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासैकतसंस्थितः ॥ ७ ॥
 ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । वह्नि विसर्जयामास वैकुण्ठं प्रति राघवः ॥ ८ ॥
 तदा रामस्य पश्चा सा गता दक्षिणहस्ततः । मूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठमाययुस्तदा ॥ ९ ॥
 त्रिपदा प्रणवेनैव श्रीरामास्याद्विनिर्गता । नत्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥ १० ॥
 तेजो बलं यशः शौर्यं ययौ सर्वं तदा पुरः । ततः पौरा वानराश्च सर्वे भागीरथीजले ॥ ११ ॥
 स्नात्वा निरुद्ध्य वायूश्च निजदेहानि तत्यजुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृश्वा दर्भासनोपरि ॥ १२ ॥
 दर्भपाणिः स्थितश्तूष्णीमुत्तराभिमुखः स्त्रिया । तावत्सर्वे ददृशुस्ते देवा विष्णुं पुरःस्थितम् ॥ १३ ॥
 चतुर्भुजं नीलकांतिं पीतकौशेयधारिणम् । कौस्तुभांकितहृदेशं श्रीवत्सांकोपशोभितम् ॥ १४ ॥
 सीता वभूव सा लक्ष्मीविष्णोर्वामांकसंस्थिता । शेषो वभूव सौमित्रिः फणाभिरतिभासुरः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सबेरे रामचन्द्रजी सीताके साथ सोकर उठे तो अजमीढ़को बुलाकर मीठी बातोंमें समझाकर कहने लगे कि आज मैं सीता, बन्धुओं, समस्त वानरों और प्रजाजनोंके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूँगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी तम्भू-कनात आदि वस्त्रगृह हैं, उन्हें कुशके पास अयोध्या भेज देना । बड़े शीवसे लेकर कीट पर्यन्त सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायेंगे । मेरे चले जानेपर तुम कुशके पास चले जाना और मेरा सब समाचार कह सुनाना और यह भी कह देना कि कुश हमारी और्ध्वदेहिकी त्रियाओंको खूब अच्छी तरह सम्पन्न करे । यदि मेरे परमधाम जानेके कारण कुश किसी प्रकारका खेद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना । रामकी बात सुनकर अजमीढ़ने अँखोंमें आंसू भरकर उनकी आज्ञा स्वोकार की और भगवानको प्रणाम किया । इसके अनन्तर रामने सबके साथ गङ्गाजीमें स्नान किया, नित्यकृत्य किये, हवन किया और गङ्गातटपर स्थित ब्राह्मणोंको तरह-तरहके दान दिये ॥ ३-७ ॥ इसके बाद यात्रासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने कर्म थे, वह सब किये । चलते समय हवनकी अग्निको वैकुण्ठलोक भेज दिया ॥ ८ ॥ उस समय रामरूपधारी विष्णुकी लक्ष्मी सात्त्विकी सीता रामके दक्षिण भागसे वैकुण्ठधामको चली गयी । उस समय सब वेद अपने मूर्तरूपसे वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्राणायाम करते ही शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उसी तरह तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी कूच कर गये । इसके अनन्तर सब पुरावासियों तथा वानरोंने भी गङ्गाजीमें स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परित्याग कर दिया । इसके बाद सीताके साथ रामने गङ्गाजलका स्पर्श किया और कुशासनपर बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरकी ओर मुख करके बैठे । उसी समय राम देवताओंके सम्मुख विष्णुभगवान्के रूपमें पारंणत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्के चार भुजायें थीं । नीलकमलके समान श्याम शरीर था । वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे । कौस्तुभमणिसे उनका हृदय सुशोभित हो रहा था और श्रीवत्स अपनी निखार अलग ही दिखा रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके वामांगमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

शङ्खो वभूव भरतः श्रीविष्णोः सव्यसत्करे । वामे करे वभूवाथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥
 देवेषु विविषुः सर्वे वानरास्ते क्षणात्तदा । चांडालकुमिर्काटाता अयोध्यापुरवासिनः ॥१७॥
 प्रापुस्ते दिव्यदेहानि विमाने सम्प्रियता वभुः । तदा निनेदुर्वाद्यानि देवानां गगनांगणे ॥१८॥
 वर्षुदेवपत्न्यश्च पुष्पवृष्टिभिरादरात् । ननुतुवै शप्तरसो जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥१९॥
 प्रणनाम तदा तार्थ्यः श्रीविष्णु रविभासुरम् । देहानि मुमुक्षुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च ते ॥२०॥
 पतिदेहानि चालिंग्य तदा ता उमिलादिकाः । देहान्यग्नौ जहुः सर्वा रम्ये भागीरथीतटे ॥२१॥
 अथ ता देवपत्न्यश्च रत्नदीपैः सहस्रशः । विष्णुं नीराजयामासुर्लक्ष्मीयुक्तं महामूर्जम् ॥२२॥
 विष्णुस्ततोऽब्रवीद्वाक्यं वेधसं मंजुलं शनैः । अयोध्यावासिनः सर्वे तिर्यङ्मात्रादयः शुभाः ॥२३॥
 एते समागता ब्रह्मन्नेपां स्थानं वदायुना । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा तदा ब्रह्माऽब्रीद्वचः ॥२४॥
 मल्लोकादुपरिष्ठाच्च लोकान्सांतानिकाञ्छुभान् । एते यांतु जनाः सर्वे त्वदर्शनमहोज्ज्वलाः ॥२५॥
 ततः प्राह पुनर्विष्णुरयोध्यायां मृताश्च ये ।

अग्रे तेऽपि समायांतु लोकान्सांतानिकाञ्छुभान् ॥२६॥

तथेति स विधिः प्राह महाविष्णुं मुदान्वितः । ततस्ते दिव्यदेहाऽच्च साकेतपुरवासिनः ॥२७॥
 नानादिमानसंस्थाऽच्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यलिंकारसंयुक्ता शप्तरसोभिर्विलेपिताः ॥२८॥
 नानासुगंधगंधाद्यैर्दिव्यचामरवीजिताः । विरेजुर्गगने चंद्रवदना रविभासुराः ॥२९॥
 ततो ब्रह्मादयो दवाः प्रणेमुविष्णुमादरात् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैवंदधोष्मुनीश्वराः ॥३०॥
 तदा तुष्टाव शंभुस्तं विष्णुं वैलोक्यपालकम् । वनमालां दधानं तं दिव्यचन्दनचर्चितम् ॥३१॥

रूपमें और लक्षण फणोंसे सुशाभित जेष्ठ भगवान्के स्वरूपमें परिणत हो गये ॥ १५ ॥ भरतजो शंखके रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्के दाहिने हाथमें जा विराजे । शत्रुघ्नने विष्णुके सुदर्शनचक्र बनकर वाम मुजामें अहुः जमा लिया ॥ १६ ॥ बहाँपर जितने वानर थे, वे सब क्षण भरमें अपने अंशरूपसे देवताओंके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । चांडालसे लेकर कृमि-कीट पर्यन्त सभी अयोध्यानिवासी अपने-अपने शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानोंपर सुशोभित होने लगे । उस समय गगनांगणमें देवताओंके विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥ १७॥१८॥ देवांगनायें प्रेमपूर्वक कुसुमवर्षा कर रही थीं । अप्सरायें नाच रही थीं और गन्धर्वगण तरह-तरहके गायन गा रहे थे ॥ १९ ॥ उसी समय गरुड़ने आकर सूर्यसहस्र देवीप्यमान भगवान्को दण्डवत् प्रणाम किया । इधर सोम आदि राजाओंने भी अपनी स्त्रियों समेत अपने-अपने शरीरको छोड़ दिया ॥ २०॥ इन लोगोंके परम धाम चले जानेके बाद उमिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने अपने-अपने पतिके शरीरका आलिंगन करके चितामें जलकर शरीर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ उधर समस्त देवताओंकी स्त्रियोंने हजारों रत्न-मय दीपक जलाकर लक्ष्मीके समेत विष्णुभगवान्की आरती उतारी ॥ २२ ॥ कुछ देर बाद विष्णुभगवान्ने ब्रह्मसे कहा कि मेरे साथ जो अयोध्याके सब पुरवासी तथा तिर्यग्नोनि तकके प्राणी यहाँ आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्की बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपके दर्शनसे ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे भी ऊपर एक सान्तानिक लोक हैं-वहाँ ही जाकर निवास करें ॥ २३-२५ ॥ इसके बाद विष्णु-भगवान्ने किर कहा कि इनके अतिरिक्त भी जो प्राणी अयोध्यामें शरीर त्याग करें, वे सब सान्तानिक लोक प्राप्त करें ॥ २६ ॥ ब्रह्माने भगवान्की यह बात भी स्वीकार कर ली । इसके अनन्तर वे सब अयोध्यावासी दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारके विमानोंपर जा बैठे । उस समय वे लोग अच्छेऽच्छे गहने-कपड़े पहने थे और कितनी ही सुन्दरी अप्सरायें उनके शरीरमें सुगन्ध मल रही थीं । उनपर दिव्य चमर चल रहे थे । सूर्यके समान देवोप्यमान तथा चन्द्रमुखों नारियाँ सब प्रकारको सेवायें कर रही थीं ॥ २७-२९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंने विष्णुभगवान्को प्रणाम किया और बड़े-बड़े क्रृषि वेदकी क्रृचाओंसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ सब लोगोंके बाद श्रीशिवजो वैलोक्यरक्षक विष्णुभगवान्की स्तुति करने लगे । उस

शंभुवाच

रायवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहं माधवं खगगामिनं जलकपिणं परमेश्वरम् ।
 पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३२॥
 शूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरं श्रीहरि त्रिगुणात्मकं तुलसीधवं मधुरस्वरम् ।
 श्रीकरं शरणप्रदं मधुमारकं ब्रजपालकं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३३॥
 विद्वलं मथुरास्थितं रजकांतकं गजमारकं सन्तुतं बकमारकं वृक्षवातकं तुगार्दनम् ।
 जन्दजं वसुदेवजं बलियज्ञगं सुरपालकं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३४॥
 केशवं कपिमारकं मृगमर्दिनं सुंदरं द्विजपालकं दितिजार्दिनं दनुजार्दनम् ।
 वालकं खगमर्दिनं श्वपिपञ्जितं सुनिचितितं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३५॥
 शंकरं जलशायिनं कुशबालकं रथवाहनं सरयूनतं प्रियपुष्पकं प्रियभूसुरं लवबालकम् ।
 श्रीधरं मधुसूदनं भरताग्रजं गरुडध्वजं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३६॥
 गोप्रियं गुरुपुत्रदं वदतां वरं करुणानिधिं भक्तपं जनतोषदं सूरपूजितं श्रुतिमिः स्तुतम् ।
 भुक्तिदं जनसुक्तिदं जनरंजनं नृपनन्दनं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३७॥
 चिद्वनं चिरजीविनं मणिमालिनं वरदोन्मुखं श्रीधरं धृतिदायकं वलवर्धनं गतिदायकम् ।
 शान्तिदं जनतारकं शरधारिणं गजगामिनं त्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३८॥
 शाङ्किणं कमलाननं कमलादृशं पदपङ्कजं श्यामलं रविभासुरं शशिसौख्यदं करुणार्णवम् ।

समय भगवान् वनमाला धारण किये थे और उनके शरीरमें दिव्य चन्दनका लेप किया हुआ था ॥ ३१ ॥
 आशिवजीने कहा—रघुवंशमें उत्पन्न, करुणाकर, संसारके आवागमनसे मुक्त करनेवाले, पापनाशकारी, लक्ष्मीके पति, जलरूपी परमेश्वर, सबके पालक, भक्तोंको तारनेवाले, भववाधारे नाशक, शत्रुसंहारकारी, नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ पृथ्वीपति, वनमालाधारी, मधुनामक राक्षसको मारनेवाले, द्रजके पालक, नवीन नीरदके समान श्यामकाय, पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले, सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे वुक्त, तुलसीके पति, मीठे स्वरवाले, गोभाका विस्तार करनेवाले, नररूपधारी जगदीश्वर हे रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ विद्वलरूपसे मथुरामें निवास करनेवाले, रजकसंहारी, गजान्तकारी, सउजनोंसे संस्नुत, बकासुर, वृक्षासुर और केशीको मारनेवाले, नन्दसुवन, वसुदेवके पुत्र, वामनरूपसे बलिके यज्ञमें जानेवाले, देवताओंके पालक, नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३४ ॥ केशव, वानरोंसे विरे हूए, बालि वानरको मारनेवाले, मृगरूपधारी मारीचको मारनेवाले, सुन्दर, ब्राह्मणोंके रक्षक, राक्षसोंका संहार करनेवाले, सर्वदा बालरूपधारी, खरको मारनेवाले, अर्घ्यियोंसे पूजांजत, मुनियों द्वारा चिन्तित और नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका कल्पाण करनेवाले, जिनके कुश जैसे पराक्रमी बालक हैं, रथ जिनकी सवारी है, सरयू स्वयं जिनको नमस्कार करती है, जिनको पुष्पक विमान विशेष प्रिय है, जो ब्राह्मणोंसे अतिशय प्रेम रखते हैं, लव नामका जिनका बालक है, जो लक्ष्मीकी रक्षा करते हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यका संहार किया था, जो भरतके बड़े भ्राता हैं और जिनको छवजमें गरुड़का चिह्न बना हूआ है, ऐसे नररूपधारी हे जगदीश रघुनन्दन ! हम आपका भजन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनको गौ विशेष प्रिय है, जो यमलोकसे गुरुपुत्रको लौटा लाये थे, जो वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, जो करुणके समुद्र हैं, जो सब तरहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं, जो अपने भक्तोंको प्रसन्न रखते हैं, देवतागण जिनकी पूजा करते हैं, चारों वेद जिनकी स्तुति करते हैं, जो सब प्रकारके भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तोंको मुनि प्रदान करते हैं, महाराज दशरथके पुत्र हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ चिद्वनरूपधारी, चिरज्ञजादी, मणियोंकी माला धारण करनेवाले, वरदोन्मुख, श्रीधर, धैर्य प्रदान करनेवाले, गतिदायक, वलवर्धनकारी, शान्तिदाता, जनतारक, शरधारी, गजगामी, नररूप धारण करनेवाले हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३८ ॥ अनुष्ठ

सत्पतिं नृपवालकं नृपवंदितं नृपतिप्रियं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥
 निर्गुणं सगुणात्मकं नृपमण्डनं मतिवद्वेनमच्युतं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं स्मितभाषिणम् ।
 ईश्वरं हनुमन्तुतं कमलाधिपं जनसाक्षिणं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥
 ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादराच्छतनामकं यः पठेद्गुवि मानवस्तव भक्तिमास्तपनोदये ।
 त्वत्पदं निजवन्धुदारमुत्तर्युतश्चिरमेत्य नो सोऽस्तु ते पदसेवने बहुतत्परो मम वाक्यतः ॥४१॥
 इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रोवाच गिरिजापतिः । आरुहस्व रमानाथ गरुडोपरि वेगतः ॥४२॥
 वैकुण्ठारोहणस्यायं कालो वाल्मीकिना कृतः । एकादश सहस्राश्र समास्त्वेकादशैव च ॥४३॥
 तथैकादश मासाश्र दिनान्येकादशैव च । तथैकादश नाडीश्र पलान्येकादशैव च ॥४४॥
 गतानि तेऽत्र भूम्यां हि जन्मादारभ्य राघव । वसन्तपञ्चमीनाम्नी तिथिश्चैत्रासिताऽद्य हि ॥४५॥
 पुण्येऽह्नि स्वपदं गन्तुं त्वरां कुरु रमेश्वर । तदा विहस्य श्राविष्णुर्वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥
 समालिंग्य मुनीन्पृष्ठा तस्थौ स गरुडोपरि । ध्वनत्सु देववायेषु स्तुवत्सु नारदादिषु ॥४७॥
 पुष्ट्यैर्वर्षत्सु देवेषु प्रनर्तत्स्वप्सरःसु च । नानाविमानजालैश्र सर्वत्र परिवेष्टितः ॥४८॥
 ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकान्पश्यन्शनेः शनैः । वैकुण्ठे स्वपदे स्थित्वा विसमजे शिवादिकान् ॥४९॥
 तस्थौ लक्ष्म्याऽनन्दमयः परिपूर्णमनोरथः । खगेन्द्रसेवितपदः शेषतल्पविभूषितः ॥५०॥
 अयोध्यावासिनः सर्वे ययुः सांतानिक पदम् । ततस्ते मुनयः सर्वे ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥५१॥
 रामवाक्यात्सोऽजमीढः सांत्वयामास त कुशम् । स्वर्गारोहणविस्तारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलके समान मुखवाले, कमलका भाँति नेत्रोवाले, कमलके ही सराहे चरणकमलवाले, श्याम वर्ण, सूर्यके समान देवीप्यमान, चन्द्रमाको सुख देनेवाले, करुणाके सुनुद्र, एक अर्जुने प्रभु, राजाओंके रक्षक, राजाओंसे बन्दित, राजाओंके प्रिय और नररूपवारा हे जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥३६॥ निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपवारा, राजाओंके कुलभूषण, बुद्धवद्वनकारी, परम पूजनीय, पुस्कराकर बोलनेवाले, जगत्के प्रभु, हनुमानजीसे नमस्कृत, भक्तोंक साक्षा, लक्ष्माक पति और नररूपवारा हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥४०॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए शिवजीने अन्तमें कहा कि प्रातःकाल सूर्योदयके समय जो कोई प्राणों भेर कहे हुए इस शतनाम-स्तोत्रका पाठ करेगा, वह भेरे आशीर्वादिसे अपने बन्धुओं तथा स्त्री-पुत्रादिकोंके साथ यहाँ आकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी सेवाका सुयोग पायेगा ॥४१॥ इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् शिवजीने कहा—हे रमानाथ ! आप श्रीग्रह गरुडपर आरूढ़ हों ! क्योंकि वाल्मीकिजीने आपके वैकुण्ठारोहणार्थ यहाँ समय अपने रामायणमें निर्वारित किया है । इस समय रथारह हजार रथारह वर्ष, रथारह महाना, रथारह दिन, रथारह नाड़ा तथा रथारह पल पूरे हो रहे हैं । आज चैत्र वृष्णपक्षको पञ्चमी तिथि है ॥४२-४५॥ इस पवित्र दिवसका आप परमधाम जानेके लिए शब्दता करिए । उस समय प्रभु मुनकाय । उन्होंने मुनिपुङ्गव वाल्मीकि ऋषिको हृदयसे लगाया, ऋषियोंसे आज्ञा माँगा और गरुडके ऊपर सवार हो गये । तब देवताओंने विविध प्रकारके बाजे बजाये, नारद आदि महर्षियोंने स्तुति की, देवतागण भगवान्पर फूल बरसाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥४६-४८॥ इस तरह गरुडपर बैठकर भगवान् राम सब लोगके देखते-देखते वैकुण्ठलोकको चले गये । उस धारमें पहुँचकर वे अपने सिहासनपर बैठे और शिव आदि देवताओंको विदा कर दिया । वे आनन्दमय महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मनोरथ होकर लक्ष्मीके साथ आनन्दपूर्वक बहीं रहने लगे । उस समय गरुड भगवानके चरणोंकी सेवा करते थे और वे दिष्टणु भगवान शेषकी शव्यापर सोते थे ॥४९॥५०॥ वे सब अयोध्यावासी भगवान्के कथनानुसार सान्तानिक लोकमें जा विराजे । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्गारोहण देखनेके लिए आये हुए ऋषि भी अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥५१॥ रामचन्द्रजीके कथनोंनु सार हस्तिनापुरके राजा अजमोढ़ अयोध्यामें कुशके पास गये और भगवान्को परमधामयात्रासम्बन्धी

कशेन मानितः सोऽपि ययौ स्वीयं गजाहृयम् । लब्ध्या कुमुदतीं तस्यां कुशः पुत्रान्स निर्ममे ॥५३॥
एवं श्रीरघुनाथस्य स्वर्गारोहणकौतुकम् । ये शृण्वन्ति नरा भक्त्वा तेऽपि स्वर्गं प्रयांति हि ॥५४॥
वैकुण्ठारोहणाध्यायमिमं नित्यं पठेत् यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादतः ॥५५॥
इति श्राशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे वैकुण्ठारोहणं नाम पठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(सूर्यवंशवर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं त्वया यथा पृष्ठं स्वर्गारोहणमङ्गलम् । श्रीरामस्य मया चैतत्त्वाग्रङ्घ्य निवेदितम् ॥ १ ॥
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छाऽस्ति तां त्वं वद वदाम्यहम् । एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासस्तमन्त्रीत् ॥ २ ॥
विष्णुदास उवाच

कुशांतः सूर्यवंशोऽत्र गुरो पूर्वं त्वयेरितः । कुशाग्रं श्रोतुमिच्छामि सूर्यवंशं सविस्तरम् ॥ ३ ॥
श्रीरामदास उवाच

विष्णोरारभ्य कथिता एकपष्टितमाः पुरा । एकपष्टिनृपा द्यग्रे तान्वदामि सविस्तरम् ॥ ४ ॥
श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिथिः पुत्रः कुशस्य सः । निषधस्त्वातेथेः पुत्रो निषधस्यात्मजो नभः ॥ ५ ॥
नभाज्ञातो पुंडराकः क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । देवानीकस्तत्सुताऽभूदेवानीकसुतो महान् ॥ ६ ॥
अहीनः प्राच्यते साङ्गः पायात्रस्तत्सुतःस्मृतः । पायात्रस्य वलः पुत्रः स्थलः पुत्रो वलस्य हि ॥ ७ ॥
स्थलस्य वज्रनाभस्तु खगणस्तस्य कात्यते । खगणाद्विद्युतिज्ञातो विद्युतेस्तनयः शुभः ॥ ८ ॥
जातो हिरण्यनाभस्तु तस्य पुष्पः प्रकात्यते । पुष्पात्स श्रुवसंधिस्तु श्रुवसंधेः सुदशनः ॥ ९ ॥
सुदर्शनादाग्रवणस्तस्माच्छांश्रः प्रकात्यते । शाश्राज्जाता मरुः पुत्रा मनोश्च प्रश्रुतः सुतः ॥ १० ॥
प्रश्रुतस्य च सांधादिं सधेः पुत्रस्तु मध्येणः । मध्येणस्य महस्वांश्च विश्ववाहश्च तत्सुनः ॥ ११ ॥

सब बातें बतलायी और समझा दिया कि आप किसां प्रकारका शोक न करें ॥ ५२ ॥ कुशने भी अजमीढ़का भरपूर आदर-सत्कार किया । कई दिनों अयाद्यामें रहकर वे हस्तिनापुरीको चले गये । कुछ दिनों बाद कुशको कुमुदतीं नामकी एक दूसरी भार्या प्राप्त हुई । उससे कुशके बहुतसे पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ इस प्रकार भगवान् क स्वर्गारोहण-वार्ताको जो लोग भक्तिपूवक सुनते हैं, वे भी स्वर्गलाक प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥ जो प्राणी वैकुण्ठारोहणके इस सर्गका नित्य पाठ करता है, वह रामचन्द्रजीकी कृपासे अन्तमें वैकुण्ठ वामको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ इति श्राशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटाकासहिते पूर्णकाण्डे पठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने जिस तरह हमसे भगवान् का स्वर्गारोहण-वृत्तांत पूछा, वह मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हो सो कहो । वह भी मैं बतलाऊँगा । इस तरह गुरुकी बात सुनकर विष्णुदास कहने लगे—हे गुरुवर ! आपने कुशतक सूर्यवंशका वर्णन किया, सो मैंने सुना । अब यह जानना चाहता हूँ कि कुशके आगे कौन-कौन राजे हुए । यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! विष्णुभगवान् से लेकर एकसठ राजाओंका चरित्र मैंने पहले सुनाया है । उनके बाद जो एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभ, ॥ ५ ॥ नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीन, अहीनके पायात्रि, पायात्रिके वल, वलके पुत्र स्थल ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके खगण, खगणके पुत्र विद्युति, विद्युतिके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुष्प, पुष्पके श्रुवसंधि, श्रुवसंधिके सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके आग्नवर्ण, आग्नवर्णके पुत्र शोभ्र, शोभ्रके मरु, मरुके पुत्र प्रश्रुत,

तस्मात्प्रसेनजित्प्रोक्तस्तस्माज्ञातस्तु तक्षकः । वृहद्वलस्तक्षकाच्च तस्माज्ञातो वृहद्रणः ॥१२॥
 तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तत्सुतः । वत्सवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाङ्गानुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥
 भानोः पुत्रो दिवाकरस्तु सहदेवश्च तत्सुतः । महदेवान्मजो वीरो वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥
 वृहदश्च इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमतः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तत्सुतः ॥१५॥
 सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः । महदेवान्मनक्षत्रः सुनक्षत्राच्च पुष्करः ॥१६॥
 पुष्करस्यांतरक्षत्रं सुतपा अंतरक्षतः । सुतयान्मनयो मित्रो मित्रजित्तन्मनः शुभः ॥१७॥
 वृहद्राज इति ख्यातस्तस्य वहिः स्मृतो वृथैः । यहेः कृतंजयः पत्रस्तस्य पुत्रो रणंजयः ॥१८॥
 रणंजयान्मनयस्तु संजयाच्छाक्य उन्यते । शाक्यपुत्रस्तु शुद्धोद शुद्धोदाल्लांगलः स्मृतः ॥१९॥
 प्रसेनजिल्लांगलस्य तत्पुत्रः भुद्रकः स्मृतः । भुद्रकाद्रणकः प्रोक्तो रणकान्मनस्थः स्मृतः ॥२०॥
 सुरथात्तनयो जातस्तनयस्य मृतो महान् । नाभ्ना सुमित्रः परमः पूर्णो वंशरततः परम् ॥२१॥
 पूर्वमुक्तो मरुरिति नाभ्ना यो नुपसिर्मया । क्लापग्राममाश्रित्य हिमाद्रौ वद्रिकाश्रमे ॥२२॥
 स तपश्चिरकालं हि करोत्यत्र समाधिमान् । कृते युगे पुनः प्राप्ने सूर्यवंशं करिष्यति ॥२३॥
 एवं मया समाख्यातः सूर्यवंशो मनोरमः । विष्णोगरम्भ्य कथिता एकपष्टितमा मया ॥२४॥
 एकपष्टिनृपाश्चाये मध्ये रामो विगजते । व्रयोविशोक्तशताश्रेयं विष्णोर्मयोदिताः ॥२५॥
 एवं यथा त्वया पृष्ठ शिष्य दशानुकीर्तनम् । तन्मया कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥
 विष्णुशस्त्र उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मुखतः पुणः । रामायणं सविस्तारं तच्चेदं नैव भासते ॥२७॥
 तस्मादत्रांतरं प्रोक्तं त्वया सर्वत्र मां गुरो । संदेहोऽनेन मे जातरतं त्वं छेत्तुमिहार्हसि ॥२८॥
 श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पभेदाज्ञाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः कचित्कचित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रथुतके संघि, संघिके पुत्र मर्ण, मर्दणके महस्वान, महस्वानके विश्ववाह ॥ ११ ॥ विश्ववाहके प्रसेनजित्, प्रसेनजित् केतक्षक, तक्षकके वृहद्रण, वृहद्रणके उरुक्रिय, उरुक्रियके वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके वीर, वीरके पुत्र वृहदश्च, वृहदश्चके भानुमान्, भानुमान् के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र सुप्रतीक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके महदेव, महदेवके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १६ ॥ पुष्करके अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतपा, सुतपाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित् के वृहद्राज, वृहद्राजके वर्हि, वर्हि के कृतंजय, कृतंजयके पुत्र रणंजय, ॥ १८ ॥ रणंजयके संजय, संजयके शाक्य, शाक्यके शुद्धोद शुद्धोदके लाङ्गल ॥ १९ ॥ लाङ्गलके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित् के धुद्रक, धुद्रकके रणक, रणकके सुरथ ॥ २० ॥ सुरथके तनय और तनयके पुत्र सुमित्र हुए । बस, यहाँ ही तक चलकर सूर्यवंश पूर्ण हो जाता है ॥ २१ ॥ पूर्वमें हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं । वे हिमालयपर वद्रिकाश्रममें तप कर रहे हैं । सत्ययुग आनेपर वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभगवान्से लेकर एकसठ राजाओं तक सूर्यवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजीं विराजमान हैं और उनके आगेवाले एकसठको लेकर कुल एक सौ तेहिस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह है शिष्य ! मैंने तुम्हें सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया । इसके सुननेसे पुष्प्यको वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैंने किसी मुनिसे सुना या कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इस संसारमें विद्यमान नहीं है । फिर आपने जो रामायण सुनायी है, वह तो सब रामायणोंसे भिन्न है । यह एक प्रकारका सन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होता है । कृषा करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पभेदसे रामके कितने ही अवतार हुए हैं और

कृतोऽस्ति राघवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । रामायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि ॥३०॥
अनेकान्यंतरेणैव कीर्तिंतानि सविस्तरात् । शतकोटिभिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥३१॥
तस्मात्त्वयान संदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन् । यन्मया कथितं ते हि तत्त्वं विद्धि नान्यथा ॥३२॥
भागाङ्गरतखंडांतर्गताद्रामायणात्पुरा । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥३३॥
तेषु मन्त्रथितं चेदं सम्यग्विस्तारितं द्विज । तव जातो यथा शिष्य संदेहोऽत्र कथांतरात् ॥३४॥
भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित् । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः ॥३५॥
हृष्टा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु पंडितैः । त्यक्तव्याः स्वायसंदेहाः सत्यं ज्ञेयं मयेरितम् ॥३६॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे
सूर्यवंशवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(आनन्दरामायणकी सर्गानुक्रमणिका)

श्रीविष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना वदस्व न्व यन्मया पृच्छथते तव । अनुक्रमणिकासर्गं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥
कांडसंख्यां सर्गसंख्यां इलोकसंख्यां सविस्तराम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं वै शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥
अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । कांडानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोक्त्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणात्प्रोक्तं सर्वग्रंथफलं शुभम् ॥ ४ ॥
सर्गोऽत्र ग्रथमे प्रोक्तं कौसल्यायाः स्वयंवरम् । रामादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तिंतानि हि ॥ ५ ॥
सीतास्वयंवरं प्रोक्तं त्रुतीये मिथिलापुरि । वृंदाशापादिकथनं चतुर्थं मुद्दलेन हि ॥ ६ ॥

उन अवतारोंमें कुछ न कुछ भेद पड़ ही गया है । यद्यपि रामकी लीलायें प्रत्येक रामायणमें बणित हैं, किन्तु उन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकिजीने जो शतकोटि इलोकात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान हैं । इस कारण हे शिष्य । तुम किसी प्रकारका सन्देह न करके मैंने जोकुछ कहा है, उसे सच मानो ॥ २६-३२ ॥ भरतव्यष्टिके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आधारपर श्यासजीने नारदादि विविध पुराणोंको रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैंने भी इस सविस्तर आनन्दरामायणका वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें मेरा यह कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी श्रोता-वचाको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त कर ले ॥ ३३-३५ ॥ पण्डितोंको भी उचित है कि सब पुराणोंको देखें और उनमें मेरी कही बातें देखकर अपना सन्देह मिटा लें और समझ ले कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे बातें सच हैं या नहीं ॥ ३६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योतना'भाषा-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! अब आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसके पाठका फल बताइए ॥ १ ॥ साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और इलोकसंख्या आदि भी विस्तारपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनदर्शनविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा-अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका संख्या आदि भी कहिए ॥ ४ ॥ ५ ॥ सारकाण्डके पहले बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौसल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशरथपूर्वजन्म कैकेय्याश्चापि नवमे । बनप्रयाणं रामस्य प्रोक्तं पट्टे सविस्तरम् ॥ ७ ॥
 विराघखगमारीचवधादिसप्तमेऽकथि । त्रिपिंडिया वालियातेः गववेशाष्टमे कृतः ॥ ८ ॥
 नवमे जानकीशुद्धिलंका दशधाइनमता । दशमे ज्येष्ठमाहात्म्यं कांगिश्वश्वगगमः ॥ ९ ॥
 एकादशे रावणदिवधाः प्रोक्ताश्च राघवान् । सीतया स्वपुणी गत्वा हायैऽभृतपो विभुः ॥ १० ॥
 त्रयोदशे राघवम्य विक्रमश्च हनुमतः । समाप्तं सारकांहं हि यत्राहृष्टमुदीयते ॥ ११ ॥
 वाल्माके: प्रथमे सर्गे श्लोकोत्पत्तिः प्रकीर्तिता । रामायणविभाषेऽत्र द्वितीये समुदाहृतः ॥ १२ ॥
 तृतीये सीतया रामो यात्रार्थं प्रार्थितो मुदा । चतुर्थे रामचन्द्रस्य प्रस्थानं जाह्नवीं प्रति ॥ १३ ॥
 पंचमे मुनिवाक्येन यात्रा गंतु विनिश्चयः । षष्ठे प्रोक्ता पूर्वदेशतीर्थयात्रा सविमतरा ॥ १४ ॥
 प्रोक्ता दक्षिणतीर्थानां यात्रा रामस्य सप्तमे । तीर्थादिनं पश्चिमायामष्टमे राघवम्य च ॥ १५ ॥
 यात्रोत्तरप्रदेशस्य रामस्य नवमेऽकथि । यात्राकाण्डसमाप्तं हु यागकाण्डमुदीयते ॥ १६ ॥
 सर्गेऽत्र प्रथमे श्राद्ध यज्ञोपकरणं गुरुः । द्वितीये रामचन्द्रस्य यागारभोऽत्र वर्णितः ॥ १७ ॥
 पृथ्वीप्रदक्षिणा प्रोक्ता तृतीयेऽध्यरवाजिनः । कुम्भोदात्म्यं रामस्य सप्तादोऽत्र चतुर्थके ॥ १८ ॥
 पञ्चमे गमनामनां वै द्यौत्तरग्रातं शुभम् । षट्ठेऽहिनं हि सर्वेषां वाजिमेधे प्रकीर्तिम् ॥ १९ ॥
 ष्वजारोपविधानं च सप्तमे समुदाहृतप् । अष्टमेऽब्दभृत्यस्नानं राघवस्यात्र वर्णितम् ॥ २० ॥
 नवमे वाजिमेधस्य समाप्तिः कीर्तिताऽत्र सा । यागकाण्ड समाप्तं हि विलासाख्यमुदीयते ॥ २१ ॥
 प्रथमे रघुवीरस्य स्तवराजोऽत्र कीर्तिः । द्वितीये रतिशालाया जानक्याश्चापि वर्णनम् ॥ २२ ॥
 तृतीये राघवेणोक्तं देहरामायणं स्त्रियै । दिनचर्याभूपणानि जानक्याश्च चतुर्थके ॥ २३ ॥
 जलयंत्रगता क्रीडा पञ्चमे शेषमाह्निकम् । दिजस्य पञ्चम्ये प्राप्तादे पष्टुङ्गकारमण्डनम् ॥ २४ ॥

सर्गमें मुद्रूल कृषिका मिलना तथा वृन्दाशाप आदि वर्णित है ॥ ५ ॥ ६ ॥ पाँचवें सर्गमें दशरथ और कैकेयीके पूर्वजन्मका वृत्तांत है । छठे सर्गमें रामका बनगमन और सातवें विराघ-जटायु-मारीच आदिका वध तथा आठवें सर्गमें किञ्चिन्द्वा पर्वतपर बालिवध वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ नवें सर्गमें सीताकी खोज और लङ्घादहन, दसवें सर्गमें सेतुमाहात्म्य तथा काणी-विश्वनाथके आगमनका वर्णन है ॥ ९ ॥ एकादश सर्गमें रामके द्वारा रावण आदिका वध तथा बारहवें सर्गमें सीताके साथ रामके अयोध्या लौटने और राज्याभिषेकका वर्णन है ॥ १० ॥ तेरहवें सर्गमें राम और हनुमानजीके पराक्रमका वर्णन है । वस, यहाँ ही सारकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ अब यात्राकाण्ड कहते हैं । इसके पहले सर्गमें वाल्मीकि द्वारा जलोककी उत्पत्ति, दूसरे सर्गमें रामायणका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तीसरे सर्गमें सीता द्वारा यात्राकी प्रार्थना और चतुर्थ सर्गमें जाह्नवीकी ओर रामकी यात्राका वर्णन है ॥ १३ ॥ पाँचवें सर्गमें कुम्भोदर मुनिकी सलाहसे यात्राका सर्वित्तर वर्णन है । छठे सर्गमें पूर्व देशकी यात्राका वर्णन है ॥ १४ ॥ सातवें सर्गमें दक्षिण भारतके तीर्थोंकी यात्रा और आठवें सर्गमें अश्वी प्रदेशके सब तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है ॥ १५ ॥ नवें सर्गमें उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है । वस, यात्राकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है । अब यागकाण्डक विषय बताते हैं ॥ १६ ॥ इसके पहले सर्गमें यज्ञोंकी सामग्रियोंका सविस्तर वर्णन है । दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा यागारम्भ, तीसरे सर्गमें यज्ञीय अश्वकी पृथ्वीप्रदक्षिणा, चौथे सर्गमें राम और कुम्भोदर मुनिका संवाद है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पाँचवें सर्गमें रामका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र है । छठे सर्गमें अश्वमेध यज्ञमें को जानेवाली रामकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ १९ ॥ सातवें सर्गमें ष्वजारोपणविधान, आठवें अवभृत्यस्नान और नवें सर्गमें अश्वमेध यज्ञको समाप्ति वर्णित है ॥ २० ॥ वस, यहाँ यागकाण्ड समाप्त हो जाता है । अब विलासकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामस्तवराज और दूसरे सर्गमें जानकीजीकी रतिशालाका वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमें सीताको रामने देहरामायण सुनायी है । चौथे सर्गमें सीताको दिनचर्याका वर्णन है ॥ २३ ॥ पाँचवें सर्गमें जलयंत्रकी क्रीडायें और आह्लिक कृत्यका विवेचन है । छठे सर्गमें ज्ञाह्यणपत्नीके लिए सीता द्वारा अलङ्घार-दानका वर्णन है ।

मूर्तीनां सप्तमे दानं देवस्त्रीणां वरास्तथा । गुणवत्या पिंगलाया वरदानमथाष्टमे ॥२५॥
 कुरुक्षेत्रस्य यात्रायां नवमे जानकीजयः । विलासार्थं समाप्तं हि जन्मकांडमुदीर्यते ॥२६॥
 आरामे दोहदक्रीडा सीतायाः प्रथमेऽकथि । द्वितीये विविधाः क्रीडाः सीमंतोन्नयनोत्सवः ॥२७॥
 रजकस्योदितं श्रुत्वा सीतात्यागस्तृतीयके । जन्मकर्म चतुर्थेऽत्र कुशस्याथ लवस्य च ॥२८॥
 सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखाचहा । पष्ठे लवस्य कमलहरणे जय ईरितः ॥२९॥
 युद्धादिकौतुकं प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिव्यं च तल्लाभोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडपे ॥३०॥
 जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि । जन्मकाण्डं समाप्तं हि विवाहार्थमुदीर्यते ॥३१॥
 स्वयंवरार्थं गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि । स्वयंवरं चंपिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥
 स्वयंवरं सुमत्याश्र तृतीये परिकीर्तिर्तम् । कुशस्याथ लवस्यापि विवाहो द्वौ चतुर्थके ॥३३॥
 गन्धर्वनागकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । पष्ठे तासां विवाहानां निश्चयः समुदाहृतः ॥३४॥
 विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वासां सप्तमेऽत्र हि । अष्टमे यूपकेतोश्च वर्णितोऽत्र पराक्रमः ॥३५॥
 प्रोक्तो मदनसुन्दर्या विवाहो नवमे महान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥
 रामनामसहस्रं च सर्गं प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र समानीतौ रामेण सुरपादपौ ॥३७॥
 रामकृष्णोपासकयोः संवादश्च तृतीयके । शतस्त्रीणां च निद्रायां वरदानं तथा पुनः ॥३८॥
 रामविश्वेषविरहः सीतायाः पंचमेऽकथि । मूलकासुरघातश्च पष्ठे राज्यानि वै पृथक् ॥३९॥
 जयो भरतखण्डस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपजयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विस्तरात् ॥४०॥
 पद्मद्वीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राघवस्य च । यतिशूद्रगृध्रशिक्षा रामेण दशमे कृता ॥४१॥
 चतुःस्त्रीणां वरदानं रामेणैकादशे कृतम् । स्त्रीपोदशसहस्राणां द्वादशेऽत्र वरार्पणम् ॥४२॥
 अश्वत्थहसितं द्वास्यमुक्तेराजा त्रयोदशे । चतुर्दशे बालमीकिना स्वजन्मत्रयमीरितम् ॥४३॥

॥ २४ ॥ सप्तम सर्गमें मूर्तियोंका दान और देवस्त्रीयोंके वरदानका विवाह है । अष्टम सर्गमें गुणवती और पिंगलाके वरदानका वर्णन है ॥ २५ ॥ नवम सर्गमें कुरुक्षेत्रकी यात्रामें जानकीविजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकांड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब यहाँसे जन्मकाण्डका वर्णन करते हैं—पहले सर्गमें दोहदक्रीडा तथा दूसरे सर्गमें विविध प्रकारको क्रीडाओं और सीमन्तोन्नयन संस्कारका विवाह है ॥ २७ ॥ तृतीय सर्गमें सीतात्याग तथा चौथे सर्गमें कुश-लवका जन्मकर्म वर्णित है । पाँचवें सर्गमें रामरक्षास्तोत्रका विवाह है । छठे सर्गमें लवका कमलहरण और उनकी विजय वर्णित है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सप्तम सर्गमें युद्धादिके कौतुक-का विवाहान है और अष्टम सर्गमें सीताकी शपथका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम सर्गमें बालकोंके जन्म और उपनयनका विवाह है । बस, जन्मकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब यहाँसे विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामके गमनकी वार्ता है । दूसरे सर्गमें चम्पिकाके विवाहका वृत्तान्त है । तीसरे सर्गमें सुमतिके विवाहका वर्णन है । चौथे सर्गमें कुश और लवके विवाहकी वार्ता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पञ्चम सर्गमें गन्धवीं तथा नागोंकी कन्याओंके छुड़ानेका हाल है । पष्ठ सर्गमें इन लोगोंके विवाहकी बात पक्की हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम सर्गमें सबके विवाहका वर्णन तथा अष्टम सर्गमें यूपकेनुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम सर्गमें मदनसुन्दरीके विवाहका वृत्तान्त है । बस, विवाहकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब राज्यकाण्ड चलता है ॥ ३६ ॥ राज्यकाण्डके प्रथमसर्गमें रामसहस्रनाम तथा दूसरे सर्गमें रामके द्वारा स्वर्गसे कल्पवृक्ष और पारिजात नामक वृक्षोंके लानेकी वार्ता है ॥ ३७ ॥ तीसरे सर्गमें रामकृष्णके उपासकोंका सम्बाद, चौथे सर्गमें निद्राके लिए वरदान, पाँचवें सर्गमें सीतारामका वियोग और मूलकासुर-का वध, छठे सर्गमें राज्यकार्यका वर्णन है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सातवें सर्गमें रामके द्वारा भरतखण्डकी विजय, आठवें सर्गमें जम्बूद्वीपविजय, नवें सर्गमें रामके अन्य छः द्वीपोंको जीतनेका वृत्तान्त है । दसवें सर्गमें संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रकी शिक्षाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ख्यारहवें सर्गमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं विस्तरात्कृतम् । वर्णिता राजनीतिः श्रीगवेणात्र पोडशे ॥४४॥
 सप्तदशेऽत्र कथितं कुशकल्यास्त्रयंवरम् । अष्टादशे रामनाथपुरं दत्तं द्विजन्मनाम् ॥४५॥
 एकोनविंशे रामस्य दिनचर्येनिता शुभा । राजां विंशेऽवतारं तु श्रेष्ठः प्रोक्तस्त्वयं महान् ॥४६॥
 एकविंशे राघवेण दास्यै दत्तो वरो मुदा । सीतया तुलसीपत्रं द्वाणिंशे संधितं शुभम् ॥४७॥
 त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दरामायणफलश्रुतिः । यमशिक्षा चतुविंशे धर्मशिक्षा च भूतले ॥४८॥
 राज्यकांडं समाप्तं हि मनोहरमुदीयते । सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं लघुरामायणं शुभम् ॥४९॥
 नागराणां च मानणामुपदेशं द्वितीयके । रामपूजोपासनादिविस्तारथं तृतीयके ॥५०॥
 रामतोभद्रविस्तारश्चतुर्थं समुदीरितः । रामलिंगतोभद्राणां भेदाः प्रोक्ताश्च पचमे ॥५१॥
 नवमीव्रतविस्तारः पष्टे प्रोक्ता च तत्कथा । श्रीरामनाम्नां लक्ष्मस्योद्यापनादानि सप्तमे ॥५२॥
 वेदादीनां हि सर्वेषामप्तमे फलमीरितम् । सार्द्धमासद्वयी पूजा कथिता नवमे विभोः ॥५३॥
 दशमे चैत्रमासस्य महिमा समुदीरितः । एकादशे मधुमनानात्सर्वपां गतिरीरिता ॥५४॥
 अद्वैतं दशितं राजा द्वादशे स्त्रीकदम्बकप् । यामुकुरस्य गम्भयं कवचे द्वे त्रयोदशे ॥५५॥
 सीतायाः कवचादीनां प्रोक्तान्यत्र चतुर्दशे । पंचदशे कवचानि तद्रन्धनां स्मृतानि हि ॥५६॥
 ब्रतं हनुमतः प्रोक्तं पताकाख्यं हि पोडशे । प्रोक्तं सप्तदशे साररामायणमनुच्छम् ॥५७॥
 अष्टादशे शरसेतोः खंडनं च हनुमता । ज्ञातं मनोहरं काण्डं पूर्णकाण्डमयोच्छते ॥५८॥
 बाल्मीकिना सोमवंशविस्तारः प्रथमेऽकथि । रामचन्द्रस्य प्रस्थानं द्वितीये हस्तिनापुरम् ॥५९॥
 सूर्यसोमवंशजयोर्युद्धं प्रोक्तं तृतीयके । सोप्रसूर्यवंशजपोर्मविकी च चतुर्थके ॥६०॥
 कुशादीनां रघवेण पञ्चमेऽत्र विमर्जनम् । वैकुण्ठराहणं पष्टे गङ्गायां रघवस्य च ॥६१॥
 सप्तमे सूर्यवंशीयनृपाणां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकामर्गः प्रोक्तोऽयमप्तमो महान् ॥६२॥

द्वारा चार स्त्रियोंकी वरदानप्राप्ति, वारहवें सर्गमें सोलह स्त्रियोंके वरदान पानेका वृत्तान्त, तेरहवें सर्गमें पीपलके बृक्षकी हैंसी, चौदहवें बाल्मीकिके तीन जन्मका वृत्तान्त है ॥४२॥४३॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामके राज्यका सविस्तर वर्णन और सोलहवें सर्गमें रामकी कही राजनीतिको चर्चा है ॥ ४४ ॥ तप्रहवें सर्गमें कुशका कन्याका स्वयम्भव, अठारहवें सर्गमें द्वाहूणके लिए रामनाथपुरके राज्यका दान ॥४५॥ उत्तासवें सर्गमें रामकी दिनचर्या और बीसवें सर्गमें सब अवतारोंमें रामावतारकी श्रेष्ठता कही गयी है ॥ ४६ ॥ इनकीसवें सर्गमें दासीके लिये रामका वरदान, बाईसवें सर्गमें सीता द्वारा दूटे तुलसीपत्रको पुनः जोड़नेकी कथा है । तेर्दीसवें सर्गमें आगन्दरामायणका श्रवणफल, चौबीसवें सर्गमें यमको शिक्षा एवं वर्मशिक्षाका वर्णन है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बस, राज्यकांड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब मनोहरकांड प्रारम्भ होता है । इसके पहले सर्गमें लघुरामायण, दूसरे सर्गमें नगरवासियों तथा माताओंके लिए उपदेशदान, तीसरे सर्गमें रामपूजा और उपासनाका सविस्तर वर्णन है ॥ ४६ ॥ ॥ ५० ॥ चौथे सर्गमें रामतोभद्रका विस्तार, पांचवें सर्गमें रामलिंगतोभद्रका विस्तार, छठे सर्गमें नवमीव्रतका विस्तार, सातवें सर्गमें लक्ष रामनामजपका उच्चापन है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ आठवें सर्गमें वेदादिके सुननेका फल और नवें सर्गमें द्वाई महीने तक रामके पूजनका विवान है ॥ ५३ ॥ दसवें सर्गमें चैत्रमासमें पूजन करनेकी महिमा, ग्यारहवें सर्गमें चैत्रस्नानसे सवको सद्गति पानेका उपाय और वारहवें सर्गमें रामने बहुतसो स्त्रियोंको अद्वैत पदकी बातें बतलायी हैं । तेरहवें सर्गमें राम तथा हनुमानजीका कवच और चौदहवें सर्गमें सीताके कवच आदिका वर्णन है । पन्द्रहवें सर्गमें रामके आत्माओंके कवच आदिका वर्णन है ॥ ५४-५६ ॥ सोलहवें सर्गमें हनुमानजीका पताकारोपणन्रत है । सत्रहवें सर्गमें साररामायण कहा गया है । अठारहवें सर्गमें हनुमानजीके द्वारा अर्जुनके बनाये शरसेतुका खंडन वर्णित है । बस, मनोहरकांड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब पूर्णकांडके विषय गिनाते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पूर्णकांडके प्रथम सर्गमें सोमवंशी राजाओंको वंशावली, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजी-की हस्तिनापुरके लिए यात्रा ॥ ५९ ॥ तोसरे सर्गमें सूर्य और सोमवंशी राजाओंका युद्ध और चौथे सर्गमें सोम-

ग्रंथश्रुतिफलादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवसर्गं पूर्णकाण्डं सम्पूर्णं नवमं त्विदम् ॥६३॥
अनुक्रमणिका चेयं मया शिष्य प्रवर्णिता । अस्याः श्रवणमात्रेण रामायणश्रुतेः फलम् ॥६४॥
रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विशेषं पूजनस्यापि शृणु शिष्य वदामि ते ॥६५॥
सारकाण्डं विभोः स्थाने लक्ष्मणीये द्वितीयकाण्ड । नवायतनरीत्येत्यं शेषाणि स्थापयेत् क्रमात् ॥६६॥
सप्त काण्डानि विधिवचेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकाण्डस्य पूर्वार्धं रामसत्स्थले ॥६७॥
राज्यकाण्डस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणीये सरकाण्डं शेषाण्यग्रे क्रमेण तु ॥६८॥
एवं संस्थाप्य काण्डानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजायाः फलमेतेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
अनुक्रमणिकावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(ग्रन्थकी फलश्रुति)

श्रीरामचन्द्र उवाच

सारं यात्रा च यागाख्यं विलासाख्यं तु जन्मकम् । विवाहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णके ॥१॥
काण्डान्यनुक्रमेणैवानन्दरामायणे नवं । त्रिपोदश सारकाण्डे सर्वां चाल्मीकिलेसिताः ॥२॥

यात्राकाण्डे नवं ज्ञेया यागकाण्डेऽपि वै नवं । नवं ज्ञेया विलासाख्ये जन्मकाण्डेऽपि वै नवं ॥३॥
नवं ज्ञेया विवाहाख्ये चतुर्विंशति राज्यके । मनोहराख्ये ज्ञातव्याः सर्गाः अष्टादशात्र वै ॥४॥
पूर्णकाण्डे नवं ज्ञेयाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं नवोत्तरशतं १०९ सर्गां ज्ञेयाः शुभावहा ॥५॥

वंशी और सूर्यवंशी राजाओंकी मित्रताका वर्णन है ॥६०॥ पौचर्वे सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुश आदिके विसर्जनकी कथा है । छठे सर्गमें गङ्गाजीके तटपर रामको परमधामयात्राका वर्णन है ॥६१॥ सातवें सर्गमें सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी गयी है ॥६२॥ नवें सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल आदि वर्णित है । वस, पूर्णकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दी । इस अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥६३॥६४॥ भक्तोंको चाहिए कि नित्य इस रामायणका पूजन करें । अब इसकी पूजामें जो विशेषतायें हैं उन्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥६५॥ सारकाण्डको भगवान् रामचन्द्रजो, दूसरे काण्डको लक्ष्मण तथा तीसरे काण्डको सीता समझकर स्थापित करे । इस तरह सात काण्डोंमें क्रमशः नवायतनका स्थापना करके पूजन करे अयवा राज्यकाण्डके पूर्वार्धभागको रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको सीताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकाण्डको लक्ष्मणकी जगहपर स्थापित करके पूजन करे । इसी तरह शेष काण्डोंको क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए । इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायतन-पूजनका फल प्राप्त होता है ॥६६-६९॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत-‘ज्योर्स्ना’भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डेष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा-हे शिष्य ! सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर तथा पूर्णकाण्ड ये ही इस रामायणके नौ काण्ड हैं । सारकाण्डमें वाल्मीकिजोने तेरह सर्ग, यात्राकाण्डमें नौ सर्ग, जन्मकाण्डमें नौ सर्ग, विवाहकाण्डमें नौ सर्ग, राज्यकाण्डमें चौदास सर्ग, मनोहरकाण्डमें छठारह सर्ग और पूर्णकाण्डमें पापोंको हरण करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं । इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक सी नौ (१०९) सर्ग हैं ॥ १-५ ॥

सारकांडे पंचविंशत्तिर श्लोकाः सत्रिंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तयतं पञ्चविंशत्तिर स्मृताः ॥ ६ ॥
 यागकांडे पठशतं च पंचविंशत्तिर शुभाः । विलासाख्ये पठशतं च साष्टसप्तति सप्तसप्तताः ॥ ७ ॥
 जन्मकाण्डे ह्यष्टशताः सद्विश्लोकाः प्रकीर्तिताः । विवाहाख्ये पञ्चशत कीर्तिताः सत्रयशातयः ॥ ८ ॥
 सद्वाविंशा राज्यकाण्डे सुपट्टविंशत्तिर स्मृताः । एकविंशत्तिर श्लोकाः प्रोक्ताः कांडे मनोहरे ॥ ९ ॥
 पूर्णकांडे पंचशतं सप्तसप्ततिमित्रिताः । आनन्दरामवरिते सहस्राणि हि द्वादश ॥ १० ॥
 द्वे शते च द्विपंचाशच्छ्लोकाः ज्ञेया मनीषिभिः । एवं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया पुरा ॥ ११ ॥
 रामस्य तोषचरितं श्रवणात्पातकापहम् । पूर्णकाण्डमिदं शेयं श्रवणात्पुण्यवर्धनम् ॥ १२ ॥
 सारकांडश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकांडेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥ १३ ॥
 यागकांडेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥ १४ ॥
 जन्मकांडेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिसन्ततिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्रम्या स्त्री लभ्यते भुवि ॥ १५ ॥
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥ १६ ॥
 पूर्णकाण्डश्रवादेव विष्णोः पूर्णपदं लभेत् । सर्वं विद्वरतः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥ १७ ॥
 सच्चिदानन्दरूपं स लोनो भवति मात्राः । गमायणं नरैः श्रुत्वा कायंमुद्यापनं नरैः ॥ १८ ॥
 रामायणे श्रते दद्याद्रथं हेषमयं सुधीः । चतुर्विंशतिभिर्युक्तं तथा क्षीमतारुपा ॥ १९ ॥
 यंत्रैश्चैव समागृक्तं किंकिणानादनादिषु । संशादतेऽस्य सम्यग्यै धेनु दद्यात्परस्तिर्नाम् ॥ २० ॥
 ब्राह्मणान्भोजयेत्याश्चामृष्टोत्तरं लुधाः । एवं लुधे ताथान तु महाकाव्यं फलप्रदम् ॥ २१ ॥
 रामायणं भवत्त्वान् नात्र काया विचारणा । यस्मिन्नरामस्य सप्त्यानं रामायणमयाच्यते ॥ २२ ॥
 नरः प्रातः समुत्थायादानन्दरामायणं पठेत् । यः स कामानवाप्नाति तद्वलान् दिवि दुलभान् ॥ २३ ॥

सारकांडमें २५३० श्लोक, यात्राकांडमें ७३५ श्लोक, यागकांडमें ६२५ श्लोक, विलासकांडमें ६७८ श्लोक, जन्मकांडमें ८०२ श्लोक, विवाहकांडमें ५६३ श्लोक ॥ ५-८ ॥ राज्यकाण्डमें २६०२ श्लोक, मनोहरकांडमें ३१०० श्लोक और पूर्णकाण्डमें ५७७ श्लोक हैं। इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर १२३५२ श्लोक हैं ॥ ९ ॥ हे शिष्य ! तुमने हमसे जैसे पूछा, मैंने रामचन्द्रजीको प्रसन्न करने और पापोंको नष्ट करनेवाले रामचरित्रको कह मूनाया । यह पूर्णकाण्ड पुण्यको बड़ाना है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी इस संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब ताथोंका यात्राका पुण्य प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोंके करनेका फल पाता है और विलासकाण्डके सुननेसे स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणा संसरि पाता है और विवाहकांड सुननेसे सुन्दर स्त्री मिलती है ॥ १५ ॥ राज्यकांडके सुननेसे संसारका राज्य प्राप्त हता है, मनोहरकांडको सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होती है और इस पूर्णकांडको सुननेसे प्राणा साक्षात् विष्णुभगवानुका पूर्णपद पाता है । जो प्राणी समस्त आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् में लीन हो जाता है । जो लोग वह रामायण सुनें, उन्हें इसका उद्यापन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥ रामायण सुन लेनेके बाद श्रोता सुनानेवालेहो एक ऐसा स्वर्णरथ दे, जिसमें चार घाडे जुते हों और ऊपर रेशमी पताका फहरा रही हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके बन्त्र लगे हों और किंकिण्यादिको मीठों छूनि निकल रही हो । इसके बाद एक दुधार गौ दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंका भोजन कराये । ऐसा करनेपर यह महाकाव्य पूर्ण फलदायी होता है । इसमें किसी प्रकारका संदेह न करना चाहिए । जिसमें भगवान् का निवास हो, उसे "रामायण" कहत है ॥ २१ ॥ २२ ॥ जा प्राणा सद्वेरे उठकर इस आनन्दरायणका पाठ करता है तो देवताओंको भी दुलभ उसको कामनाये पूर्ण होता है ॥ २३ ॥ चैत्र शुक्ल नवमाका रामजन्मके अवसर-

चैत्रमासे विते पवै नदेष्वां रामवन्मनि । शतमपिसुवर्णेन चायुपुत्रं विधाय च ॥२४॥
 एकविंशति मापैर्वा नथशक्त्याऽथवा नरः । चायुपुत्रं संविधायानन्दरामायणं त्विदम् ॥२५॥
 मौल्यद्वारा लिखित्वान्यैलिखित्वा वा स्वहस्ततः । तदुनवित्ररगाद्यर्भूपितं सुविशोधितम् ॥२६॥
 वेष्टिं पद्मतूलाद्येतत्सुतुस्तकं शुभम् । स्कन्धे श्रीमारुते रूपं यूजितं दक्षिणान्वितम् ॥२७॥
 मध्याह्ने ब्राह्मणं पूजय नानाशास्त्रविशारदम् । तस्मै देयं पुस्तकं तद्वायुपुत्रसमन्वितम् ॥२८॥
 एवं यः कुरुते दानं तत्यं पुण्यं ब्रदाम्यहम् । कोटिभारतुर्वर्णस्य कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥२९॥
 दानेन पुण्यं यत्प्रोक्तं तस्मादेतच्छताधिकम् । अक्षरपृथक् यावन्ति संति ह्यानन्दसंज्ञके ॥३०॥
 तावद्युगमहत्वाणि वैकुण्ठे मादते नरः । लभजन्म गवेदिप्रस्तवोऽयं वेदपारगः ॥३१॥
 रम्यं पवित्रमानन्ददायकं च मनोहरम् । आनन्दसंज्ञकं रामचारतं पुण्यवद्वन्म् ॥३२॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वात् मानवाः । पुत्रः पाँखैः सुहङ्कितं न वियागं लभन्ति ते ॥३३॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वति मानवाः । तेषां खामवियागाऽत्र न कदापि हि जायते ॥३४॥
 आनन्दसंज्ञकं पुण्यं याः शृण्वत्यत्र वै खलः । स्वभरुमावयागं ता न गच्छन्ति यथा रमा ॥३५॥
 ग्रामं देशान्तरं तार्थं वे गताश्च चिरं नराः । तेषामागतनार्थं हि पठनायमिदं सदा ॥३६॥
 येषां भावीनि कायाणि लङ्घ्युं त्वरत्वं मनः । आनन्दसंज्ञकं तेषु पठनीयं प्रयत्नतः ॥३७॥
 प्रथमे दिवसे काण्डनेकमें पठन्तुमन् । त्रयते च द्वितीयं च द्वितीयं दिवसे पठेत् ॥३८॥
 एवं क्रमेण कांडानां दृष्ट्वा लोका दग्ध दिन । त्रयं काण्डाने नवमे दिवसे सम्प्लेन्नरः ॥३९॥
 अष्ट कांडाने दशमे क्षवस्त्रकनं च भ्रमात् । सप्तदशादनश्चरन्तुष्टानमिदं महत् ॥४०॥
 अथवा क्रमेण कांडानि प्रथमं प्रथमं पठेत् । द्वितीयं च द्वितीयाऽह्नं नवमे दिने ॥४१॥
 दशमे दशमे प्रोक्तं क्षयः कार्यः क्रमण तद् । सप्तदश दिनस्तदतुष्टानं सुखावहम् ॥४२॥

पर सो मासं हनुमानूजाकी मूर्ति बनवाकर, उसके अभावमें इककास मास अथवा जैसा अपनी शक्ति हो, उसके अनुसार मारुतका मूर्ति बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर लिखा इदकर या अपने हायसे यह ग्रन्थ लिखकर इसमें विविध प्रकारके चित्र बनाय और अच्छा तरह संशोधन करे। फिर दक्षिणाके साथ इस रामायणको रेमझो कपड़े के ढुकड़में बोधकर हनुमानूजाके कांडिये पर रखें ॥२४-२७। फिर दोपहरके समय इसको काया कहने-बाले विविव शास्त्राक जाता ज्ञाह्यगका पूजा कर। उस अच्छें-अच्छे कपड़े पहनाये और वह हनुमानूजाकी प्रतिमा तथा पुस्तक उस ज्ञाह्यगका दान दे ॥२८॥ इस तरह दान करनेका जा फल होता है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ। सूर्यप्रहृण लगनेपर कुरुक्षेत्रम् एक कराड़भार सुवर्णदान करनेसे जा फल प्राप्त होता है, उससे संकड़ों-गुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनासे प्राप्त होता है। ऐसा करनेपर इस आनन्दरामायणमें जितने अक्षर है, उतने हजार युग तक प्राणा देकुण्ठ लोकमें आनन्द करता है। इसके बाद सात जन्म तक विप्रके घरमें उसका जन्म होता है और इसके बाद वह एक वेदपाठ्यामी ज्ञाह्यण होता है ॥२९-३१॥ यह आनन्दरामायण पवित्र, रम्य, मनाहर एवं पुण्यवद्वर्तक है। जा लोग इसका अवण करते हैं, वे अपने पुत्र वीत्र तथा मित्रोंसे कभी भा वियुक्त नहीं होत ॥३२॥ ३३॥ जो इति रामायणको भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपनी स्त्रियोंसे कभी भा वियुक्त नहीं होत । जा स्त्रीवां इस रामायणका अवण करती है, वे लक्ष्मीको तरह सुखी रहता हूँ इ कभी भी अपने अपने रत्नसे दियुक्त नहीं होता ॥३४॥ ३५॥ यदि विसाके घरवाले किसी गाँव, देशान्तर अथवा तार्थयात्राका गय हों तो उन्हें कुण्डलपूर्वक लोटालेके लिए इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥३६॥ जिनका अपने किसी भावी कार्यका विजेय विन्ता हो और उसे शोध्न पूर्ण करना चाहते हों तो वे प्रयत्नपूर्वक इस आनन्दरामायणका पाठ करें ॥३७॥ यहले रोज केवल एक कांड, दूसरे रोज यहला और दूसरा इन दो कांडोंका पाठ करें। तीसरे दिन महला, दूसरा और तीसरा इन तीनों कांडोंको, इस क्रम-से बढ़ाता हुआ नवे रोज नवों कांडोंका पाठ करें ॥३८॥ ३९॥ फिर आठवें रोज आठ कांड, सातवें दिन

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्ववृद्धिश्चयः क्रमन् । एतोऽदिनत्युत्तमसार्थे दूव्रतम् ॥४३॥
 अथवा प्रथमे सर्वस्त्वेषां एव पठेन्नः । द्वीयस्त्वेषां च द्वितीयेऽहि वृद्धिस्त्वेषां क्रमण हि ॥४४॥
 नवोत्तरशते प्राप्ते दिने छुट्टनं त्रिदं पठेत् । तुः अयोऽनुक्रमत्वेषां च सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कायेकमाध्यत् । अथवा प्रथमे चाहि समै प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥
 द्वितीयेऽहि द्वितीयश्च तृतीयेऽहि तृतीयश्च । नवोत्तरशते प्राप्ते दिने च चतुर्मं पठेत् ॥४७॥
 दशोत्तरशते प्राप्ते द्वादशोत्तराभिधर्म् । पठेन्नैव क्रमेणैव शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणाम् । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च भयेवं परिकीर्तिताः ॥४९॥
 अनुष्ठानसमाप्तौ हि होमः कार्यो यथाविधिः । पृथक् श्लोकं पमुच्चार्थस्वाहांतं पायस्मः फलैः ॥५०॥
 नवान्वेनाथवा कार्यो होमो द्वितीयरैः सह । व्राताणान्वेन्नैव इनुष्ठानदिनोत्तरितान् ॥५१॥
 एतत्प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं शुभम् । ऐ पठन्ति त्वा भवन्त्वान सुखं प्राप्तुयन्ति हि ॥५२॥
 द्वादश्यामपि चैतद्वै पठन्तीयं प्रदत्ततः । पारायणं नवदिनैः कायेकम् गुस्यावदम् ॥५३॥
 कांडं सर्वोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दाग्न्यस्य प्रत्यहम् च नरः वै शेषज्ञ तेषां च च निरर्थकम् ॥५४॥
 पुत्रार्थं रतिशालायां शृणोति शुल्पः खिता । निशायां वाचाद्वैऽपुत्री पुत्रार्थानुयात् ॥५५॥
 नवराशिपु श्रीहीणां ध्यात्वा कार्यं तु विनासेत् । पूर्णीफलानि चत्वारि पूर्वेण कांडमुच्यते ॥५६॥
 द्वितीयेन हि सर्वस्तु तृतीयेन फलेन हि । द्वयोऽस्य च विजेयश्चतुर्थेन फलेन च ॥५७॥
 श्लोको ज्ञेयः पूर्वराशेः सर्वेषां गणेऽरना । सर्वात्मेन श्लोकेन विपरीतं फलं समृतम् ॥५८॥
 एवं सर्वेदर्शनीयः शक्तन्थ शुभोऽनुभः । एवं शिष्य त्वा यद्यन्पृष्ठं तजन्पयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठे दिन ४ काण्ड इस क्रमसे घटाता हुआ सबह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे । वैसा न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे नौ रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे । फिर दसवें रोज आठवाँ काण्ड, चारवें रोज सातवाँ काण्ड, इस क्रमसे घटाता हुआ सबह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०-४२ ॥ अब वा प्रत्येक कांडमें सर्ववृद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनोंमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्व, दूसरे दिन दूसरा सर्व, तीसरे दिन तीसरा सर्व, इस क्रमसे एक सौ नौ दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे घटाये । इस अनुष्ठानमें भी सात हो महीनेका समाप्त होता है । इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । अथवा पहले रोज पहला सर्व, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवे दिन अन्तिम सर्वका पाठ करे ॥ ४४-४५ ॥ फिर एक सौ दिनोंमें दिन एक सौ आठवाँ सर्व, एक सौ ग्यास-हवें दिन एक सौ सातवाँ सर्व, इस क्रमसे पाठ करता हुआ मात्र महीनेने इसे समाप्त करे । इस तरह मैंने अनुष्ठानके पाँच भेद बताये । अनुष्ठान समाप्त है जानेपर द्विविहृत हवन करना चाहिए । होम करते समय ब्राह्मणोंके साथ बैठकर आनन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ खोर, फल अथवा नवे अन्नसे हवन करें । हवन हो जानेपर जितने दिनोंता अनुष्ठान किया हो, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ४६-४१ ॥ जो लोग सबेरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । द्वादशीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए । नौ दिनोंमें इसका सुखावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्व अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका श्रवण करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो अवश्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ४५ ॥ अब प्रश्नकी रीति बताते हैं । अन्नकी नौ राशियें बनाकर अपने कार्यका ध्यान करे । इससे बाद चारों दिशाओंमें चार पूर्णीफल (सुपारी) रखें । पहली सुपारीमें कांड, दूसरीमें सर्व, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपारीमें श्लोकका स्वापन करे । पूर्वकी राशिसे सबकी गणना करनी चाहिए । सब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता है ॥ ४६-४७ ॥ इस

आनन्दरामायणमेतदृक्तम् नवोत्तरं सर्गंगतं मयेरितम् ।
 कांडान् यच्चिक्षव कीर्तितानि ते हे विष्णुदासाधहरं मनोहरम् ॥६०॥
 दिने दिने पापचयान्शकुर्वन्नरः पठेत् इलोक्यमपीह भक्त्या ।
 विमुक्तसर्वापचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥
 आनन्दरामायणमेतदृक्तम् ये रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।
 श्रीराघवेणैव जनाधनाशनं नानाचरित्रैर्वरकौतुकैर्युतम् ॥६२॥
 धन्यः स वाल्मीकिमुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिसंमितम् ।
 कृतं पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तत्र ॥६३॥
 आनन्दरामायणमेतदृक्तम् श्रीजानकीकीडनकौतुकैर्युतम् ।
 मृष्ट्यन्ति गायन्ति यदन्ति वाऽपरान्कुर्वन्निति परायणमादराच्च ये ॥६४॥
 लभन्ति पुत्रानतिवृद्धिमत्तरान्त्वीश्वापि पौत्रान्परमान्मनोहरान् ।
 धनानि धान्यानि पशुंश्च पात्राः श्रीरामचन्द्रस्य यदं प्रयाति ते ॥६५॥
 आनन्दसंज्ञं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।
 अतिप्रसन्नश्च सदा सर्वापि सीतासुमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥
 आनन्दरामायणजाहुनीयं पापापहंत्री मलिनस्य जंतोः ।
 आनन्दरामायणकामयेनुस्त्वयं जनानामतिकामदोषधी ॥६७॥
 रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुखरैरपि संस्तुतं च ।
 श्रद्धान्वितः पठति शृण्यात्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥
 नवोत्तरशतैः सर्वे रामकीर्तनमालिकाम् । कृत्वा कण्ठे सुखं तिष्ठ शिष्येमां त्वं मयोदिताम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयगुरोर्मुखात् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्य पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभाशुभ फल जानना हो तो इस जकुनसे जान लें । हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया ॥ ५९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सौ नौ सर्गोंवाली वह उत्तम रामायण सुनायी । इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नौ कांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजी-की अनेक कौतुकमयी कथायें वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर वाल्मीकि श्रद्धिधन्य हैं कि जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है । उसीका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी कीडाओंसे युक्त इस आनन्दरामायणका सादर श्रवण और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े वृद्धिमान् लोग पुनः स्त्री, विशाल वैभव, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी नित्य इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं । उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे उनका कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणहृपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरतो हैं और आनन्दरामायणहृपिणी यह कामधेनु भृत्योंकी सब कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाय होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं । हे शिष्य ! एक सौ नौ सर्गोंवाली इस रामकीर्तनरूपिणी मालाको धारण करके तुम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपते गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानं दरामायणं प्रिये । एव मुकुत्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥
एवं देवि तवाग्रेऽय मयाऽपि परिकीर्तिं तम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥
रामकीर्तनमालायां मेहस्थाने स्वयं जहान् । सगों मया ते कथितः श्रवणान्मंगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युत्तम्

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क रामदासः संवादोऽस्मिस्त्वयाऽकथि ॥७४॥
क तदा विष्णुदासोऽपि संशयो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उत्तम्

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथांतरे ॥७५॥

उमयोर्भाविसंवादः सोऽपि पूर्वं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चमितं रामात्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥
संदेहोऽत्र स्वयं नैव कार्यः पर्वतकन्यके । रामदासमुख्येन तद्रायदण्ठं च वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेमुखेन ।

तद्रामदायस्य मुदैव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥

आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रज्ञाते पठनायमेतद ।

विवाहकाले व्रतवन्धकाले आद्ये पठेत्पर्वणि प्रगले च ॥७९॥

आनन्दरामायणमादरेण कागगृहस्थस्य दिमुक्तये च ।

उत्पातशास्त्रं भयनाशनाय प्रभोः कृपार्थं पठनायमादरात् ॥८०॥

आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।

स स्वीदकामानस्तिलानवाप्य चैकुण्ठलोकं खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥

आनन्दरामायणतोऽधिकानि न संति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।

क्षेत्राण दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुराणान्यथ कीर्तितानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणको सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके वारम्बार प्रणाम किया ॥७०॥
हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनाकर संध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर
चले गये ॥ ७१ ॥ हे दोब ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी
तरह मैंने भी पुण्यवर्द्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका गान करने-
वाली अनेक ग्रन्थमालायें हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुनेहके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी
जो सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुनेहका तरह है । इसका थ्रेण करनेसे सर्वया मञ्जूल होता है ॥ ७३ ॥
श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव ! जब श्रीवाल्मीकिजीने यह रामायण बनायी थी, तब रामदास और विष्णुदास
कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । यह मेरे हृदयमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी
बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनो त्रिकालदर्शिनों दृष्टिसे इस भावी संवादको पहले ही जान लिया था ।
इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख दी
थी । हे पर्वतकन्यके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साकात् रामचन्द्रजीने
स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उन मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणको कहा है ।
इसीलिए यह इस संसारमें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७६ ॥ लोगोंको चाहिए कि पुत्र
होनेपर, विवाहमें, यजोपवीतमें, श्राद्धमें तथा किसी मञ्जूलस्वय कार्यके समव आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें
॥ ७६ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे मुड़ानेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा
भयको शांत करना हो अथवा भगवान्की कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥
जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके
अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुराण

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं प्रोक्तं मथा ते गिरिजे सविस्तरम् ।
 न्व चित्तवस्त्वाघहरं निरन्तरं मनोहरं लप्स्यसि राघवं मतिम् ॥८३॥

आदौ हत्का द्वास्य द्विजवचनशुरुत्वेन यात्राव॑ यज्ञान
 कृत्वा सुकृत्वातिभीमानयनितलविश्वां गृहीत्वाऽथ सीताम् ।
 लब्धवा नानासुपास्तात्ववानं लग्नान्पार्थिवादीशं जित्वा
 कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरानिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥८४॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुमित्रासुतः
 शत्रुघ्नो भरतश्च पार्षदलयोर्वायव्यकोणादिपु ।
 सुग्रीवश्च विभीषणश्च उत्तराद् तासुतो जाम्बवान्
 मध्ये नीलनरोज्ज्वानलरुचि रामं भजे श्यामलम् ॥८५॥

आनन्दरामायणहर्त्वोपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।
 पठति शृण्वन्ति हरेः परं पदं गच्छन्ति पूर्णेष्वितमालभंति ते ॥८६॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्तं पवित्रं श्रवणीयमादरात् ।
 यन्मङ्गलातामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रोशतकोटिरामचरितात्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे चाल्मीकीये पूर्णकाण्डे उमामहेश्वर-
 संवादे तथा रामदासविष्णु दाससंवादं ग्रंथलघुतिर्तमि नवमः संगः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमें से एक भी नहीं है ॥८२॥ है गिरिजे ! मैंने विस्तारपूर्वक यह उत्तम आनन्द-
 रामायण तुम्हें सुना दिया । तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो । ऐसा करनेसे
 तुम्हें सुन्दर भगवद्गुरुका प्राप्त होगा । और तुम्हारा बुद्धि रामकी ओर दौड़ पड़ेगी ॥८३॥ रामने
 पहले रावणका वध किया । फिर ग्राह्यणका दचनका सम्मान करते हुए तीर्थीकी यात्रायें की ओर बहुतसे
 यज्ञ किये । फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके पातालमें जाती हुई सीताको उवाचा । तदनन्तर
 पृथ्वीतलके अनेक राजाओंकी जातकर बहुत सा पताहुए लाये । तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश
 देकर वे हस्तिनापुरीका समीप गंगातटसे अपने परम धामको चले गये ॥८४॥ जिन रामचन्द्रजीके बाम
 भागमें सीता, आगे हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दावे-वाये एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव,
 विभीषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् विराजमान हैं । उन सबके मध्यमें नीलकमलका नाईं सुशोभित श्यामवर्ण
 श्रीरामचन्द्रजीका भी भजन करता है ॥८५॥ जो लोग हारकी भाँति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते
 या सुनते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं और उनको सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥८६॥ लोगोंको चाहिए
 कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कार्त्तन तथा श्रवण किया करें । क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-
 दाता है । इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥८७॥ इति श्रोशतकोटि-
 रामचरितात्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिसई (टिकरिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तात्मज पं०
 रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटोकासहिते पूर्णकाण्डे नवमः संगः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

—०००—

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु
 समाप्तोऽयं ग्रन्थः